औद्योगिक समाजशास्त्र

Industiral Sociology

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी-263139

नैनीताल, (उत्तराखण्ड़)

फोन न0- 05946- 261122, 061123

Toll free No. : 18001804025

Email: info@uou.ac.in Website: https://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रो. जे. पी. पचौरी,** (सदस्य) कुलपति, हिमालयन, विश्वविद्यालय, जीवनवाला, देहरादून
2. **प्रो. सी. सी. एस. ठाकुर,** (सदस्य) प्रो. (से.नि.), रानी दुर्गावती, विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश
3. **प्रो. रबीन्द्र कुमार,** (सदस्य) इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
4. **प्रो. रेनू प्रकाश,** (सदस्य) समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
5. **डॉ. भावना डोभाल,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
6. **डॉ. गोपाल सिंह गौनिया,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रेनू प्रकाश, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखक	इकाई संख्या
प्रो. रेनू प्रकाश, प्राध्यापक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1,2 ,3**
श्री प्रभदीप सिंह, सहायक प्राध्यापक, रा. स्ना. महाविद्यालय, रामनगर	**4**
कु. शैलजा, शोध छात्रा**,** समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**5**
डॉ. गोपाल सिंह गौनिया, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**6, 8**
डॉ. योगेश मैनाली, सहायक प्राध्यापक, एस.एस.जे. विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा	**7**
श्री अरूण कुमार, सहायक प्राध्यापक, राज. स्ना. महाविद्यालय, बेरीनाग, पिथौरागढ़	**9, 11, 12**
डॉ. ज्योति जोशी, सहायक प्राध्यापक, हरि ओम सरस्वती पी.जी. कालेज धनौरी, हरिद्वार	**10**
डॉ. भावना डोभाल, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**13,14**

सम्पादक मंडल

इकाई संयोजन एवं आंतरिक विशेषज्ञ

प्रो. रेनू प्रकाश
समन्वयक
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. गोपाल सिंह गौनिया
असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

बाह्य विशेषज्ञ

प्रो. जे.पी. पचौरी
से.नि. प्रोफेसर, एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग,
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर

डॉ. दीपक पालीवाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आई.एस.बी.एन. : **संस्करण- सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति**

कापीराइट: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139 **प्रकाशन वर्ष: 2024**

प्रकाशक: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

नोट: इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। **मुद्रित प्रतियॉ-**

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

द्वितीय सेमेस्टर (Second Semester) BASO (N) 121

4 CREDITS

औद्योगिक समाजशास्त्र
(Industiral Sociology)

इकाई संख्या	अनुक्रमणिका	पृष्ठ संख्या
	खण्ड- 1 **औद्योगिक समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि (Background of Industrial Sociology)**	
इकाई-1	औद्योगिक समाजशास्त्र: अर्थ परिभाषा उदभव एवं विकास (Industrial Sociology: Meaning, Definition, origin and Development)	1-17
इकाई-2	औद्योगिक समाजशास्त्र: प्रकृति एवं विशेषताऐं (Industrial Sociology: Nature & characteristics	18-33
इकाई-3	औद्योगिक संगठन: संरचना एवं विशेषताऐं (Industrial Organization: Structure and characteristics)	34-49
	खण्ड- 2 **औद्योगिक विवाद, श्रमिक संघवाद एवं भारत में श्रम आन्दोलन** **(Industrial Disputes, Trade Unionism and Labour Movement in India)**	
इकाई-4	औद्योगिक विवाद: अर्थ, परिभाषा, कारण एवं प्रभाव (Industrial Disputes: Meaning, Definition, Causes & Effect)	50-72
इकाई-5	औद्योगिक विवाद: प्रमुख संवैधानिक अधिनियम (Industrial Disputes: Main Constitutional Act.)	73-94
इकाई-6	श्रमिक संघवाद: अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य एवं प्रकार (Trade Unionism: Meaning, Definition, Objectives and Types)	95-119
इकाई-7	भारत में श्रम आंदोलन (Labour Movement in India)	120-138
	खण्ड- 3 **सामूहिक सौदेबाजी एवं सामाजिक सुरक्षा (Collective Bargaining and Social Security)**	
इकाई-8	सामूहिक सौदेबाजी: अर्थ, परिभाषा, विशेषताऐं एवं प्रकृति (Collective Bargaining: Meaning, Definition, Characteristics and Nature)	139-157
इकाई-9	सामूहिक सौदेबाजी: आवश्यकता एवं महत्व (Collective Bargaining: Needs & Significance)	158-172
इकाई-10	सामाजिक सुरक्षा: अवधारणा, उद्देश्य एवं भारत में सामाजिक सुरक्षा (Social Security: Concept, Objectives and Social Security in India)	173-193
	खण्ड- 4 **श्रम कल्याण (Labour Welfare)**	
इकाई-11	श्रम कल्याण: अवधारणा सिद्धांत एवं दृष्टिकोण (Labour Welfare: Concept, Theories and Approaches)	194-212
इकाई-12	श्रम कल्याण की वैधानिक और संवैधानिक योजनाएं (Statutory and Constitutional Schemes of Labour Welfare)	213-233
इकाई-13	अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन: उद्देश्य, संरचना, कार्य एवं भारतीय श्रम विधान पर प्रभाव (International Labour Organization: Objectives, Structure, Functions and Impact on Indian Labour Legislation)	234-252
इकाई-14	ट्रेड यूनियन: विकास, कार्य, एवं औद्योगिक संगठन में भूमिका (Trade Union: Growth, Functions & Role in Industrial Organization)	253-266

इकाई–1 औद्योगिक समाजशास्त्रः अर्थ, परिभाषा, उद्‌भव एवं विकास

Industrial Sociology: Meaning, Definition, Origin and Development

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्‌देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 औद्योगिक समाजशास्त्र का अर्थ

1.3 औद्योगिक समाजशास्त्र की परिभाषा

1.4 औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ सूची

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्‌यसामग्री

1.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा सम्भव होगा–

1. औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्थ को समझना,
2. विभिन्न विद्वानों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को समझना,
3. यह समझना कि, औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ?

1.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप सब जानते हैं कि समाजशास्त्र को एक विस्तृत विषय के रूप में जाना जा सकता है जिसकी अनेक शाखाएं एवं उपशाखाएं होती हैं। इस सन्दर्भ में मॉरिस गिन्सबर्ग का कथन है कि, ''मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति राजनीतिक दर्शन, इतिहास, विकास के प्राणिशास्त्रीय सिद्धांतों तथा सुधार के लिए होने वाले उन सभी सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों पर आधारित है, जिन्होंने सामाजिक दशाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक समझा।''[1]

इस प्रकार स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की एक उपशाखा के रुप में औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास हुआ औद्योगिक समाजशास्त्र वास्तव में उद्यगों से सम्बन्धित, सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई, इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व में परिवर्तन की एक नयी क्रान्ति को जन्म दिया, अर्थात कहने का आशय यह है कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप समाज में निवासरत व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में तो परिवर्तन हुआ ही, साथ ही उनके विचारों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर पाल का कथन है कि ''औद्योगिक क्रान्ति से उत्पादन–व्यवस्था और व्यापार–व्यवस्था बिलकुल बदल गई, जिनके फलस्वरूप समकालीन अनेक वर्गीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष आरम्भ हुए, जिनका आधुनिक देशों की आन्तरिक और विदेश नीतियों पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा एवं जिनके कारण आधुनिक जगत की अनेक जटिल व विस्फोटक राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक समस्याओं और व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ।[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात एक नये युग का आरम्भ हुआ, जिसने औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण को तीव्र गति प्रदान की, परिणामस्वरूप औद्योगिकीकरण की प्रकिया को भी तीव्रता प्राप्त होने लगी। औद्योगिकीकरण की प्रकिया ने रोजगार के कई नवीन अवसरों को उत्पन्न किया, इस प्रकार औद्योगिकीकरण की प्रकिया ने औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र को विकसित करने में विशेष भूमिका का निर्वहन किया। प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि औद्योगिक समाजशास्त्र क्या है? उसके अर्थ एवं परिभाषा को विस्तारपूर्वक समझेंगे साथ ही औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास किस प्रकार हुआ यह भी जानेंगे।

1.2 औद्योगिक समाजशास्त्र का अर्थ

औद्योगिक समाजशास्त्र का अर्थ समझने से पूर्व हमें यह समझना आवश्यक है कि समाजशास्त्र क्या है? जैसा कि हम सब जानते हैं कि हम समाज तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के सदस्य होते हैं। समाज तथा सामाजिक समूह के अभाव में हम मानव अस्तित्व की कल्पना तक नहीं कर सकते। मानव का सम्पूर्ण जीवन इसी समाज तथा सामाजिक समूहों के नियमों के अधीन होता है तथा इन्हीं सामाजिक नियमों के अनुसार वह अपने व्यवहार तथा जीवन के प्रत्येक पक्ष को नियन्त्रित एंव निर्धारित करता है। अनेक समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों द्वारा सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में अनेक प्रकार के विचार तथा दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। किन्तु 19वीं शताब्दी में समाज को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास सर्वप्रथम फ्रांसीसी दार्शनिक आगस्ट कॉम्टे (August Comte) द्वारा 1838 में किया गया। यही कारण है कि आगस्ट कॉम्टे को समाजशास्त्र का जनक (Father of Sociology) भी कहा जाता है। आगस्ट कॉम्टे द्वारा पहले इसे सामाजिक भौतिकी (Social Physics) नाम दिया गया, जिसे बाद में बदलकर समाजशास्त्र (Sociology) कर दिया गया।

समाजशास्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है, पहला शब्द ''सोशियस'' (Socious) लैटिन भाषा से लिया गया है, तथा दूसरा शब्द ''लॉजी'' (Logy) ग्रीक भाषा के Logos शब्द से बना है, इस प्रकार Sociology का अर्थ ''समाज के विज्ञान'' से है। हरबर्ट स्पेन्सर ने भी ''Sociology'' शब्द को ही उपयुक्त मानते हुए कहा है कि ''प्रतीकों की सुविधा और सूचकता, उनकी उत्पत्ति सम्बन्धी वैधता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होती है।''[3]

इस प्रकार समाजशास्त्र के संस्थापक आगस्ट कॉम्टे ने समाजशास्त्र का प्रयोग मानव समूह के विज्ञान के सन्दर्भ में किया। उन्होंने मनुष्यों के सामूहिक जीवन व संबधित आधारभूत नियमों के अध्ययन से सम्बन्धित एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में समाजशस्त्र को प्रस्तुत किया। समाजशास्त्र की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए कॉम्टे ने लिखा है कि ''समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।'' [4]

जैसा कि हम पूर्व में भी यह स्पष्ट कर चुके हैं कि औद्योगिक समाजशास्त्र वास्तव में उद्योगों से सम्बन्धित है, इस सन्दर्भ में टीबी बोटोमोर का भी मानना है कि ''औद्योगिक समाजशास्त्र औद्योगिक जीवन के दो प्रमुख पहलुओं पर विचार करता है। प्रथम उद्यम का आन्तरिक संगठन और वहां मौजूद सामाजिक

सम्बन्ध, तथा दूसरा उद्योगों के समूहों में मालिकों और प्रबन्धकों, सुपरवाइजरों, वेतनभोगी कर्मचारियों तथा शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिक या मजदूरों के बीच सम्बन्धों के व्यापक अर्थ में औद्योगिक सम्बन्ध। इस प्रकार औद्योगिक समाजशास्त्र बोटोमोर के विचार के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।[5]

उद्योगों या औद्योगिक क्रान्ति की बात करें तो इसे आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है, क्योंकि विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्रों में आयी नई क्रान्ति एवं विचारधाराओं ने औद्योगिक क्रान्ति को बढ़ाने में अपना विशेष योगदान दिया है।

अतः स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि औद्योगिकीकरण के कारण नगरीकरण को बढ़ावा मिला एवं आर्थिक रुप से सुदृढ़ होने के लिए लोग नगरों में आकर बसने लगे। इस प्रकार उद्योगों या औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला। इस प्रकार कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात औद्योगिकीकरण को एक नयी दिशा मिली, जिससे एक नवीन समाज का निर्माण होने लगा तथा इसे औद्योगिक समाज की संज्ञा दी जाने लगी। इस सम्बन्ध में प्रमुख भारतीय समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह ने औद्योगिकीकरण, औद्योगिक सम्बन्धों की विवेचना की। उनके अनुसार औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार एवं विकास ने उद्योग–धन्धों में लगे हुए कामगारों के सामाजिक आधार को व्यापक बनाया है। इसके कारण ही भारत में औद्योगिक–शहरी मध्यम वर्ग की एक नयी पीढ़ी को परम्परागत से औद्योगिक पूंजीपति की श्रेणी में प्रवेश करने तथा इसका हिस्सा बन जाने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है।[6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति ने हमारे परम्परागत समाज में परिवर्तन लाने में एक अहम् भूमिका का निवर्हन किया है। इससेएक नवीन समाज का जन्म होने लगा, जिसने मानव समाज के सामाजिक जीवन को परिवर्तित कर दिया। जैसा कि हम सब जानते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है। अतः जब समाज एवं मानव के सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आने लगा तो एक नये अध्ययन की आवश्यकता होने लगी, जो मानव के इस औद्योगिक समाज का अध्ययन कर सके। इस प्रकार औद्योगिक समाजशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। औद्योगिक समाजशास्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है। ''औद्योगिक'' और ''समाजशास्त्र'', औद्योगिक का अर्थ उद्योग से समझा जा सकता है, तथा समाजशास्त्र समाज से सम्बन्धित अध्ययन करने वाला विज्ञान है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है जो उद्योग से सम्बन्धित मानव समूहों के सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है।

1.3 औद्योगिक समाजशास्त्र की परिभाषा

विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा औद्योगिक समाजशास्त्र को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. जेएच स्मिथ के अनुसार, ''औद्योगिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध, उद्योग (अथवा कार्य संगठन के किसी भी रूप) को सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखे जाने और उन कारकों की पहचान करने से है, जो कि उस व्यवस्था की संरचना, कार्यों और परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं।[7]

2. डब्ल्यूई मूर ने बताया है कि, ''औद्योगिक समाजशास्त्र में सामाजिक संगठन और जीवन शैली के रूप में औद्योगिक तन्त्र अथवा व्यवस्था का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है।[8]

3. मिलर एवं फॉर्म के अनुसार, ''औद्योगिक समाजशास्त्र सामान्य समाजशास्त्र की एक प्रमुख शाखा है, जिसे और अधिक उपयुक्त शब्दों में कार्य संगठनों का समाजशास्त्र अथवा अर्थव्यवस्था का समाजशास्त्र कहा जा सकता है।''[9]

4. पार्कर, ब्राउन एवं स्मिथ के अनुसार, ''औद्योगिक समाजशास्त्र यह जानने का प्रयास करता है कि आर्थिक उपव्यवस्था अन्य दूसरी उपव्यवस्था से किस प्रकार सम्बन्धित है तथा विशिष्ट कार्य संगठन एवं भूमिकाओं में उस उपव्यवस्था की संरचना किस प्रकार है और व्यक्ति किस प्रकार इन भूमिकाओं में उपयुक्त सिद्ध होते हैं।[10]

5. मैकाइवर तथा पेज ने बताया है कि, ''औद्योगिक समाजशास्त्र औद्योगिक सम्बन्धों पर केन्द्रित है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि समाजशास्त्र का अध्ययन विषय सामाजिक सम्बन्ध है। औद्योगिक समाजशास्त्र एक विशिष्ट सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है। यह विशिष्ट सम्बन्ध औद्योगिक सम्बन्धों के ताने–बाने से सम्बन्धित है।''[11]

6. पी गिस्बर्ट के अनुसार, ''औद्योगिक समाज विज्ञान उद्योग की वास्तविकता से सम्बन्धित है साथ ही औद्योगिक समाजशास्त्र उद्योग की समस्याओं के अध्ययन से जुड़ा है।[12]

7. स्नाइडर ने अपनी पुस्तक 'इंडस्ट्रियल सोशियोलॉजी' में लिखा है कि ''औद्योगिक समाजशास्त्र औद्योगिक संरचनाओं के अध्ययन से सम्बन्धित है। औद्योगिक समाजशास्त्र के केन्द्र में उत्पादन संगठनों की सामाजिक संरचना है।''[13]

8. चार्ल्स स्पॉल्डिंग के अनुसार, ''औद्योगिक समाजशास्त्री अपनी रुचियों को श्रम स्थान के सामाजिक संगठन पर केन्द्रित करते हैं, जिनमें उन लोगों की अन्तःक्रियाओं के प्रतिमान भी सम्मिलित हैं जो उन संगठनों में उनकी अपनी भूमिकाओं के क्रिया रूप में कार्यान्वित होने पर एक–दूसरे के साथ उत्पन्न होती है अथवा जिनका व्यवहार उन भूमिकाओं से प्रभावित रहता है।[14]

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि औद्योगिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक ऐसी विशिष्ट उपशाखा या विज्ञान है, जिसके अन्तर्गत औद्योगिक समाज के परिणामस्वरूप परिवर्तित सामाजिक सम्बन्धों, आर्थिक सम्बन्धों तथा औद्योगिक संगठनों का अध्ययन किया जाता है।

बोध प्रश्न– 01

सत्य/असत्य कथन

1. समाजशास्त्र की एक उपशाखा के रूप में समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास हुआ।
   .....
2. अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में औद्योगिक क्रान्ति हुई।
   .....
3. औद्योगिक क्रान्ति ने नगरीकरण को बढ़ावा दिया।
   .....
4. अगस्त काम्टे समाजशास्त्र के जनक हैं।
   .....
5. औद्योगिक समाजशास्त्र उद्योगों से सम्बन्धित नहीं है।

1.4 औद्योगिक समाजशास्त्र का उदभव एवं विकास

जैसा कि विदित है कि अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप औद्योगिक अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। इंग्लैण्ड की इस औद्योगिक क्रान्ति ने न केवल मानव समाज के सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन किया, बल्कि आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में भी इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। फलस्वरूप एक नये युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें नये–नये आविष्कार, खोजें, सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता, उत्पादन तथा वितरण की नवीन प्रणाली, उद्योग–धन्धों का नवीनीकरण तथा मानव समाज एवं सम्बन्धों में परिवर्तन इत्यादि ने औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में उद्योगों तथा औद्योगिकीकरण की अवधारणा को विकसित किया। इस सम्बन्ध

में डॉ0 रवीन्द्रनाथ मुकर्जी तथा भरत अग्रवाल का मानना है कि ''वास्तव में सन् 1750 और 1850 के बीच ब्रिटिश उद्योग में इतने महान परिवर्तन हुए कि इन परिवर्तनों के लिए औद्योगिक क्रान्ति शब्द प्रयोग में लाया गया। उनका मानना है कि औद्योगिक क्रान्ति से तात्पर्य अनेक श्रम संचयी उपायों व मशीनों का उत्पादन विधियों में प्रयोग करने से है। इस काल में अनेक परिवर्तन इतनी तेजी से आये तथा जीवन व कार्य के अनेक पहलुओं, वितरण तथा उत्पादन, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिकोणों, जनसंख्या की गतिशीलता व वित्त व्यवस्था आदि पर प्रभाव डाला, जिसके कारण क्रान्ति शब्द का प्रयोग उचित लगता है।''[15]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात उद्योग–धन्धों का विकास तेजी से होने लगा। इससे उत्पादन कार्यों हेतु मशीनों का प्रयोग बहुतायत में किया जाने लगा, जिससे इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था में भी कई विचारणीय परिवर्तन होने लगे। यद्यपि इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति देखी गयी, किन्तु इस क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में होने लगा, जिससे नवीन औद्योगिकीकरण की प्रकिया प्रारम्भ हो गयी।

डब्ल्यूजी हॉफमैन ने विश्व की नवीन औद्योगिक व्यवस्था को चार भागों या चार लहरों मे स्पष्ट किया है।[16]

1. **प्रथम लहर (1770–1820)** – यद्यपि इंग्लैण्ड का यह प्रयास रहा कि वह नयी तकनीकी ज्ञान अपने तक ही सीमित रखे, परन्तु अमेरिका, फ्रांस व स्विट्रलैण्ड आदि देशों ने नवीन विधियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर ली और वहां भी इस अवधि में औद्योगिकीकरण का शुभारम्भ हो गया।

2. **द्वितीय लहर (1821–1860)**– इस अवधि में यूरोप के सभी देशों, जैसे फ्रांस, जर्मनी, स्वीडन, रूस व बेल्जियम में औद्योगिक क्रान्ति आयी।

3. **तृतीय लहर (1861–1890)**– इस अवधि में कनाडा व जापान में औद्योगिकीकरण का प्रारम्भ हुआ और यूरोप के शेष देशों, जैसे–डेनमार्क, नीदरलैण्ड, इटली व ग्रीक आदि में भी औद्योगिकीकरण का विस्तार हुआ।

4. **चतुर्थ लहर (1891 के पश्च**ात)– इस अवधि में औद्योगिकीकरण का प्रारम्भ भारत, ब्राजील, मैक्सिको, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड आदि देशों में औद्योगिकीकरण हुआ।

अब आप जान गये होंगे कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप औद्योगिक अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। औद्योगिक अर्थव्यवस्था ने समाज को एक नया स्वरूप प्रदान किया। इसमें सामाजिक सम्बन्धों ने एक आकार ग्रहण किया, नई उत्पादन पद्धति ने जन्म लिया, सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा मिला, जिससे उत्पादन एवं विवरण की एक नवीन प्रणाली का उदय हुआ। अत्यधिक मशीनों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ने लगा, जिससे वस्तुओं की गुणवत्ता में भी वृद्धि होने लगी।

औद्योगिक क्रान्ति के सन्दर्भ में समाजशास्त्री विश्वनाथ झा का मानना है कि ''औद्योगिक क्रान्ति के कालखंड में नए औजारों तथा तकनीकों का विकास किया गया। 1760 से 1830 के कालखण्ड में औजारों, तकनीकी और उत्पादन के प्रबन्ध में कई नए इआविष्कार हुए, जिनसे उत्पादन की फैक्ट्री प्रणाली अस्तित्व में आई। फलतः उत्पादन की सामन्तवादी प्रणाली के स्थान पर पूंजीवादी प्रणाली की शुरुआत हुई, औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप समाज में हाथ से बनी वस्तुओं का परम्परागत युग समाप्त हो गया और यंत्र निर्मित वस्तुओं के एक नये युग का उदय हुआ।[17]

हम सब जानते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है तथा समाज भी इससे अछूता नहीं है, परिवर्तन की इस प्रकिया के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार औद्योगिकीकरण की प्रकिया में भी नये–नये आविष्कारों ने जहां एक ओर समाज को एक नयी दिशा तथा प्रगति की ओर अग्रसर किया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया। परिणामस्वरूप समाज में विकास और प्रगति के साथ–साथ कई नयी समस्याएं भी उभरने लगीं। अतः इन सब परिवर्तनों के अध्ययन के लिए एक विशिष्ट विज्ञान की आवश्यकता महसूस होने लगी, एवं उद्योगों से सम्बन्धित अध्ययन के लिए औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास हुआ।

विलियम मैथर, एल्टन मेयो तथा किंग्सले डेविस समेत औद्योगिक समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास में अनेक विद्वानों ने अमूल्य कार्य किया है,एल्टन मेयो का योगदान विशेष माना जाता है। यही कारण है कि जार्ज एल्टन मेयो को औद्योगिक समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। अब हम औद्योगिक समाजशास्त्र के योगदान में कुछ महत्वपूर्ण विद्वानों के योगदान के बारे में जानेंगे–

1. **जॉर्ज एल्टन मेयो का योगदान :–**जैसा कि हमने पहले भी स्पष्ट किया है कि जार्ज एल्टन मेयो को औद्योगिक समाजशास्त्र का जनक माना जाता है। एल्टन मेयो का जन्म 1880 में एडीलेड ऑस्ट्रेलिया में हुआ

था। मेयो एक मनोवैज्ञानिक थे तथा मानव की सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करते थे। उन्होंने 1899 मेंएडीलेड विश्वविद्यालय से तर्क और दर्शनशास्त्र विषय में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। 1923 में मेयो ने अमेरिका में फिलाडेल्फिया के पास स्थित एक कपड़ा मिल के स्पिनिंग म्यूल (कताई मशीन) विभाग में अपना शोध कार्य किया, जिसने उन्हें नयी पहचान दिलाई। मेयो के शोध के निष्कर्षों एवं सुझावों ने कारखानों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि में भी मदद की। एक ओर, कारखाने में श्रमिकों की अनुपस्थिति का प्रतिशत कम होने लगा, वहीं दूसरी ओर चार माह के भीतर ही उत्पादन क्षमता में भी 80 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखने को मिली।

अपने शोध के आधार पर एल्टन मेयो ने दो निष्कर्ष निकाले। पहला यह कि, श्रमिक व्यक्तिगत हैसियत से नहीं, वरन् समूह से कार्य करता है, और दूसरा यह कि श्रमिकों में सामूहिक भावना अन्य व्यक्तियों से अधिक होती है तथा उन्हें शीघ्र संगठित किया जा सकता है। इस आधार पर एल्टन की दो पुस्तकें प्रकाशित हुयीं– ''औद्योगिक सभ्यता की मानवीय अवस्थाएं तथा औद्योगिक समाज की सामाजिक समस्याएं।''[18]

इन पुस्तकों को अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई। इन पुस्तकों के कारण औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में नित नये प्रयोग होने लगे। मेयो के इस शोध को हार्वर्ड विश्वविद्यालय में एक बड़ा शोध मानकर ''द फर्स्ट इन्क्वायरी'' का नाम दिया गया। अपने अध्ययन में मेयो ने निरीक्षण विधि द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि कताई विभाग में कार्यरत कामगार पैरों की समस्या से पीड़ित हैं, क्योंकि प्रत्येक कामगार को लम्बे गलियारे को ऊपर–नीचे चलकर तय करना पड़ता है। मशीनों के फ्रेम में टूटे धागे को जोड़ने के लिए श्रमिकों को मशीनों पर निगरानी रखनी पड़ती है। उन्होंने बताया कि कष्टकारी प्रकिया होने के कारण श्रमिक नौकरी छोड़ देते थे। इस समस्या को हल करने के लिए मेयो ने दस–दस मिनट के दो विश्राम सुबह और दोपहर को देने प्रारम्भ किये, जिससे श्रमिकों को राहत मिली एवं उनका पलायन बन्द हुआ।[19]

इस प्रकार एल्टन मेयो के इस अध्ययन ने औद्योगिक समाजशास्त्र के विकास को एक नयी दिशा प्रदान की, जिससे औद्योगिक क्षेत्र में कई नवीन प्रकार के शोधकार्य भी होने लगे। मेयो द्वारा किये गये अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों ने न केवल औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिकों के सामाजिक कारकों के महत्व को स्पष्ट किया, बल्कि सहयोग एवं नेतृत्व की भूमिका को स्पष्ट करने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया।

2. किंग्सले डेविस का योगदान :–औद्योगिक समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास में किंग्सले डेविस का एक महत्वपूर्ण योगदान है। किंग्सले डेविस द्वारा दिये गये विभिन्न सुझावों के आधार पर ही 1939–40 में पेन्सिल्वेनिया कॉलेज अमेरिका में औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन को बढ़ावा मिला। 1944 में मेसाचुसेट्स में एक संस्था की स्थापना की गयी, जिसमें सामाजिक समस्याओं के साथ श्रमसमस्याओं एवं श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक दशाओं का भी अध्ययन किया गया।[20] इस प्रकार किंग्सले डेविस के प्रयासों से अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में श्रम सम्बन्धी शिक्षण अनुसन्धान पुस्तकालय तथा सामूहिक सेवा संस्थान को स्थापित किया गया।

3. गिस्बर्ट का योगदान :– गिस्बर्ट ने अपने अध्ययन के माध्यम से स्पष्ट किया कि वास्तव में औद्योगिक समाजशास्त्र का सम्बन्ध उद्योगों से है, जिसमें औद्योगिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

गिस्बर्ट ने औद्योगिक समाजशास्त्र के विकास के लिए औद्योगिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्रीय विधियों के उपयोग पर बल दिया। इससे शोध के यथार्थ निष्कर्ष निकालने में खासी मदद मिली। गिस्बर्ट ने औद्योगिक समस्याओं जैसे हड़ताल, तालाबंदी, श्रमिक शोषण और मालिक एवं श्रमिक के मध्य अकसर उभरने वाली दिक्कतों का विश्लेषण करने के साथ ही औद्योगिकीकरण के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है।

4. विलबर्ट मूर का योगदान :– विलबर्ट मूर ने 'अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू' में प्रकाशित अपने शोध निबन्ध 'इण्डस्ट्रियल सोशियोलॉजी स्टेटस एण्ड प्रोसपेक्टस' में स्पष्ट किया है कि 'औद्योगिक समाज समाजशास्त्र के उन सिद्धान्तों एवं प्रयोगों से जुड़ा है जो औद्योगिक विधियों द्वारा उत्पादन एवं औद्योगिक जीवन पद्धति से सम्बन्धित हैं।[21]

विलबर्ट मूर ने अपने शोध में स्पष्ट किया है कि औद्योगिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन प्रकिया का विशेष महत्व होता है। इसी प्रकिया का अध्ययन औद्योगिक समाजशास्त्र में किया जाता है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि औद्योगिकीकरण के आधार पर समाज में नये सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। औद्योगिकीकरण ने पलायन की प्रकिया को भी जन्म दिया, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण समाज से रोजगार की तलाश में नगरीय समाज में आने वाला व्यक्ति रोजगार प्राप्त करने के बाद नवीन जीवन शैली को अपनाता है। इस प्रकार विलबर्ट मूर ने स्पष्ट किया है कि औद्योगिक समाजशास्त्र जहां एक ओर उत्पादन

एवं उत्पादन की प्रक्रिया का अध्ययन करता है, वहीं, दूसरी ओर नई जीवन पद्धति के सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है।

5–सर विलियम मैथर का योगदान :– 1883 ई0 में मेनचेस्टर नगर के मैथर प्लान्ट औद्योगिक संस्थान में सर विलियम मैथर ने एक प्रयोग करते हुए संस्थान में कार्य करने की अवधि को 54 घण्टे प्रति सप्ताह से घटाकर 40 घण्टे प्रति सप्ताह कर दिया। काम का समय कम करने के बावजूद उत्पादन कार्य में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उत्पादन पूर्व की भांति ही चलता रहा। सर विलियम के प्रयोग की सफलता को देखने के बाद ब्रिटेन के ऑर्डनेंस कारखाने तथा डॉकयार्ड में भी कर्मचारियों के लिये 48 घण्टे प्रति सप्ताह कार्य अवधि निश्चित कर दी गई। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के समय उत्पादन कार्य में वृद्धि के लिए जब श्रमिकों ने 12–12 घण्टे कार्य किया, तो उनकी शारीरिक व मानसिक थकान बढ़ने लगी थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये 1921 में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मायर्स की अध्यक्षता में औद्योगिक मनोविज्ञान का राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया गया।[22]

6. हॉथॉर्न प्रयोग– 1924–27 के बीच अमेरिका में शिकागो के` बाहरी क्षेत्र में स्थित सिसेरो में हॉथॉर्न वर्क्स (वेस्टर्न इलेक्ट्रिक्स की फैक्ट्री) में वहां के इन्जीनियर जॉर्ज ए पैनोक के निर्देशन में एक प्रयोग के जरिये प्रकाश व्यवस्था का अध्ययन किया गया। इसे 'इलुमिनेशन एक्सपीरिमेंट' नाम दिया गया था। हॉथॉर्न का आधार था कि कार्यस्थल पर उचित प्रकाश व्यवस्था से उत्पादन तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है। इस प्रयोग के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण कारक कर्मचारियों का उत्साह, टीम स्पिरिट, संतोष तथा लगन है। अतः उद्योग के क्षेत्र में सामाजिक कारकों को महत्वपूर्ण मानकर अनेक अनुसन्धान प्रारम्भ किये गये।[23]

इस प्रकार स्पष्ट है कि औद्योगिक समाजशास्त्र का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है। उद्योग धन्धों के विस्तार एवं औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्व को स्पष्ट किया। इस प्रकार औद्योगिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक उपशाखा के रूप में विकसित हुआ, जो उद्योगों से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित था।

1.5 सारांश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट है कि औद्योगिक समाजशास्त्र औद्योगिक समाजों के सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है। समाजशास्त्र की एक उपशाखा के रुप में औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास हुआ। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि औद्योगिक समाजशास्त्र के उद्‌भव में औद्योगिक क्रान्ति का विशेष योगदान रहा है। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने एक नवीन औद्योगिक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया, जिसने इंग्लैण्ड के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। इसके परिणामस्वरूप नये–नये आविष्कार होने लगे, उद्योग–धन्धों को एक नया स्वरूप प्राप्त होने लगा। उत्पादन एवं वितरण की प्रणाली में परिवर्तन होने से औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला। इससे रोजगार के अवसरों की तलाश में आये ग्रामीणों से औद्योगिक श्रमिक वर्ग का निर्माण होने लगा। औद्योगिक व्यवस्था से आये सामाजिक परिवर्तन ने कई नवीन समस्याओं को भी जन्म दिया। इसे देखते हुए एक ऐसे विषय की आवश्यकता महसूस होने लगी, जो इन नयी समस्याओं का अध्ययन कर सके। अतः आवश्यकता के आधार पर समाजशास्त्र की एक उपशाखा के रूप में औद्योगिक समाजशास्त्र का जन्म हुआ। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में औद्योगिक समाजशास्त्र मानव समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करनेवाला एक विशिष्ट विज्ञान बन गया है।

बोध प्रश्न– 02

1. **एक शब्द में उत्तर दीजिए :–**

I. अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में कौन सी क्रान्ति हुई, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ?

.....

II. डब्ल्यू जी हॉफमैन ने विश्व की नवीन औद्योगिक व्यवस्था को कितने भागों या लहरों में स्पष्ट किया है?

.....

III. 1760 से 1830 के कालखण्ड में औजारों, तकनीकों और उत्पादन के प्रबन्ध में कई नए आविष्कार हुए, जिनसे उत्पादन की कौन सी प्रणाली अस्तित्व में आई?

.....

IV. विलियम मैथर, एल्टन मेयो तथा किंग्सले डेविस को किस विषय के उद्भव एवं विकास का श्रेय दिया जाता है?

.....

V. औद्योगिक समाजशास्त्र का जनक किसे कहा जाता है?

.....

बोध प्रश्न– 03

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

I. 1923 में एल्टन मेयो ने अमेरिका में ———————— के पास स्थित एक कपड़ा मिल में स्पिनिंग म्यूल विभाग में अपना शोध कार्य किया।
II. एल्टन मेयो के शोध को ———— का नाम दिया गया।
III. 1944 में मेसाचुसेट्स में एक संस्था की स्थापना की गयी, जिसमें सामाजिक समस्याओंके साथ ———————— एवं श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक दशाओं का अध्ययन किया गया।
IV. गिस्बर्ट ने औद्योगिक समाजशास्त्र के विकास के लिए औद्योगिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए ——— के उपयोग पर बल दिया।

1.6 परिभाषित शब्दावली

1.**औद्योगिक समाजशास्त्र–** औद्योगिक समाजशास्त्र, सामान्य समाजशास्त्र की एक विशिष्ट उपशाखा के रूप में स्थापित विज्ञान है, जो उद्योगों से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है।

2.**औद्योगिक क्रान्ति–** 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में हुई क्रान्ति को औद्योगिक क्रान्ति कहा गया। इसने इंग्लैण्ड के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये।

3.**औद्योगिक अर्थव्यवस्था–** इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप औद्योगिक अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ, जिससे उद्योग धन्धों में मशीनीकरण को बढ़ावा मिला। इसने उत्पादन एवं वितरण की प्रणाली को प्रभावित किया।

4. **नवीन श्रमिक वर्ग–** गृह उद्योगों के समाप्त होने के पश्चात नये रोजगार के अवसरों की तलाश में कारखानों में कार्य करने वाले व्यक्तियों को श्रमिक वर्ग में रखा गया, जिसे नवीन श्रमिक वर्ग कहा गया।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

अभ्यासबोध प्रश्न 01 के उत्तर :–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य

अभ्यासबोध प्रश्न 02 के उत्तर :–

1. औद्योगिक क्रान्ति
2. चार
3. फैक्ट्री प्रणाली
4. औद्योगिक समाजशास्त्र
5. जॉर्ज एल्टन मेयो

अभ्यासबोध प्रश्न 03 के उत्तर :–

1. फिलाडेल्फिया
2. द फर्स्ट इन्क्वायरी
3. श्रम समस्याओं
4. समाजशास्त्रीय विधि

1.8 सन्दर्भ सूची

1 – Morris, Ginsberg, Reason and Unreason in Society: P – 2

2–मुकर्जी, अग्रवाल, चौहान, ''समाजशास्त्रीय चिन्तन के आधार''– एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 18

3–अग्रवाल जीके, ''मानव समाज''–1999 साहित्य भवन, पेज संख्या 02 4–झा विश्वनाथ ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2012 रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पेज संख्या 17

5–मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 03

6–मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 03

7–Smith J.B. Industrial Sociology, P – 03,

8- Moore Wilbert E. "The Industrial Relations and Social order'', 1951

9- Miller D.C and Form W.H, "Industrial Sociology'' P – 11

10- Parker S.K et al, ''The Sociology of Industry '' P – 03

11-मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 07

12– Gisbert, '' Fundamentals of Industrial Sociology ''

13-मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स, पेज संख्या 09

14-Spaulding '' Charles B – Spaulding ''Introduction to Sociology ''

15-महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पेज संख्या, 41

16- Hoffman, W.G The Growth of Industrial Economics उद्धृत मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 31

17. झा विश्वनाथ, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2012 रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पेज संख्या 05

18. महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पेज संख्या 41

19–महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पेज संख्या 40 20–मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 41

21–मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पेज संख्या 40–4122–महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली पेज संख्या 42

23–महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली पेज संख्या 43

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री–

1. विश्वनाथ झा, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2012, रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
2. डॉ0 संजीव महाजन, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. डॉ0 रवीन्द्र, डॉ0 भरत अग्रवाल, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स।

1.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिक क्रान्ति से क्या तात्पर्य है?
2. औद्योगिक समाजशास्त्र के विकास में एल्टन मेयो के योगदान का वर्णन कीजिए?
3. औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्थ तथा परिभाषा को स्पष्ट कीजिए?
4. डब्ल्यूजी हॉफमैन ने विश्व की नवीन औद्योगिक व्यवस्था को कितने भागों में विभाजित किया है, स्पष्ट कीजिए?
5. औद्योगिक समाजशास्त्र के विकास में किंग्सले डेविस के योगदान की विवेचना कीजिए।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्थ तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का सविस्तार वर्णन कीजि।

2. औद्योगिक समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए, उसके उद्‌भव एवं विकास की सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. औद्योगिक समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास में विभिन्न विद्वानों के योगदान का वर्णन कीजिये।

इकाई– 02 औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति एवं विशेषताएं

Industrial Sociology: Nature & Characteristics

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति

2.2.1 –विज्ञान का अर्थ

2.2.2 –विज्ञान की विशेषताएं

2.3 औद्योगिक समाजशास्त्र विज्ञान कैसे?

2.4 औद्योगिक समाजशास्त्र का क्षेत्र

2.5 औद्योगिक समाजशास्त्र की विशेषताएं

2.6 सारांश

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप सक्षम होंगे कि–

1. औद्योगिक समाजशास्त्र किस प्रकार एक विज्ञान है, यह समझ सकें
   औद्योगिक समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति को समझ सकें, औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति के साथ–साथ क्षेत्र के सन्दर्भ में विषय ज्ञान ले सकें,

औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रमुख विशेषताओं को जान सकें औद्योगिक समाजशास्त्र क्यों एक महत्वपूर्ण विषय है, यह समझ सकें

2.1 प्रस्तावना

शिक्षणार्थियों, आपने प्रथम अध्याय में औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्थ तथा परिभाषा को विस्तारपूर्वक समझा। इसके साथ ही आपने औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास किस प्रकार हुआ, यह भी समझने का प्रयास किया। प्रस्तुत इकाई में औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक व्याख्या की जायेगी। जैसाकि हम सब जानते हैं कि औद्योगिक समाजशास्त्र, सामान्य समाजशास्त्र की ही एक उपशाखा है। अतः इसकी प्रकृति भी समाजशास्त्र की तरह वैज्ञानिक मानी जा सकती है। चूकि औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्‌भव 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुआ। अतः इसे एक ऐसा विज्ञान माना जा सकता है– क्योंकि औद्योगिक समाज ने परम्परागत समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में परिवर्तन करके एक नये समाज का निर्माण किया, जो प्रौद्योगिकी से युक्त था– जिसमें मानव की सामाजिक–आर्थिक जीवन प्रणालीका अध्ययन किया जाता है। इस सन्दर्भ में पी गिस्बर्ट ने स्पष्ट किया है कि औद्योगिक समाजशास्त्र में उद्योग की वास्तविकता का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार औद्योगिक समाजशास्त्र में उत्पादन, वितरण, उपयोग, विनिमय एवं कार्य संगठन से जुड़ी हुई विभिन्न समस्याओं को हल किया जाता है। इसके अन्तर्गत उद्योगों में कार्यरत कामगारों की सच्चाई और उनके रहन–सहन के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है।[1] इसी प्रकार गिस्बर्ट का मानना है कि ''औद्योगिक समाजशास्त्र में उद्योगों की प्रमुख समस्याओं का पता लगाकर उनका अध्ययन किया जाता है, उद्योगों से जुड़े विभिन्न मुद्‌दों जैसे – शोषण, अलगाव, न्यूनतम मजदूरी, औद्योगिक विवाद तथा संघर्ष, हड़ताल, तालाबन्दी और श्रमिक संघ से जुड़े हुए अनेक प्रश्नों पर औद्योगिक समाजशास्त्र के अंतर्गत अन्वेषण किया जाता है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात उद्योग एवं कारखाना प्रणाली का विकास हुआ, जिसने प्रौद्योगिकी से युक्त एक नये समाज का निर्माण किया। प्रौद्योगिकी और औद्योगिकीकरण का आपस मेंघनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक माना जा सकता है, लेकिन यहां यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि वैज्ञानिक प्रकृति माने जाने के बावजूद इसकी तुलना प्राकृतिक विज्ञानों से नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से यह कहना ज्यादा उचित होगा कि यह प्राकृतिक विज्ञान से पृथक एक सामाजिक विज्ञान है। औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक समाजों

से सम्बन्धित मानव के आर्थिक परिप्रेक्ष्यों एवं परिवर्तित जीवनशैली व सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति परिवर्तनशील होती है, किन्तु वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर पक्षपातरहित होकर जब इन सामाजिक सम्बन्धों का व्यवस्थित एवं क्रमबद्व रूप से अध्ययन किया जाये, तो इस अर्थ में औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक मानना ही उचित है।

गिस्बर्ट ने अपनी पुस्तक ''फन्डामेन्टल इंडस्ट्रियल सोशियोलॉजी'' में स्पष्ट किया है कि उद्योग की वास्तविकता तथा समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का उपयोग होता है। उदाहरणस्वरूप कतिपय समाजशास्त्रियों ने औद्योगिक संगठनके अध्ययन में समाजमिति पद्धति का उपयोग किया है। सर विलियम मैथर, एल्अन मेयो एवं किंग्सले डेविस आदि ने भी विभिन्न प्रयोगों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर कामगारों की जीवन पद्धति तथा वास्तविकता का अध्ययन किया।[3]

अतः औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति को वैज्ञानिक मानना ही उचित होगा। औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक क्यों है, इसे आगे इकाई के प्रथम खण्ड में सविस्तार स्पष्ट किया जायेगा।

2.2 औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति

एक विज्ञान के रूप में औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति को समझने से पूर्व आवश्यक है कि विज्ञान क्या है? यह समझ लें।

सामान्यतः जब हम विज्ञान की बात करते हैं, तो सर्वप्रथम प्राकृतिक विज्ञान विषयों जैसे– भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, जीवशास्त्र या वनस्पति विज्ञान का नाम सामने आता है। वास्तव में विज्ञान किसी भी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को कहा जाता है, जिसमें घटनाओं एवं वस्तुओं का वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर विश्लेषण कर यथार्थ निष्कर्षों को प्राप्त किया जा सके। बर्नार्ड के अनुसार, विज्ञान की परिभाषा इसमें पायी जाने वाली छः प्रमुख प्रक्रियाओं– परीक्षण, सत्यापन, परिभाषा, वर्गीकरण, संगठन तथा दृष्टिकोण (जिसमें पुर्वानुमान एवं प्रयोग भी सम्मिलित है)– के रूप में दी जा सकती है।[4]

इसी प्रकार पियर्सन का मानना है कि, ''विज्ञान वह पद्धति है, जिससे तथ्यों पर आधारित महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। विज्ञान की वस्तु सम्पूर्ण भौतिक समग्र है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के तथ्यों का वर्गीकरण करता है, उनके पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाता है तथा उनमें पाये जाने वाले क्रमों का वर्णन करता है, वह वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर रहा है तथा वह एक वैज्ञानिक व्यक्ति है।[5]

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, ''वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है, जो अनेक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है। इसकी सहायता से विज्ञानों का निर्माण होता है। व्यापक अर्थ में अन्वेषण की कोई भी पद्धति, जिसकी सहायता से वैज्ञानिक द्वारा निष्पक्ष तथा व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।[6]इस प्रकार स्पष्ट है कि विज्ञान उस क्रमबद्ध ज्ञान को कहा जाता है, जिसमें किसी भी तथ्य तथा घटना को समझने की एक निश्चित वैज्ञानिक पद्धति होती है, जिसके द्वारा यथार्थ निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं।

विज्ञान की विशेषताएं –

विज्ञान या वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. अवलोकन– जब कोई शोधकर्ता किसी भी घटना या समस्या का स्वयं अपने नेत्रों द्वारा निरीक्षण करके यथार्थ निष्कर्ष प्रस्तुत करता है, तो उस विधि को अवलोकन कहा जाता है।
2. तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण– वैज्ञानिक पद्धति में अवलोकन द्वारा जो भी तथ्य एकत्र किये जाते हैं, उनका वर्गीकरण करके विश्लेषण किया जाता है, ताकि तथ्यों की प्रामाणिकता को सिद्ध किया जा सके।
3. सिद्धान्तों का निर्माण– वैज्ञानिक प्रविधि के अन्तर्गत प्राप्त तथ्यों की प्रामाणिकता की जांच के पश्चात यथार्थ निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जाता है। इन निष्कर्षों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है।
4. कार्य–कारण सम्बन्धों की विवेचना– वैज्ञानिक प्रविधि में कार्य–कारण सम्बन्धों की भी विवेचना की जाती है। यह देखा जाता है कि कि किसी भी घटना के घटित होने के पीछे मुख्य कारण क्या है और इसके मुख्य प्रभाव क्या पड़े।
5. सामान्यीकरण– तथ्यों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर नियम प्रस्तुत किये जाते हैं, इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहा जाता है। सामान्यीकरण के आधार पर ही बनाये गये सिद्धान्तों की परीक्षा एवं पुनर्परीक्षा सम्भव होती है।
6. भविष्यवाणी– विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह भविष्यवाणी करने की क्षमता रखता है। तथ्यों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

विश्वनाथ झा ने विज्ञान के तीन प्रमुख लक्षणों को निम्नवत स्पष्ट किया है:[7]

1. विज्ञान में कार्य कारण सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है। उदाहरणस्वरूव पानी को उबलते हुए देखकर, उबलने के कारणों की व्याख्या वैज्ञानिक पद्धति पर की जा सकती है। 100 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान होने के कारण जल उबलता है। उसी प्रकार पानी के बर्फ में बदल जाने की घटना की व्याख्या भी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर की जा सकती है। 0 डिग्री सेलेसियस से तापमान कम होने पर जल बर्फ में बदल जाता है।
2. विज्ञान में सामान्यीकरण एक अनिवार्य पहलू है, सामान्यीकरण व्यक्ति विशेष से जुड़ा नहीं होता है। वह इसके लिए, उसके लिए, हमारे लिए यानी सब लोगों के लिए होता है। उदाहरणस्वरूप न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भारत में भी लागू है और पाकिस्तान में भी, सामान्य स्थिति और दशा में, सभी क्षेत्रों के लिए लागू है।
3. विज्ञान रहस्यों, गोपनीय भंडारों तथा अनकहे तथ्यों पर से पर्दा उठाता है। नये ज्ञान का अन्वेषण करता है और पुराने तथ्यों का सत्यापन करता है। दो या दो से आधिक घटनाओं के बीच मौजूद सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। विज्ञान कार्य–कारण सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। यह घटनाओं की क्रमबद्धता की व्याख्या करता है, घटना को प्रभावित करने वाले स्वाभाविक नियमों एवं दबावों का विश्लेषण करता है। यह पूर्व के सिद्धान्तों से जुड़ा हुआ है और नए सिद्धान्तों की रचना की क्षमता रखता है।

2.3 औद्योगिक समाजशास्त्र विज्ञान कैसे?

जैसा कि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं कि औद्योगिक समाजशास्त्र, सामान्य समाजशास्त्र की एक उपशाखा है। अतः समाजशास्त्र की प्रकृति की तरह औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति भी वैज्ञानिक है, क्योंकि औद्योगिक समाजशास्त्र में विज्ञान की समस्त विशेषताएं पायी जाती हैं। अब औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक क्यों है? इसे निम्न आधार पर समझा जा सकता हैः

1. वैज्ञानिक पद्धति पर आधारितः औद्योगिक समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति जैसे – समाजमिति, अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली एवं साक्षात्कार आदि का प्रयोग आंकड़ों के संकलन के लिए किया जाता है।

2. कार्य–कारण सम्बन्धों की व्याख्याः औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत किसी भी घटना के घटित होने के कारणों को ज्ञात किया जाता है। साथ ही घटना के कारणों को ज्ञात करने के पश्चात परिणामों की व्याख्या भी की जाती है।

3. सार्वभैमिकताः एक विज्ञान के समान ही औद्योगिक समाजशास्त्र के नियम सर्वव्यापी होते हैं, अर्थात इसके सामाजिक नियम समाज में सभी जगह समान रुप में विद्यमान होते हैं।

4. वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भविष्यवाणी करने में सक्षमः वर्तमान परिस्थितियों या वर्तमान अध्ययन के आधार पर भविष्य में होने वाले सम्भावित परिस्थितियों एवं प्रभावों की भविष्यवाणी औद्योगिक समाजशास्त्र द्वारा सम्भव होती है।

5. सिद्धान्तों की परीक्षा एवं पुनर्परीक्षाः औद्योगिक समाजशास्त्र में अन्य विज्ञानों की तरह प्रतिपादित सिद्धान्तों की परीक्षा एवं पुनर्परीक्षा भी की जा सकती है, जिसके लिए अनेक वैज्ञानिक पद्धतियों को प्रयोग में लाया जाता है।

6. वस्तुनिष्ठताः औद्योगिक समाजशास्त्र में किसी भी घटना या समस्या का अध्ययन उसी रूप में किया जाता है, जिस रूप में घटना घटित होती है। अतः एक शोधकर्त्ता विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग करते हुए, तथ्यों को उनके मूल रूप में ही पक्षपातरहित होकर अध्ययन करता है और यथार्थ निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार उपयुक्त सभी विशेषताएं इस तथ्य को सत्य सिद्ध करती हैं कि औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है।

इस सम्बन्ध में जॉनसन ने विज्ञान की चर्चा करते हुए किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन में चार बातों का होना आवश्यक बताया है।[8]

1. अनुभवजन्य (Empirical)
2. सैद्धान्तिक (Theoretical)
3. संचयी (Cumulative)
4. नैतिकता तटस्थ (Ethically Neutral)

डॉ. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, डॉ. भरत अग्रवाल एवं गजराज सिंह ने अपनी पुस्तक ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' में भी स्पष्ट किया है कि औद्योगिक समाजशास्त्र में चार वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है, जो निम्नांकित हैं:[9]

1. अनुभवजन्यता : अनुभवजन्यता का अर्थ है अनुभवों को समझना, अवलोकन के आधार पर तथ्यों का संकलन एवं सामाजिक प्रघटनाओं एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। अनुभवजन्यता वस्तुनिष्ठ

तर्कों पर आधारित है। यह पद्धति शास्त्र द्वारा विकसित की गयी संकल्पनाओं के आधार पर औद्योगिक समाजशास्त्र में औद्योगिक समाज के विविध पक्षों का अवलोकन एवं प्रयोग के आधार पर अन्वेषण किया जाता है तथा इन्हीं के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जाता है।

2. सिद्धान्तः मैकाइवर ने अपने सिद्धान्त ''थ्योरी ऑफ कॉजेशन (Theory of Causation) में स्पष्ट किया है कि कोई घटना बिना कारण के घटित नहीं होती है। सिद्धान्त को अनुभवजन्यता की कसौटी पर खरा उतरना होता है। यह सिद्धान्त जटिल अवलोकन को प्रस्तुत करने के साथ कार्यकारण सम्बन्धों की व्याख्या करता है। सिद्धान्त का उपयोग परिकल्पनाओं को निरूपित करता है। इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य समाजशास्त्रीय तथ्यों के चयन की विवेचना से सम्बन्धित है एवं तथ्य सामग्री के बीच उपस्थित अंतर्संबंधों को भी स्पष्ट करता है।

3. संचयी ज्ञानः औद्योगिक समाजशास्त्र में नये तत्वों का अन्वेषण किया जाता है तथा पुराने तथ्यों का सत्यापन भी किया जाता है। इससे संचित समाजशास्त्रीय ज्ञान का मूल्यांकन होता रहता है। औद्योगिक समाजशास्त्र संचयी ज्ञान से जुड़ा हुआ है। इसके अर्न्तगत श्रम–विभाजन तथा विशेषीकरण की व्यवस्था, औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया एवं संरचनात्मक परिवर्तन तथा औद्योगिक कारखाने (उद्योग) की संरचना एवं औद्योगिक सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन एवं अनुसन्धान किया जाता है।

4. मूल्य तटस्थताः विज्ञान का प्रमुख आधार मूल्य तटस्थता है। व्यक्तिगत मूल्य एवं पक्षपात का विज्ञान में कोई महत्व नहीं है, विज्ञान निष्पक्ष होता है। औद्योगिक समाजशास्त्र भी एक विज्ञान है, इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है और इसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग होता है। औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन में अनुसन्धानों एवं मूल्य तटस्थता का होना आवश्यक है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि औद्योगिक समाजशास्त्र में एक विज्ञान की भांति समस्त विशेषताएं पायी जाती हैं। अतः इसकी प्रकृति को वैज्ञानिक माना जा सकता है।

बोध प्रश्न–01

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः

1. वैज्ञानिक पद्धति एक ———— शब्द है, जो अनेक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है।
2. किसी भी घटना को स्वयं अपने नेत्रों द्वारा निरीक्षण करने की पद्धति को ———— कहा जाता है।

3. औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति ———— है।
4. विज्ञान में ——— सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।
5. विज्ञान में ——— एक अनिवार्य पहलू है।

2.4 औद्योगिक समाजशास्त्र का क्षेत्र

प्रथम इकाई में आपने औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्थ एवं परिभाषा तथा इसके उद्‌भव एवं विकास का सविस्तार अध्ययन किया। औद्योगिक समाजशास्त्र की परिभाषाओं के आधार पर इसके अध्ययन क्षेत्र के सन्दर्भ में आवश्यक जानकारी तो प्राप्त होती है, किन्तु जब हम औद्योगिक समाजशास्त्र की विशेषताओं के सन्दर्भ में बात करते हैं तो यह आवश्यक है कि हम उससे पूर्व औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को विस्तारपूर्वक समझ लें। इससे इसकी विशेषताओं को आसानी से समझा जा सकेगा। अनेक विद्वानों एवं समाजशास्त्रियों ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में अपनी परिभाषाओं के आधार पर अपने–विचारों को प्रकट किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नांकित है,

1. स्मिथ – औद्योगिक और संगठनात्मक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन है। ये सम्बन्ध व्यापक समुदाय के सम्बन्धों में किस प्रकार प्रभावित होते हैं और कैसे उसे प्रभावित करते हैं।[10]

2. बर्नर्स ने औद्योगिक समाज के क्षेत्र को पांच भागों में बांटा है:[11]

I. अधिकारी तन्त्र या नौकरशाही पर आधारित मजदूरों की प्रवृत्तियों और व्यवहारों का अध्ययन,

II. कार्यों का अध्ययन,

III. उन समूहों का अध्ययन जो कार्य करते हैं, साथ ही कार्य करने वाले व्यक्तियों के साथ प्रबन्धकों के व्यवहारों का अध्ययन,

IV. औद्योगिक सम्बन्धों का विश्लेषण करना,

V. उद्योगवाद से व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना,

नासो एवं फॉर्म ने व्यावसायिक समाजशास्त्र को औद्योगिक समाजशास्त्र की उपशाखा माना है। उसने व्यवसायिक समाज विज्ञान को पांच भागों में विभाजित किया है।[12]

1. कार्य की सामाजिक प्रकृति और इससे सम्बन्धित घटनाओं का अध्ययन (जैसे –आराम, अवकाश आदि),
2. व्यक्तिगत व्यवसायों का अध्ययन,

3. व्यावसायिक समाज विज्ञान के तीसरे भाग में इसका विश्लेषण किया जाता है कि किस प्रकार व्यक्तिगत व्यवसाय और व्यावसायिक संरचना, सामाजिकसंरचना के अन्य पक्षों से सम्बन्धित होते हैं,
4. व्यावसायिक संरचना का विश्लेषण, तथा
5. एक विशेष व्यवसाय का सामाजिक सदस्य के रुप में अध्ययन।

स्पॉल्डिंग के अनुसार, ''औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र उद्योग, औद्योगिक संस्थान, कारखाने, उनके गोदाम, क्रय–विक्रय केन्द्र, प्रशासन केन्द्र आदि में कार्य करने वाले व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध है। इस अध्ययन में इनकी क्रिया–प्रतिक्रियाओं, विधियों और अनुक्रमों का अध्ययन किया जाता है, जो परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं।[13]

मिलर और फॉर्म ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अर्न्तगत निम्न तीन विषयों का होना आवश्यक बताया है:[14]

1. कार्य समूह एवं कार्य के दौरान उनके बीच बनने वाले परस्पर सम्बन्ध,
2. उद्योग में कार्य करने वाले जनसमूहों अर्थात श्रमिकों की भूमिका, उद्योगों में कार्य करने वाले श्रम समूहों को ही कार्यसमूह कहा जाता है और उन कार्यसमूहों में श्रमिक जो भूमिका निर्वहन करते हैं, उसे श्रमिक भूमिका कहते हैं,
3. जिस समाज या उद्योगों में मशीनों और संयन्त्रों का प्रमुख स्थान है, उसके सामाजिक संगठन का समाज विज्ञान की इस त्रिसूत्रीय परिभाषा के आधार पर कुछ अमेरिकी समाज वैज्ञानिकों ने विस्तृत अध्ययन किया है। उनके अनुसार इस विषय के अन्तर्गत एक सामाजिक स्थिति मानकर एवं उससे प्रभावित होकर सभी आर्थिक संगठनों का अध्ययन औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र से सम्बन्धित है।

टीबी बोटोमोर ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर रेखांकित किया है:[15]

1. समाजशास्त्र का जन्म औद्योगिक पूंजीवाद के उदय और इसके कारण सामाजिक जीवन की धारणा में आये बदलाव से जुड़ा हुआ है। औद्योगिक समाजशास्त्र मूलतः समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है। अतः औद्योगिक समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र भी समाजशास्त्रीय उपागमों एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों से जुड़ा हुआ है।

2. औद्योगिक समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र औद्योगिक समाज की आधारभूत संरचना के अध्ययन से सम्बन्धित है।
3. औद्योगिक समाजशास्त्र में सामाजिक संरचना और उसके परिवर्तन के व्यापक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक समाजों की मूल विशेषताओं की जांच–परख, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास में सामाजिक निहितार्थों का अध्ययन तथा औद्योगिकीकरण और आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है।
4. औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत विभाजन और पेशागत विशेषता, सम्पत्ति श्रम विभाजन और पेशागत विशेषज्ञता, सम्पत्ति की व्यवस्था, अर्थतन्त्र के भेद तथा औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के विशेष परिप्रेक्ष्य में ढांचागत परिवर्तन, औद्योगिक निकाय अथवा कारखाने की संरचना एवं औद्योगिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।
5. औद्योगिक समाजशास्त्र में केवल उद्योगों पर ही ध्यान नहीं केन्द्रित किया जाता है, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य परिप्रेक्ष्यों का विश्लेषण भी अपेक्षित होता है। औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत आर्थिक विकास तथा अन्य कारकों पर विस्तार से विचार किया जाता है। इनमें सामानों की चाहत, काम के प्रति दृष्टिकोण, सम्पत्ति व्यवस्था का प्रभाव, सामाजिक गतिशीलता, धर्म और पारिवारिक संरचना, जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव और सरकार की भूमिका आदि शामिल हैं।
6. औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक रोजगार के लिए मजदूरों की भर्ती की समस्या पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है।
7. औद्योगिक समाजशास्त्र में उद्योग के आन्तरिक संगठन का अध्ययन किया जाता है। साथ ही उद्योग से जुड़े सामाजिक सम्बन्धों का विश्लेषण भी किया जाता है। बोटोमोर के अनुसार औद्योगिक समाजशास्त्र के अंतर्गत उद्योग के विभिन्न समूहों, खासकर मालिकों, प्रबंधकों, सुपरवाइजरों और वेतनभोगी कर्मचारियों तथा श्रमिकों के बीच सम्बन्धों के व्यापक अर्थों में औद्योगिक सम्बन्धों का विवेचन किया जाता है।
8. बोटोमोर ने 10 वर्षों के एक सुनिश्चित कालखण्ड में औद्योगिक समाजशास्त्र के अंतर्गत किये गये अनुसंधानों का विश्लेषण किया है। इसमें मुख्यतः कामगार समूहों में आपसी सम्बन्ध और उत्पादकता पर उनका असर, सुपरवाइजरों की भूमिका, प्रबंधन और नौकरशाही की समस्याएं, विशेषीकृत कार्य

के प्रभाव और तकनीकी परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं, कामगारों के विशेष समूह जैसे युवा कामगार और महिला कामगार पर विशेष ध्यान दिया गया है।

9. औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत सार्वजनिक स्वामित्व वाले और निजी उद्यम,दोनों का अध्ययन किया जाता है। औद्योगिक समाजशास्त्र में पूंजीवादी देशों, साम्यवादी औद्योगिक देशों तथा अल्पविकसित देशों की औद्योगिक अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत उद्योग–धन्धों में कार्यरत मानव समूहों अथवा औद्योगिक समाज से सम्बन्धित समूहों के आपसी सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

औद्योगिक सामाजिक सम्बन्ध के सन्दर्भ में डॉ. संजीव महाजन ने अपनी पुस्तक 'औद्योगिक समाजशास्त्र' में इन सम्बन्धों को दो भागों में विभाजित किया है। पहला, उत्पादन की एक इकाई के रूप में, जिसमें प्रत्येक कार्यरत व्यक्ति कोई न कोई उत्पादन सम्बन्धी कार्य करता है। यह कार्य ही उसकी भूमिका होती है और इस कार्य या भूमिका को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई पद भी होता है। 'भूमिका' उसके काम को और 'पद' संगठन में उसकी प्रस्थिति को बतलाता है। दूसरा, कोई संगठन, वहां काम करने वाले सभी व्यक्तियों की एक कर्मचारी संस्था के रूप में कार्य करता है, जिसे प्रायः कर्मचारी तन्त्र या नौकरशाही कहा जाता है। यह वस्तुतः इन्हीं सम्बन्धों का एक सामूहिक संप्रत्यय है। डॉ. महाजन ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि वास्तव में औद्योगिक समाजविज्ञान के अध्ययन का केन्द्रीय विषय इन्हीं कर्मचारियों के आपसी औपचारिक तथा अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन होता है।[16]

2.5 औद्योगिक समाजशास्त्र की विशेषताएं

उपरोक्त अध्ययन क्षेत्र के आधार पर औद्योगिक समाजशास्त्र में निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती हैं।

1. औद्योगिक समाजशास्त्र की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सामान्य समाजशास्त्र की एक विशिष्ट उपशाखा के तौर पर विकसित विज्ञान है।
2. औद्योगिक समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धति एवं प्रकृति वैज्ञानिक होने के कारण इसे ''विज्ञान'' की श्रेणी में रखा गया है, किन्तु इसे प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणीं में नही रखा जा सकता, क्योंकि यह मानव समाज के सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से सम्बन्धित है।

3. औद्योगिक समाजशास्त्र, औद्योगिक व्यवस्था वाले समाज से सम्बन्धित होता है। अतः यह शास्त्र उत्पादन की प्रक्रिया एवं औद्योगिक जीवन पद्धति में उत्पन्न समस्याओं से सम्बन्धित अध्ययन करता है।
4. वर्तमान समाज औद्योगिक समाज माना जाता है, जिसमें नवीन प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान का समावेश है। अतः औद्योगिक समाजशास्त्र की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसके अर्न्तगत कार्यकारण सम्बन्धों की वैज्ञानिक पद्धति से खोज की जाती है। इससे समाज की औद्योगिक प्रगति का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही औद्योगिक समाज की परिवर्तनशीलता का पता भी लगाया जा सकता है।
5. औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत औद्योगिक समाज की संस्थाओं, नियन्त्रण की प्रक्रिया, गतिशीलता, अन्तःक्रिया एवं समस्याओं का अध्ययन तो किया जाता है। साथ ही समस्याओं के समाधान को भी प्रस्तुत किया जाता है।
6. औद्योगिक समाजशास्त्र की मुख्य विशेषता यह है कि यह श्रमिक वर्ग के अध्ययन से सम्बन्धित है। विभिन्न अध्ययनों एवं शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर विभिन्न संविधानिक अधिनियमों के निर्माण में भी सहायता प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न– 02

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

I. बर्नर्स ने औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र को कितने भागों में बाटा है?

_____

II. मिलर और फार्म ने औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत कितने विषयों का होना आवश्यक बताया है?

_____

III. औद्योगिक समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र किन परिप्रेक्ष्यों से जुड़ा है?

_____

IV. औद्योगिक समाजशास्त्र के अर्न्तगत रोजगार के लिए मजदूरों की किस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है?

_____

V. औद्योगिक समाजशास्त्र में उद्योग के किस संगठन का अध्ययन किया जाता है?

____

2.6 सारांश

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि औद्योगिक समाजशास्त्र चूंकि सामान्य समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है। अतः समाजशास्त्र की ही तरह इसकी प्रकृति भी वैज्ञानिक मानी जा सकती है। औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत विभिन्न घटनाओं या समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा करने के बाद यथार्थ निष्कर्ष प्रस्तुत कर तथ्यों को एकत्र किया जाता है। इस दृष्टिकोण से इसकी प्रकृति वैज्ञानिक मानना ही उचित है। अतः स्पष्ट है कि औद्योगिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत अनेक वैज्ञानिक विधियों का उपयोग कर औद्योगिक समाज में निवासरत व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन कर तार्किक एवं वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्रदान करने में सहायक होता है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात जब औद्योगिक समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास हुआ, तब औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने समाज की संरचना को परिवर्तित कर एक नये युग का आरम्भ किया, जिससे परम्परागत जीवनशैली पूर्ण रुप से परिवर्तित हो गयी। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में यदि बात करें तो आज औद्योगिक समाजशास्त्र का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि वर्तमान समाज औद्योगिक एवं नगरीय समाज में परिवर्तित हो गया है। इस दृष्टिकोण से औद्योगिक समाजशास्त्र इस परिवर्तित समाज का अध्ययन कर, एक नये ज्ञान का निर्माण कर, हमें औद्योगिक समाज से परिचित कराताहै।

किसी भी राष्ट्र एवं समाज के विकास एवं प्रगति में उद्योगों का विशेष महत्व होता है। विकास एवं प्रगति समाज या राष्ट्र में जहां एक ओर सकारात्मक परिवर्तन लाते हैं, वहीं दूसरी ओर औद्योगिकीकरण से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों एवं उद्योगों की अनगिनत समस्याओं को भी परिलक्षित करते हैं। अतः औद्योगिक समाजशास्त्र, औद्योगिक समाज की संस्थाओं, परिवर्तन की गति, सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता, सामाजिक सम्बन्धों, अन्तःक्रियाओं एवं इनसे उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके न केवल यथार्थ निष्कर्ष प्रस्तुत करता है, बल्कि उचित समाधान भी सुझाता है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. वैज्ञानिक पद्धतिः ऐसी कोई भी पद्धति, जो क्रमबद्ध और व्यवस्थित है, वैज्ञानिक पद्धति कहलाती है।

2. विज्ञानःविभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करके, जब ज्ञान एकत्रित किया जाता है, तो इस पूरी प्रक्रिया को विज्ञान कहा जाता है।

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न– 01

रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. सामूहिक
2. अवलोकन
3. वैज्ञानिक
4. कार्य–कारण
5. सामान्यीकरण

2. बोध प्रश्न– 02

एक शब्द में उत्तर :–

1. पांच
2. तीन
3. समाजशास्त्रीय उपागम एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
4. भर्ती की समस्या
5. आन्तरिक संगठन

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0–16
2. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0–16
3. झा विश्वनाथ, ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' रावत पब्लिकेशन्स–2012, पे0न0–53
4- L.L Bernard, The Field and method of Sociology, Pg – 234

5- Karl Pearson The Grammar of Science, Pg – 12,13

6. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0–17
7. झा विश्वनाथ, ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' रावत पब्लिकेशन्स–2012 पे0न0–57
8. झा विश्वनाथ, ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' रावत पब्लिकेशन्स–2012 पे0न0–56
9. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0 – 18–20
10. Smith H.J, Quoted by Parker, Brown, Child and Smith : Sociology of Industry
11. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0–10
12. महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' अर्जुन पब्लिशिंग हाउस–2010, पे0न0–37
13. Spaulding C.B : An Introduction to Industrial Sociology
14. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स पे0न0–10–11
15. झा विश्वनाथ, ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' रावत पब्लिकेशन्स–2012 पे0न0–37–39
16. म्हाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010 अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नईदिल्ली, पे0न0–38,39

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4. विश्वनाथ झा, ''औद्योगिकसमाजशास्त्र''–2012, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. डॉ. संजीव महाजन, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. डॉ. रवीन्द्र, डॉ. भरत अग्रवाल, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स।

2.11 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. विज्ञान का क्या अर्थ है?
2. वैज्ञानिक पद्धति से आप क्या समझते हैं?
3. वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
4. औद्योगिक समाजशास्त्र की विशेषताएं स्पष्ट कीजिये।

5. बर्नर्स ने औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र को कितने भागों में बांटा है? स्पष्ट कीजिये।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति की विवेचना कीजिये।
2. ''क्या औद्योगिक समाजशास्त्र एक विज्ञान है?'' सविस्तार वर्णन कीजिये।
3. औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र का सविस्तार वर्णन कीजिये।
4. औद्योगिक समाजशास्त्र को स्पष्ट करते हुए इसके क्षेत्र एवं प्रकृति को स्पष्ट करिये।
5. औद्योगिक समाजशास्त्र की प्रकृति एवं विशेषताओं को स्पष्ट करिये।
6. टीबी बोटोमोर ने औद्योगिक समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को कितने बिन्दुओं के आधार पर रेखांकित किया है? सविस्तार स्पष्ट करिये।

इकाई–03 औद्योगिक संगठन : संरचना एवं विशेषताएं

(Industrial Organization: Structure and Characteristics)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 औद्योगिक संगठन का अर्थ एवं परिभाषा

3.3 औद्योगिक संगठन की विशेषताएं

3.4 औद्योगिक संगठन का क्षेत्र एवं विषय सामग्री

3.5 औद्योगिक संगठन के प्रकार

3.6 औद्योगिक संगठन के सिद्धान्त

3.7 औद्योगिक संगठन का प्रारूप

3.8 औद्योगिक संगठन का महत्व

3.9 सारांश

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.14 लघु उत्तरीय प्रश्न

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपके द्वारा सम्भव होगाः

1. औद्योगिक संगठन के अर्थ एवं परिभाषा को समझना,
2. औद्योगिक संगठन की विशेषताओं को स्पष्ट करना,
3. औद्योगिक संगठन का क्षेत्र एवं विषय–सामग्री से परिचित होना,
4. औद्योगिक संगठन के प्रकार से परिचित होना,
5. औद्योगिक संगठन के सिद्धान्त एवं प्रारुप के विषय में ज्ञान प्राप्त करना,
6. औद्योगिक संगठन का महत्व समझना,

3.1 प्रस्तावना

अब तक प्रथम और द्वितीय इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ गये होंगे कि औद्योगिक समाजशास्त्र का अर्थ क्या है, तथा इसके उद्भव एवं विकास के साथ ही इस विषय का महत्व या उपयोगिता क्या है? जैसा कि यह सर्वविदित है कि हम समाज में जन्म लेते हैं, तथा जीवनपर्यन्त इसका अभिन्न अंग बनकर रहते हैं। वास्तव में समाज के बिना, मानव के अस्तित्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती। समाज में ही हमारा समाजीकरण तथा हमारा सर्वांगीण विकास होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने और अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम विभिन्न सामाजिक समूहों के सदस्य के रूप में जीवन जीते हैं। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमें आर्थिक रूप से सबल होना भी आवश्यक है। अतः इस दृष्टिकोण से प्रत्येक मनुष्य को अपनी योग्यतानुसार कुछ न कुछ कार्य अवश्य करने पड़ते हैं, जिससे वह अर्थोपार्जन कर और अपना जीवनयापन सरलतापूर्वक कर सके। जैसा कि हम पहले भी इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि औद्योगिक समाजशास्त्र उद्योगों से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन का माध्यम है।

औद्योगिकीकरण के विस्तार के साथ उद्योग एवं कारखानों की निरन्तर वृद्धि होने लगी, जिसने नगरीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। अर्थोपार्जन एवं रोजगार के अवसरों की तलाश में लोग नगरों में आकर बसने लगे और विभिन्न कारखानों एवं उद्योगों से जुड़कर अपना जीवनयापन करने लगे। उद्योग धन्धों में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया में जब विभिन्न उद्योगों के मालिक एवं श्रमिक विभिन्न समूहों में संगठित होकर कार्य करते हैं, तब इस प्रक्रिया को औद्योगिक संगठन कहा जाता है। सरल शब्दों में यदि हम औद्योगिक संगठन को परिभाषित करें तो औद्योगिक संगठन, उन व्यक्तियों का एक समूह है, जो उत्पादन के विभिन्न साधनों के एकत्रीकरण एवं आपसी सहयोग–समन्वय के आधार पर कार्य करते हैं।

इस सम्बन्ध में रिचर्ड एच हाल का मानना है कि ''एक संगठन अपेक्षाकृत निश्चित सीमाओं की व्यवस्था, सत्ता के पदों, संचार व्यवस्थाओं तथा सदस्यता समिष्टीकरण व्यवस्थाओं का संग्रह है, जो पर्यावरण में अपेक्षाकृत निरन्तरता के आधार पर अपना अस्तित्व बनाये हुये है तथा ऐसे कार्यों में लगा हुआ है, जो किसी लक्ष्य अथवा लक्ष्यों के कुलक से सम्बन्धित है।''[1]

इसी प्रकार इटजियोनी का मानना है कि ''संगठन सामाजिक इकाइयां (अथवा मानवीय समूह) हैं,जिनका निर्माण तथा पुनर्निर्माण जागरूक रूप में निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है।''[2]

रिचर्ड डब्ल्यू स्कॉट के अनुसार, ''संगठनों की परिभाषा उन समूहों के रूप में दी जा सकती है, जिनका निर्माण अपेक्षाकृत निरन्तरता के आधार पर निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया गया है।''[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमें विभिन्न व्यक्ति आपसी सहयोग एवं समन्वय स्थापित कर उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं में योग्यतानुसार सहभागिता कर उत्पादन को बढ़ाने में अपना पूर्ण योगदान देते हैं, साथ ही समान रूप से निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने में संगठित होकर अपना सहयोग प्रदान करते हैं, औद्योगिक संगठन कहलाते हैं।

3.2 औद्योगिक संगठन का अर्थ एवं परिभाषा

औद्योगिक संगठन दो शब्दों से मिलकर बना है, औद्योगिक एवं संगठन। यहां ''औद्योगिक'' शब्द का अर्थ उद्योग से सम्बन्धित है, जबकि संगठन का तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे समूह से लगाया जा सकता है, जो एक समान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बना हो। इस प्रकार औद्योगिक संगठन का तात्पर्य उद्योग से

सम्बन्धित एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिससे व्यक्ति सहयोग के आधार पर समन्वय स्थापित कर उत्पादन क्षमता बढ़ाने में कार्य करते हैं। सरल शब्दों में कहें तो उद्योग से सम्बन्धित संगठन को ही औद्योगिक संगठन कहा जाता है। अधिकांश विद्वानों ने उद्योग एवं संगठन के सन्दर्भ में अनेक परिभाषाएं दी हैं, जिनके आधार पर औद्योगिक संगठन को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नवत हैंः

1–रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, भरत अग्रवाल एव ंगजराज सिंह द्वारा उद्योग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ''उद्योग व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है, जिसमें वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग या तो प्रत्यक्ष उपभोक्ता द्वारा किया जाता है, या अन्य उद्योगों के उत्पादन में होता है।''[4]

02–हैने के अनुसार ''किसी सामान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अंगों का मैत्रीपूर्ण संयोजन ही संगठन कहलाता है।''[5]

03–लैंबर्ग एवं स्प्रीगल के अनुसार, ''संगठन किसी उपक्रम में विभिन्न तथ्यों के मध्य संरचना सम्बन्धी सम्बन्ध है।''[6]

04– आरसी डेविस के शब्दों में, ''संगठन मूलतः व्यक्तियों का एक समूह है, जो कि नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग प्रदान करता है।''[7]

05–रवीन्द्रनाथ मुकर्जी एवं भरत अग्रवाल के अनुसार,''औद्योगिक संगठन से आशय एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा उद्योग से सम्बन्धित सभी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है, ताकि उत्पत्ति के सभी सहयोगियों से अधिकतम सहयोग प्राप्त करके न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके।[8]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि औद्योगिक संगठन, उद्योगों से जुड़े हुए व्यक्तियों के ऐसे समूह से लगाया जा सकता है, जो उद्योग की क्रियाओं से सहयोग और समन्वय के आधार पर उत्पादन को बढ़ाने एवं अधिकतम लाभ प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करके एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

3.3 औद्योगिक संगठन की विशेषताएं

औद्योगिक संगठन की प्रमुख विशेषताओं को निम्नवत समझा जा सकता हैः

1. औद्योगिक संगठन सामूहिक उत्पादन क्षमता में वृद्धि करने में सहायक होता है।
2. औद्योगिक संगठन, साथ कार्य करने वाली व्यक्तियों के मध्य एकरूपता लाने का प्रयास करता है।
3. संगठन का प्रत्येक सदस्य निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।
4. औद्योगिक संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक सदस्य के कार्य, कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का एक स्पष्ट विभाजन होता है। प्रत्येक सदस्य को निर्धारित कार्य सौंपे जाते हैं।
5. औद्योगिक संगठन के कुछ नियम होते हैं, जिनका पालन प्रत्येक सदस्य को अनिवार्यतः करना पड़ता है।
6. श्रम विभाजन के आधार पर औद्योगिक संगठन का निर्माण किया जाता है, जिसमें प्रत्येक सदस्य को उसकी कुशलता एवं योग्यता के अनुसार ही कार्य सौंपे जाते हैं।
7. औद्योगिक संगठन में कार्यरत कर्मचारियों को स्थानांतरण के साथ–साथ पदोन्नति देने का भी प्रावधान होता है।
8. औद्योगिक संगठन की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली नियोजन के आधार पर क्रियान्वित होती है।
9. औद्योगिक संगठन में परिवर्तनशीलता पायी जाती है। परिस्थिति के अनुसार उसमें सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगत होते रहते हैं।
10. प्रत्येक औद्योगिक संगठन का निरन्तर मूल्यांकन किया जाता है, जिससे उसकी कार्यकुशलता को बढ़ाये जाने पर गुणवत्तापूर्ण विचार किया जा सके।

3.4 औद्योगिक संगठन का क्षेत्र एवं विषयसामग्री

औद्योगिक संगठन के क्षेत्र एवं विषय सामग्री को डॉ. रवीन्द्र मुकर्जी एवं डॉ. भरत अग्रवाल ने अपनी पुस्तक ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' में निम्नवत स्पष्ट किया है।[9]

1–मानवीय संगठन

1. कर्मचारियों की आवश्यकताओं का संख्यात्मक व गुणात्मक अनुमान।
2. कर्मचारियों की खोज, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्निति तथा भुगतान।
3. औद्योगिक संगठन में विभिन्न पदों का निर्माण और उनके अधिकारों, कार्यों एवं दायित्वों का निर्धारण एवं प्रतिनिधायन।
4. मजदूरी भुगतान प्रणालियां एवं प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणालियां।
5. श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं।
6. औद्योगिक श्रम संगठन।
7. श्रम के लाभ एवं प्रबन्ध में सहभागिता।

2–तकनीकी क्रियाएं

1. श्रम विभाजन विशिष्टीकरण, यन्त्रीकरण एवं स्वचालन।
2. उत्पादन नियोजन व नियन्त्रण, यन्त्रों की साज–सज्जा, पदार्थों का प्रबन्ध अनुसंधान एवं विकास।

3–भौतिक संसाधनों का संगठन

1. उद्योगों का स्थानीयकरण
2. औद्योगिक वित्त व्यवस्था
3. पूंजी संरचना

4. पूंजी निर्गमन पर नियन्त्रण

4–औद्योगिक पर्यावरण

1. औद्योगिक प्रसार एवं पर्यावरण प्रदूषण
2. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियन्त्रण
3. भारत में औद्योगिक या श्रम सन्नियम

5–औद्योगिक प्रबन्ध व संगठन

1. औद्योगिक संगठन का क्षेत्र एवं महत्व
    - अर्थ क्षेत्र व महत्व
    - संगठन के प्रकार
    - औद्योगिक प्रबन्ध–वैज्ञानिक प्रबन्ध
    - उद्यमिता–अर्थ, महत्व व गुण

2–औद्योगिक नियोजन–

- आशय, उद्देश्य एवं तकनीक
- औद्योगिकीकरण एवं औद्योगिक क्रान्ति
- औद्योगिक स्थानीयकरण
- आधुनिक उद्योगों का प्रादुर्भाव एवं विकास
- भारत में औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियां

बोध प्रश्न–01

एक शब्द में उत्तर दीजियेः–

1. ''संगठन सामाजिक इकाइयां (अथवा मानवीय समूह) हैं, जिनका निर्माण तथा पुनर्निर्माण जागरूक रूप से निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।'' यह परिभाषा किस विद्वान द्वारा दी गयी है?

——————————————————————————————

2. औद्योगिक संगठन कौन से दो शब्दों से मिलकर बना है?

——————————————————————————————

3. किसी सामान्य उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विशिष्ट अंगों के मैत्रीपूर्ण संयोजन की प्रक्रिया को क्या कहा जाता है?

——————————————————————————————

4. श्रम विभाजन के आधार पर औद्योगिक संगठन के समस्त सदस्यों को किस आधार पर कार्यों का आवंटन किया जाता है?

——————————————————————————————

5. औद्योगिक संगठन के क्षेत्र एवं विषय सामग्री को डॉ. रवीन्द्र मुकर्जी ने अपनी पुस्तक ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' में कितने आधारों पर विभाजित किया है?

——————————————————————————————

3.5 औद्योगिक संगठन के प्रकार

औद्योगिक संगठन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः

1. **औपचारिक संगठनः** औपचारिक संगठन उस संगठन को कहा जाता है, जिसका निर्माण किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर किया जाता है। औपचारिक संगठन के कुछ निश्चित नियम होते हैं, जो

श्रम–विभाजन पर आधारित होते हैं। इस सम्बन्ध में इटजियोनी का मानना है कि, ''तकनीकी रूप से औपचारिक संगठन को ऐसे संगठन के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें संगठनात्मक पदों में कार्यों तथा शक्ति का विभाजन सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित करने के लिए प्रबन्धों द्वारा परिभाषित नियमों द्वारा होता है।''[10]

औपचारिक संगठन के लाभः औपचारिक संगठन के निम्नांकित लाभ होते हैं–

1. औपचारिक संगठन के कुछ निश्चित नियम होते हैं, जिनके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति नियमों के अधीन रहकर अपना कार्य कुशलतापूर्वक करता है।

2. औपचारिक संगठन के लक्ष्य निर्धारित होते हैं।

3. औपचारिक संगठन श्रम विभाजन पर आधारित होता है।

4. औपचारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को कुछ निश्चित कार्य सौंपे जाते हैं, जिन्हें वह पूर्ण सहयोग के आधार पर सम्पादित करता है।

5. संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करने में प्रत्येक सदस्य संगठन को पूर्ण सहयोग देने को सदैव तत्पर रहता है।

2. **अनौपचारिक संगठन**– जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी निश्चित उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए संगठित होकर कार्य करते हैं, तो उसे अनौपचारिक संगठन कहा जाता है। अनौपचारिक संगठनों में प्राथमिक सम्बन्धों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

डॉ. संजीव महाजन ने अपनी पुस्तक ''औद्योगिक समाजशास्त्र'' में स्पष्ट किया है कि ''औपचारिक में अनौपचारिक संगठन के तथा अनौपचारिक में औपचारिक संगठन के कुछ अंश पाये जाते हैं। संगठनों के मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त में भी अनौपचारिक संगठनो के संगठनात्मक व्यवहार में भावात्मक, अनियोजित, अतार्किक तत्वों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नेतृत्व का अधिक महत्व तथा संचार एवं सहभागिता का आधार भी भावनाएं ही होती हैं।''[11]

अनौपचारिक संगठन के लाभ :

1. अनौपचारिक संगठन प्राथमिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। अतः संगठन हित सर्वोपरि होता है।

2. संगठन में व्यक्तिगत सम्बन्धों की प्रधानता होती है।

3. व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर ही व्यक्ति को एक निश्चित प्रस्थिति प्रदान की जाती है।

4. अनौपचारिक संगठन में उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संगठन के सदस्यों के मध्य सहयोग की भावना प्रबल होती है।

5. संगठन का प्रत्येक सदस्य कार्यक्षमता के आधार पर ही कार्य करता है।

3.6 औद्योगिक संगठन के सिद्धान्त

हैंस तथा मैसी ने औद्योगिक सिद्धान्तों का निम्नवत उल्लेख किया है:[12]

1. **नियमनिष्ठता का सिद्धान्तः–** इस सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक कार्य के लिये विभाग, स्तर, उत्तरदायित्व, आदेश, शृंखला आदि स्पष्ट होने चाहिए। सिद्धान्त के अनुसार विस्तृत कार्यविवरण का निर्माण कर इसे लागू किया जाना चाहिए।

2. **स्वतः प्रवृत्ति का सिद्धान्तः–** इस सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार, औपचारिक संगठन, अनौपचारिक समूहों के प्रभाव से ही बनाये जाने चाहिये, जो स्वाभाविकतथा स्वतः बनने वाले समूह हैं।

3. **सहभागिता का सिद्धान्तः–** इसके अनुसारएक मस्तिष्क की अपेक्षा अनेक मस्तिष्क अधिक ठोस निर्णय लेने में सफल होते हैं। अतः संगठन के प्रत्येक स्तर से विचार एकत्र कर निर्णय लिये जाने चाहिये।

4. **चुनौती एवं स्वीकृति का सिद्धान्तः** यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि यदि चुनौतियां प्रस्तुत की जायें तो काफी मात्रा में अच्छे प्रबन्धक अपना उत्तरदायित्व निभा सकते हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रत्यक्ष नियन्त्रण के स्थान पर परोक्ष नियन्त्रण चाहते हैं। कर्मचारियों को अधिक स्वतन्त्र निर्णय लेने के अवसर उपलब्ध करते हैं और कार्य के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण तथा उत्तरदायित्व स्थानांतरण में विश्वास रखते हैं।

5. **नियन्त्रण एवं सन्तुलन का सिद्धान्तः–** यह माना जाता है कि शक्ति का एक ही स्थान पर अत्यधिक केन्द्रीकरण अवहेलना का कारण बन सकता है। शक्ति से भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है और कुछ व्यक्ति संस्था के उद्देश्यों की अपेक्षा स्वार्थसिद्धि में पड़ जाते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए शक्ति का नियन्त्रण एवं सन्तुलन आवश्यक है।

3.7 औद्योगिक संगठन का प्रारूप

प्रत्येक औद्योगिक समाज में अपने स्वरूप के आधार पर अलग–अलग प्रकार के औद्योगिक संगठन पाये जाते हैं। किसी भी उद्योग अथवा कारखाने में उत्पादन के आधार पर उसकी संरचना का निर्माण किया जाता है। उद्योग में कार्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक विभागों का निर्माण किया जाता है। इनमें कर्मचारियों को उनकीयोग्यता के अनुसार कार्य आवंटित किये जाते हैं। औद्योगिक संगठन एक प्रकार से उच्चतम से निम्नतम की ओर विभक्त होता है। औद्योगिक संगठन के प्रारुप के सन्दर्भ में डॉ. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी एवं डॉ. भरत अग्रवाल का मानना है कि ''औद्योगिक इकाई में इस प्रणाली के अनुसार सबसे ऊपर एक जनरल मैनेजर होता है। औद्योगिक कार्यों का विभाजन अनेक विभागों में या तो उत्पादित वस्तुओं के अनुसार या उत्पादन विधियों के अनुसार कर दिया जाता है। यदि किसी उपक्रम का जनरल मैनेजर श्रमिकों के लिए कोई आदेश देना चाहता है, तो उसका यह आदेश विभागीय मैनेजर, सुपरिन्टेंडेंट व फोरमैन के माध्यम से श्रमिकों तक पहुंचेगा। प्रत्येक कर्मचारी अपने निकटतम अफसर के अधीन होता है। जैसे– एक श्रमिक फोरमैन के अधीन, फोरमैन सुपरिन्टेंडेंट के अधीन, सुपरिन्टेंडेंट विभागीय मैनेजर के अधीन और विभागीय मैनेजर जनरल मैनेजर के अधीन होता है।[13]

बोध प्रश्न– 02

1 –रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. औद्योगिक संगठन को ––––––– भागों में विभाजित किया गया है।

_____

2. औपचारिक संगठन के कुछ ––––– नियम होते हैं।

————————————————————————————————

3. अनौपचारिक संगठनों में ——— को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

————————————————————————————————

4. उद्योग में कार्य व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक———का निर्माण किया जाता है।

————————————————————————————————

3.8 औद्योगिक संगठन का महत्व

औद्योगिक संगठन के महत्व को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता हैः

1. **विकास एवं प्रगति में वृद्धिः** औद्योगिक संगठन, औद्योगिक विकास एवं प्रगति में निरन्तर तीव्रता लाने का प्रयास करता है।

2. **प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोगः** औद्योगिक संगठन में प्राकृतिक संसाधनों एवं कच्चे माल का पूर्ण उपयोग होता है।

3. **श्रम विभाजन एवं विशेषीकरणः** औद्योगिक संगठन इसलिए भी महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यताएवं क्षमता के अनुसार कार्य इस तरह आवंटित किये जाते हैं कि कार्यों का विभाजन विशेषीकरण पर आधारित हो। अर्थात औद्योगिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य दिया जाता है, जिसमें वह विशेष योग्यता रखता हो।

4. **नेतृत्व की भावनाः** औद्योगिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक नेतृत्व की भावना विकसित होती है, जिससे रचनात्मक विचारों का विकास होता है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

5. **उद्योग सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में उपयोगिताः** औद्योगिक संगठन में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति की श्रम एवं उद्योग सम्बन्धित समस्याओं का समाधान भी संगठन के माध्यम से किया जाता है, जिससे

कर्मचारी बिना किसी समस्या या व्यवधान के उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकें।

6. नीति–निर्माण एवं प्रबन्धनः औद्योगिक संगठन के अन्तर्गत नीतियों का निमार्ण किया जाता है तथा प्रबन्धन` द्वारा कर्मचारियों के हित तथा संगठन को मजबूत बनाने का कार्य किया जाता है, जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

7. नवीन उपकरणों एवं पद्धतियों का उपयोगः औद्योगिक संगठन निरन्तर प्रगति एवं विकास की दिशा की ओर कार्य करने को तत्पर रहते हैं। अतः समय–समय पर नवीनतम तकनीकी ज्ञान एवं नवीन पद्धतियों के उपयोग के द्वारा औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया जाने का प्रयास किया जाता है।

8. कार्य क्षमता को विकसित करने के अवसर प्रदान करनाः औद्योगिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को उनकी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर विशेष कार्य सौंपे जाते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपने–अपने कार्यों को पूर्ण मनोयोग से करताहै। इससे उनकी कार्यक्षमता समयानुकूल निरन्तर विकसित होती रहती है, साथ ही कार्यक्षमता का सदुपयोग भी होता है।

9. औद्योगिक नियोजन को बढ़ावाः औद्योगिक संगठनों में विशेष रूप से नियोजन को अधिक बढ़ावा दिया जाता है, जिससे उत्पादन में तो वृद्धि होती ही है, साथ ही संगठन में भी सन्तुलन, समन्वय एवं नियन्त्रण बना रहता है।

10. सामूहिक सौदेबाजी का निर्धारणः औद्योगिक संगठन सामूहिक सौदेबाजी का भी निर्धारण करता है, जिससे नियोजन में नीति–निर्माण एवं शर्तो का निर्धारण किया जा सके और कर्मयारियों एवं संघ के मध्य औद्योगिक विवादों को भी सुलझाया जा सके।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक समाज या राष्ट्र में औद्योगिक संगठन का एक विशेष महत्व होता है, जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र को विकास एवं प्रगति की दिशा की ओर अग्रसर किया जा सके।

3.9 सारांश

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्याय की विवेचना के आधार पर स्पष्ट है कि औद्योगिक संगठन से तात्पर्य उद्योग धन्धों से सम्बन्धित समस्त क्रियाओं पर नियन्त्रण एवं समन्वय रखने वाली क्रियाओं के संगठन को

कहा जाता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि नियोजन के आधार पर उद्योग के निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति में मानवसमूहों का सहयोग उनकी कुशलता एवं योग्यता के आधार पर निर्धारित किया जा सके। औद्योगिक संगठन एक ऐसी शाखा है, जो उद्योग की संरचना की व्याख्या तो करता ही है, साथ में समस्त स्तरों पर कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों तथा उन्हें प्रदान किये जाने वाले अधिकारों, कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की भी स्पष्ट रुप से व्याख्या की जाती है। औद्योगिक संगठन जहां एक ओर नियमों, आदेशों एवं उचित दिशानिर्देशों के माध्यम से संगठन के कर्मचारियों में नियन्त्रण लाने का प्रयास करता है। वहीं, समस्त कर्मचारियों के मध्य समन्वय स्थापित कर उन्हें अधिक उत्पादन वृद्धि तथा स्वयं की कार्यकुशलता एवं योग्यता को विस्तारित करने में भी सहयोग प्रदान करता है।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

1. **औद्योगिक संगठनः** एक ऐसा संगठन, जो उद्योग से सम्बन्धित समस्त मानवीय सम्बन्धों के मध्य समन्वय लाकर कम लागत में अधिकतम लाभ प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

2. **औपचारिक संगठनः** श्रम विभाजन के आधार पर बनाये गये संगठन को औपचारिक संगठन कहा जाता है, जिसमें नियोजन एवं प्रबन्धों के आधार पर सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित किया जाता है।

3. **अनौपचारिक संगठनः** अनौपचारिक संगठन प्राथमिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं, जिसमें सामाजिक मूल्यों एवं परम्पराओं का विशेष स्थान होता है।

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न–01

1. इटजियोनी द्वारा

2. औद्योगिक तथा संगठन

3. संगठन

4. कुशलता एवं योग्यता के आधार पर

5. पांच आधारों पर

2. बोध प्रश्न–02

1. दो
2. निश्चित
3. प्राथमिक सम्बन्धों
4. विभागों

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Hall H. Richard, ''Organizations: Structure and Processes" P -09
2. Etzioni A '' Modern Organization'' P–03
3. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या 196
4. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –197
5. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –197
6. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –197
7. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –197
8. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –198–199
9. Etzioni A '' Modern Organization'' P – 31
10. महाजन संजीव, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पेज संख्या –224
11. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –202, 203
12. मुकर्जी रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भरत ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स पेज संख्या –203

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. विश्वनाथ झा, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2012, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. डॉ. संजीव महाजन, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2010, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. डॉ. रवीन्द्र, डॉ. भरत अग्रवाल, ''औद्योगिक समाजशास्त्र''–2023, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स।

3.14 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिकसंगठन के अर्थ को स्पष्ट कीजिये।
2. औद्योगिक संगठन की विशेषताएं लिखिये।
3. औद्योगिक संगठन के महत्व को स्पष्ट कीजिये।
4. औद्योगिक संगठन के क्षेत्र एवं विषय सामग्री का उल्लेख कीजिये।
5. औद्योगिक संगठन के प्रमुख प्रकारों की विवेचना कीजिये।
6. औपचारिकसंगठन के मुख्य लाभकौन–कौन से है।स्पष्टकिजिये?
7. अनौपचारिक संगठन को स्पष्ट करते हुए उसके लाभ को स्पष्ट कीजिये।

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक संगठन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।
2. औद्योगिक संगठन से क्या तात्पर्य है? विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी प्रमुख परिभाषाओं का उल्लेख कीजिये।
3. हैंस तथा मैसी द्वारा दिये गये औद्योगिक संगठन के सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।
4. औद्योगिक संगठन को स्पष्ट करते हुए उसके क्षेत्र के बारे में विस्तार से लिखें।
5. औद्योगिक समाज में औद्योगिक संगठन के महत्व को स्पष्ट कीजिये।

इकाई–4 औद्योगिक विवादः अर्थ, परिभाषा, कारण एवं प्रभाव (Industrial Disputes: Meaning, Definition, Causes & Effect)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 औद्योगिक विवाद का अर्थ

4.3 औद्योगिक विवाद की परिभाषा

4.4 भारत में औद्योगिक विवाद

4.5 औद्योगिक विवाद के कारण

4.6 औद्योगिक विवाद के प्रभाव

4.7 औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए सुझाव

4.8 सारांश

4.9 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रंथ

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपकी निम्न अवधारणाओं पर विषय विश्लेषणात्मक एवं अलोचनात्मक समझ विकसित हो सकेगीः

1. औद्योगिक विवाद क्या हैं,

2. औद्योगिक विवाद का अर्थ,

3. औद्योगिक विवाद की परिभाषा,

4. भारत में औद्योगिक विवाद,

5. औद्योगिक विवाद के कारण,

6. औद्योगिक विवाद के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव,

7. औद्योगिक विवाद को सुलझाने के समाधान,

4.1. प्रस्तावना

प्रत्येक मानव समाज में औद्योगिक विवाद (नियोक्ता एवं श्रमिक के बीच का विवाद) उतना ही प्राचीन है, जितनी कि मानव सभ्यता। औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य सामाजिक एवं आर्थिक समझौते का न हो पाना या समयानुसार समायोजन करने की क्षमता का अभाव भी माना जा सकता है। श्रमिक पक्ष सदैव अपनी आवश्यकतानुसार एवं अपने अधिकारों, उचित श्रमिक मूल्य के लिए नियोक्ताओं से ही मांग करता है, जो समय–समय पर औद्योगिक विवादों का कारण बनती है। आज के समय में श्रम का प्रत्येक देश के उत्पादन में विशेष महत्व दिखाई देता है, जो किसी भी राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसे में यह नियोक्ताओं का दायित्व है कि वे श्रमिकों की उचित मांगों की पूर्ति समयानुसार करते रहें और श्रमिकों के जीवन को उन्नत बनाने के लिए समय–समय पर आवश्यक कदम उठाते रहें। अगर नियोक्ताओं द्वारा यह आवश्यक कदम नहीं उठाए जाते हैं, तो श्रमिकों का संघर्ष हमेशा बने होने की संभावनाएं बनी रहती हैं, जो औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण बनती हैं।

4.2 औद्योगिक विवाद का अर्थ

सामान्य शब्दों में औद्योगिक विवाद पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की एक मुख्य विशेषता है, जो किसी औद्योगिक इकाई एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों के समूह में नियोजकों एवं श्रमिकों के बीच ऐसे मतभेदों या विवादों को दर्शाता है जो नियोजक की शर्तों या कार्यप्रणाली से संबंधित होते हैं। औद्योगिक विवादों में मुख्य रूप

से न्यूनतम मजदूरी, मजदूरी संरचना, मजदूरी में अंतर, पदोन्नति, कल्याणकारी सुविधाएं, कामबंदी, सवेतन छुट्टी इत्यादि मुख्य दशाएं होती हैं।

1. **बोध प्रश्न**

- सामान्य शब्दों में औद्योगिक विवाद से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

4.3 औद्योगिक विवाद की परिभाषाएं

1. **औद्योगिक संघर्ष अधिनियम 1947 (Industrial Dispute Act 1947) की धारा (K) के अनुसार**: औद्योगिक संघर्ष वह संघर्ष या मतभेद है, जो औद्योगिक रोजगार देने या न देने अथवा रोजगार की शर्तों या श्रम की दशाओं के संबंध में विभिन्न सेवायोजकों के मध्य या विभिन्न श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों और सेवायोजकों के मध्य विद्यमान होता है।

2. **औद्योगिक संघर्ष/विवाद संशोधित अधिनियम (Industrial Disputes Amendment Act 1948) की धारा (2K) के अनुसार–** औद्योगिक संघर्ष या विवाद से अर्थ नियोक्ताओं के मध्य या नियोक्तओं एवं श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों के किसी मतभेद से है, जो नियुक्ति या सेवा शर्तों या श्रमिकों की स्थिति, किसी व्यक्ति से संबंधित है।

3. **वी.पी. आर्या (A Guide to Settelment of Industrial Disputes) के अनुसार–** औद्योगिक संघर्ष शब्द साधारणतः श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य श्रमिकों को रोजगार या उनकी बेरोजगारी की दशाओं से संबंधित असहमति को निर्देशित करता है। अधिकतर संघर्ष, मजदूरी, महंगाई भत्ता, बोनस श्रमिकों की पदच्युति अथवा सेवामुक्ति अवकाश एवं छुट्टियों, सेवानिवृत्ति लाभों और मकान किराया एवं अन्य भत्तों से संम्बधित होते हैं।

4. **वॉटसन एवं डॉड के अनुसार–** औद्योगिक अशांति मूलतः अव्यवस्था के कारण प्रकट होती है, जो कार्य से संबंधित मानव एवं प्रबंध या दोनों के जटिल संबंधों में हमारे आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणाली के विस्तृत दृष्टिकोण से उत्पन्न होती है।

5. **प्रोफेसर डैंकार्ट ने अपनी पुस्तक (An Introduction to Labour) में लिखा है कि**– जब नियोजक संबंध की प्रकृति के कारण प्रबंध एवं श्रमिकों के बीच अशांति उत्पन्न होती है, तो उसका प्रतिफल औद्योगिक विवाद होता है।

6. **प्रोफेसर एस. एच. पैटरसन ने अपनी पुस्तक (Social Aspect of Industry) में लिखा है**कि– श्रमिकों द्वारा अपने नियोक्ता के विरुद्ध गतिरोध औद्योगिक विवाद है।

7. **औद्यौगिक विवाद संशोधित अधिनियम (Industrial Disputes Amendment Act 1984)** की धारा **(2K)** के अनुसार– औद्योगिक संघर्ष या विवाद से अर्थ नियोक्ताओं के मध्य या नियोक्ताओं एवं श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों के किसी मतभेद से है, जो नियुक्ति या सेवा शर्तों या श्रमिकों की स्थिति, किसी व्यक्ति से संबंधित है।

- **महात्मा गांधी जी ने यंग इंडिया में एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि** यदि नियोक्ता व श्रमिक औद्योगिक विवादों का आपस में बैठकर कोई हल ढूंढ सकें, तो हड़तालें, जो कि उद्योगों के लिए वास्तव में एक खतरा है, नहीं होंगी। यह हमारी बड़ी उपलब्धि होगी, यदि हम हड़तालों को समाप्त कर सकें और पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवाद पंच निर्णय द्वारा सुलझा सकें।
- **कलेरिज एंड कंपनी लिमिटेड बनाम औद्योगिक ट्रिब्यूनल मुंबई** के एक मामले में दिए गए निर्णय में औद्योगिक अधिनियम के उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि– इस अधिनियम का उद्देश्य हड़ताल या तालाबंदी की शक्ति से औद्योगिक विवादों को दबाने के स्थान पर उनका समाधान न्यायोचित तंत्र के अंतर्गत परस्पर समझौते, पंचनिर्णय, श्रम न्यायालय, ट्रिब्यूनल आदि के द्वारा करना है। औद्योगिक संघर्ष के पक्षकारों को इस अधिनियम द्वारा इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे स्वतंत्र एवं निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित शर्तों को आधार मानकर संघर्ष का निपटारा करने में सफल हो सकें।
- **स्टेट बनाम प्रबंधकों के मामले में अपना निर्णय देते हुए माननीय भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने** इस अधिनियम के उद्देश्य इस प्रकार बताए हैं:
  - नियोक्ता तथा श्रमिकों के बीच अच्छे संबंध तथा बंधुत्व स्थापित करने तथा बनाए रखने के लिए आवश्यक उपायों को प्रोत्साहन देना।
  - औद्योगिक संघर्षों की जांच तथा निपटारा करना।
  - गैरकानूनी हड़ताल तथा तालाबंदी को रोकना।

➢ छंटनी तथा काम देने से इंकार की दशा में श्रमिकों को राहत देना और सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन देना।

अर्थात स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि मालिकों या नियोक्ताओं एवं श्रमिकों के मध्य किसी भी बात पर जो मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, वे औद्योगिक विवाद कहलाते हैं। औद्योगिक विवाद के फलस्वरूप श्रमिक हड़ताल एवं तालाबंदी घोषित कर देते हैं, जिस कारण उत्पादन प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। इससे औद्योगिक क्षेत्र में अशांति फैल जाती है। औद्योगिक क्षेत्र में अशांति को सुलझाने एंव समाप्त करने के लिए औद्योगिक आधिनियम बनाये जाते हैं।

2. बोध प्रश्न

➢ **औद्योगिक विवाद को परिभाषित कीजिए।**

.....

.....

.....

4.4. भारत में औद्योगिक विवाद

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया काफी देर से आरम्भ हुई। इसका यह परिणाम हुआ कि औद्योगिक विवाद भी औद्योगिक विकास के उपरांत ही प्रारंभ हुए। भारत में औद्योगिक विवादों के इतिहास को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

भारत में औद्योगिक विवाद की पहली अवस्था

भारत में औद्योगिक विवाद की पहली अवस्था का आरम्भ औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भ से प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक माना जाता है। उस दौरान श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए किसी भी प्रकार का संगठन नहीं था। इसके कारण औद्योगिक श्रमिकों की दशा अत्यंत दयनीय थी। ब्रिटिश शासन द्वारा पूंजीपतियों को ही संरक्षण प्रदान किया जाता था। सन् 1859–60 में भारतीय श्रमिकों और यूरोपीय रेल ठेकेदारों के बीच कुछ विवाद हुआ, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1860 में मालिक एवं श्रमिक विवाद अधिनियम

पारित किया गया। इस अधिनियम को बनाने का मुख्य उद्देश्य नियोंक्ताओं एवं श्रमिकों के मध्य झगड़ों को निपटाने की एक पहल के रूप में था।

भारत में औद्योगिक विवाद की दूसरी अवस्था

भारत में औद्योगिक विवाद की दूसरी अवस्था का आरम्भ प्रथम विश्व युद्ध सन् 1914 से प्रारंभ होकर सन् 1929 में समाप्त माना जाता है। प्रथम विश्व युद्ध ने पूर्ववर्ती स्थिति में अचानक से परिवर्तन कर दिया था। इस अवधि में कुछ परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका रही। दरअसल, प्रथम विश्व युद्ध के कारण देश के सामान्य जीवन में जागरूकता का विकास हुआ। इसके साथ ही रूसी क्रांति की लहर ने विश्व को हिला कर रख दिया था, जिससे भारत भी अछूता नहीं रहा। इन सभी घटनाओं ने भारतीय श्रमिकों को भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया।

भारत में औद्योगिक विवाद की तीसरी अवस्था

भारत में औद्योगिक विवाद की तीसरी अवस्था का प्रारंभ सन् 1929 से माना जाता है और यह व्यवस्था द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ (सन् 1939) होने के साथ ही समाप्त हो जाती है। इस अवस्था के अंतर्गत उद्योगों एवं उद्योगपतियों ने श्रमिकों की छंटनी, मजदूरी में कमी, विवेकीकरण आदि की नीतियों को अपनाना शुरू किया। इनके कारण श्रमिकों के बीच में असंतोष को विचारों का प्रारंभ माना जाता है।

भारत में औद्योगिक विवाद की चौथी अवस्था

भारत में औद्योगिक विवाद के इतिहास में चौथी अवस्था का आरम्भ द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ (सन् 1939) से माना जाता है और इस अवस्था का अंत भारतीय ब्रिटिश गुलामी के अंत के साथ ही सन् 1947 में माना जाता है।

भारत में औद्योगिक विवाद की पांचवीं अवस्था

भारत में औद्योगिक विवाद की पांचवीं अवस्था का प्रारंभ सन् 1947 से स्वतंत्रता के साथ–साथ होता है। स्वतंत्र भारत को अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संघर्ष करने पड़े। श्रमिकों को पहली बार स्वतंत्र वातावरण में कार्य करने का मौका मिला। उन्हें अपनी एक लोकतान्त्रिक एवं उनकी सुविधाओं का ध्यान देने

वाली सरकार मिली। भारत में स्वतंत्रता के बाद श्रमिकों की समस्याओं पर और भी विशेष ध्यान से देखा जाने लगा।

4.5. औद्योगिक विवाद के कारण

1. **वेतन/मजदूरी की मात्रा (Quantum of Wages)**- औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण मजदूरी की मात्रा ही रही है। श्रमिक वर्ग हमेशा अपने जीवन के स्तर में सुधार एवं एक सामान्य जीवन स्तर से जीवनयापन करने के लिए मजदूरी की मात्रा में वृद्धि की मांग करते रहते हैं। मजदूरी की मात्रा में मुख्यतः न्यूनतम मजदूरी, वास्तविक मजदूरी, मजदूरी के स्तर, मजदूरी में अंतर, वार्षिक मजदूरी वृद्धि, मजदूरी के निर्धारण के मानदंड आदि को लेकर प्रायः श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के मध्य विवाद की स्थिति उत्पन्न होती रहती है।

2. **महंगाई भत्ता (Dearness Allowance)**- श्रमिकों द्वारा समय–समय पर उपभोक्ता सूचकांक ;ब्वदेनउमत च्तपबम प्दकमगद्ध के बढ़ते प्रभाव को कम करने एवं महंगाई से सामंजस्य स्थापित करने के लिए महंगाई भत्ते की मांग की जाती है।

3. **बोनस (Bonus)**- श्रमिकों द्वारा बोनस की मांग के अंतर्गत बोनस की गणना, बोनस की मात्रा, बोनस के भुगतान का समय, उत्पादकता बोनस, प्रोत्साहन बोनस, समय पर बोनस का भुगतान आदि से संबंधित विवाद शामिल किए जाते हैं।

4. **छंटनी (Retrenchment)**- जब उद्योगों में काम की कमी के कारण मजदूरों को निकाला जाता है, तो श्रमिकों द्वारा आजीविका समाप्त होने के डर से संघर्ष किया जाता है, जो औद्योगिक विवाद का कारण भी बनता है।

5. **कार्य के घंटे (Hours of Work)-** भारतीय कारखाना अधिनियम में किसी भी उद्योग के लिए कार्य के घंटों का स्पष्ट उल्लेख है। परंतु जब कारखाने के मालिकों या नियोक्ताओं के द्वारा इन नियमों का पालन नहीं किया जाता या सरकारी कर्मचारियों द्वारा श्रमिक नियमों की उचित देखभाल नहीं की जाती तो श्रमिक, संघर्ष का रास्ता अपना लेते हैं और उचित कार्रवाई की मांग करने लगते हैं।

6. **कार्य की भौतिक दशाएं (Physical Working Conditions)-** श्रमिकों द्वारा जिस प्रकार के वातावरण में कार्य किया जाता है, उस वातावरण का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है। कार्य की भौतिक दशाओं में मुख्यतः सफाई, तापमान, भीड, स्वास्थ्य, रक्षा, तकनीकी मशीनों की कार्यशीलता, मशीनों एवं भवनों की बनावट, उत्पादन प्रणाली, स्वचालित मशीनें आदि को लेकर समय–समय पर विवादों की स्थिति उत्पन्न होती रहती है।

7. **कल्याणकारी सुविधाएं (Welfare Amenities)-** श्रमिकों के जीवनयापन के लिए मूलभूत सुविधाओं का अभाव भी विवाद की स्थिति उत्पन्न करता है। इसलिए कारखाने में कैंटीन, विश्राम गृह, प्राथमिक चिकित्सा, शैक्षणिक, यातायात, श्रम, कल्याण केन्द्र आदि आधारभूत सुविधाएं भी उपलब्ध होनी चाहिए। ये सुविधाएं औद्योगिक विवादों को कम करने में सहायक होती हैं।

8. **सामाजिक सुरक्षा (Social Security)**- कार्मिकों या श्रमिकों के लिए क्षतिपूर्ति, प्रसूति लाभ, भविष्य निधि पेंशन, बीमारी हित लाभ, चिकित्सा आदि का लाभ नहीं मिल पाना भी औद्योगिक विवाद का कारण बन सकता है।

9. **मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)-** मनोवैज्ञानिक कारणों में नियोक्ताओं का व्यवहार, उनका आचार, दोषपूर्ण नेतृत्व, अनावश्यक अनुशासन पर जोर, सामाजिक मूल्यों के बीच संघर्ष आदि औद्योगिक विवादों का आधार बनते हैं।

10. **राजनीतिक कारण (Political Causes)-** श्रमिक संघों पर राजनीतिक दबाव के कारण एवं बाह्य नेतृत्व के कारण श्रम संघों के बीच आपसी प्रतिद्वंद्विता देखी जाती है, जो भविष्य में औद्योगिक विवादों का कारण बनती है।

➢ भारत में औद्योगिक विवादों के मुख्य कारणों को निम्नलिखित तालिका से संक्षिप्त में समझा जा सकता है:

आर्थिक कारण	प्रशासनिक कारण	राजनीतिक कारण	अन्य कारण
•कम मजदूरी देना •श्रमिकों में गरीबी •कीमत स्तर में वृद्धि, महंगाई भत्ते एवं बोनस की मांग •कार्य स्थल पर काम की असंतोषजनक व्यवस्था •विवेकीकरण तथा उससे उत्पन्न बेरोजगारी •छंटनी एवं काम देने से इनकार •समय–समय पर तालाबंदी •हड़तालों की अधिकता •जुर्माना •नौकरी से अलग करना या मजदूरी में से अनियमित कटौतियां इत्यादि	•दोषपूर्ण भर्ती प्रणाली •समय–समय पर सेवा की शर्तों में परिवर्तन •पदोन्नति के दोषपूर्ण नियम •श्रमिकों के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण एवं व्यवहार •कार्य के घंटे, कार्य के विभाजन, पाली समूह आदि की असंतोषपूर्ण व्यवस्था	•श्रमिकों को भड़काना एवं भटकाना •दलगत राजनीति का प्रभाव •श्रम संघों के आपसी विवाद एवं मतभेद •श्रम संघ की मान्यता संबंधी प्रकरण इत्यादि •श्रमिक नेता की मृत्यु या दुर्घटना •सरकारी नीतियों का विरोध एवं अवमानना	•परस्पर विरोधी मनोवृत्तियां एवं व्यवहार •नियोक्ता द्वारा श्रमिकों से कार्य स्थल पर बदले की भावना से कार्य करना •श्रमिकों में अशिक्षा एवं अस्वस्थता

3. बोध प्रश्न

औद्योगिक विवाद के कारणों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.6 औद्योगिक विवाद के प्रभाव

औद्योगिक विवाद कई पक्षों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। कुछ विचारक मानते हैं कि इसके अच्छे परिणाम होते हैं, इससे श्रमिकों की दशा में तो सुधार होता ही है साथ ही यह इस पर निर्भर करता है कि औद्योगिक विवाद का निपटारा होने पर किस पक्ष को लाभ होगा। इसके विपरीत कुछ विचारकों का कहना है कि औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादन में कमी आती है, जिससे श्रमिकों, नियोक्ताओं और उपभोक्ताओं तथा समुदाय पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। पक्षकारों के अलग–अलग दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि औद्योगिक विवाद के अनुकूल प्रभाव भी पड़ते हैं और प्रतिकूल प्रभाव भी। यहां हम संक्षेप में औद्योगिक विवाद से होने वाले हानिकारक तथा लाभकारी प्रभावों की विवेचना करने का प्रयास करेंगेः

1. **औद्योगिक विवादों से लाभकारी प्रभाव (Benefits of Industrial Disputes)**

औद्योगिक विवादों के कारण श्रमिक, समाज तथा राष्ट्र को अनेक लाभ होते हैं। निम्न बिंदुओं के माध्यम से हम औद्योगिक विवाद से होने वाले लाभों को समझने का प्रयास करेंगे–

- **श्रमिकों को आर्थिक लाभ होना.**

औद्योगिक विवादों के कारण श्रमिकों को आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। इससे उनकी मजदूरी तथा महंगाई भत्ते में वृद्धि हो जाती है और बोनस की सुविधा भी प्राप्त होती है।

- **कार्य करने की दशाओं में सुधार.**

औद्योगिक श्रमिक जिन कारखानों में कार्य करते हैं, उनकी दशाएं अत्यंत खराब होती हैं। इससे उनके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। हड़तालों की सहायता से श्रमिक अपने कार्य की दयनीय दशाओं में सुधार कर लेते हैं, जिससे उनकी कुशलता व उनके रहन–सहन के स्तर को ऊंचा उठाने में सहायता मिलती है।

- **श्रमिकों के काम के घंटों में कमी.**

औद्योगिक क्षेत्रों में विवाद होने से पूर्व श्रमिकों को उद्योगों में कई घंटे कार्य करना पड़ता था। हडतालों की सहायता से श्रमिक अपने कार्य करने के घंटों में कमी करा सकते हैं। साथ ही काम के मध्य में अवकाश आदि की व्यवस्था कराने, सवेतन छुट्टियों में वृद्धि कर लेने में सफल हो जाते हैं।

- **श्रमिकों की कार्य प्रकिया में वृद्धि.**

औद्योगिक विवादों के फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों के कार्य की दशाओं में सुधार किया जाता है, जिससे उनको आर्थिक लाभ होता है, उनका जीवन स्तर उन्नत बनता है तथा काम के घंटों में कमी आती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों की कुशलता और कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है।

- **श्रमिकों में पारस्परिक सहयोग की भावना में वृद्वि.**

औद्योगिक विवाद का सबसे अच्छा प्रभाव यह पडता है कि श्रमिकों के मध्य आपस में पारस्परिक एकता और सहयोग की भावना का विकास होता है।

- **औद्योगिक प्रबंध में श्रमिकों को स्थान.**

औद्योगिक विवादों के कारण उद्योगों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को भागीदारी करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। श्रमिकों को इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे प्रबंध में होने के कारण अपनी समस्याएं स्वयं सुलझा लेते हैं।

- **श्रमिकों के शोषण में कमी.**

हम यह नहीं कह सकते हैं कि औद्योगिक विवाद के कारण श्रमिकों के प्रति होने वाले शोषण का अंत हो जाता है। लेकिन , श्रमिकों के प्रति होने वाले शोषण में कमी जरूर आ जाती है। उनको अनेक प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं।

- **प्रबंधकों में जागरूकता.**

औद्योगिक विवाद के फलस्वरूप उद्योगों के प्रबंधकों में जागरूकता का विकास हुआ है। प्रबंधक श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार, उनका अनावश्यक शोषण नहीं करते। वे श्रमिकों की समस्याओं को उपेक्षा और उदासीनता की दृष्टि से नहीं देखते। उद्योगों में प्रबंधक अब हर कदम फूंक–फूंककर रखने लगे हैं।

2. औद्योगिक विवादों से हानिकारक प्रभाव (Harmful Effect of Industrial Disputes)

औद्योगिक विवादों से सिर्फ लाभ ही लाभ नहीं होता है, इससे अनेक हानियां भी होती हैं। श्रमिकों और मालिकों के बीच संघर्ष औद्योगिक विवाद का आधार है। इस संघर्ष से हानि होना स्वाभाविक है। औद्योगिक विवादों के कारण होने वाले हानिकारक परिणामों का अध्ययन हम निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणों से कर सकते हैं–

उत्पादकों के लिए हानि	श्रमिकों के लिए हानि	समाज के लिए हानि
➢ उत्पादन में कमी ➢ हड़तालों के कारण अनुशासनहीनता एंव अव्यावहारिकता ➢ अधिक सहायता व्यय ➢ श्रम और पूंजी के बीच घृणा एवं असमानता	➢ आय की कमी ➢ श्रमिकों की कार्य क्षमता पर बुरा प्रभाव ➢ ऋणग्रस्तता एंव गरीबी ➢ हड़तालों की असफलता से हानियां	➢ उत्पादन की कमी ➢ सामाजिक अव्यवस्था ➢ जनसाधारण के लिए संकट ➢ सरकार के लिए समस्या

1. उत्पादकों के लिए हानि–

औद्योगिक विवाद के कारण सबसे ज्यादा हानि उत्पादकों को उठानी पडती है। उत्पादकों को होने वाली हानियां निम्न प्रकार हैंः

➢ **उत्पादन में कमी.**

जब किसी उद्योग में हड़ताल या तालाबंदी हो जाती है, तब उद्योग के उत्पादन कार्य में बाधा पडती है, जिससे उत्पादन की मात्रा भी कम हो जाती है। उत्पादन कम होने से बिक्री में भी कमी आ जाती हैं। बिक्री कम होने से बाजार छिन्न–भिन्न हो जाता है।

➢ **हड़तालों के कारण अनुशासनहीनता एंव अव्यावहारिकता.**

हड़तालग्रस्त उद्योगों में अनुशासन व्यवस्था समाप्त हो जाती है। औद्योगिक अशांति का जन्म होता है, जिससे सामान्य जनजीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। हड़तालों द्वारा उत्पन्न अनिश्चितता के वातावरण में अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है तथा अनुशासनहीनता एंव अव्यावहारिकता में वृद्धि हो जाती है।

लेस्टर ने लिखा है "हड़ताल करने का उद्देश्य मालिक में यह विश्वास उत्पन्न करना होता है कि संघ की मांगों को स्वीकार कर लेना उसके ही लिए हित में है। मालिक को यह अनुभव कराना होता है कि संघ के कार्यक्रमों को स्वीकार नहीं करके उनका विरोध करना कितना महंगा पड़ता है।"

➢ **अधिक सहायता व्यय.**

औद्योगिक विवाद के कारण उत्पादक को संभावित लाभ से वंचित रहना पड़ता है। साथ ही सहायक खर्च जैसे– कारखाना भवन का किराया, पूंजी का ब्याज, कर्मचारियों का वेतन आदि भी देना पड़ता है।

- **श्रम और पूंजी के बीच घृणा एवं असमानता.**

हड़ताल के कारण उत्पादक, श्रमिकों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। श्रम और पूंजी के मध्य भी गहरी असमानता की खाई उत्पन्न होने लगती है, जिससे वर्ग संघर्ष को बढ़ावा मिलता है और जो औद्योगिक विवादों का कारण बनता है।

2. श्रमिकों के लिए हानि

औद्योगिक विवाद के कारण श्रमिकों को निम्नलिखित हानियां सहन करनी पडती हैं

- **आय में कमी.**

हड़ताल या तालाबंदी के कारण श्रमिक उतने समय तक घर में बेकार बैठे रहते हैं, जिस कारण उनकी मजदूरियां कम हो जाती हैं और कुछ दिन वेतन का नहीं मिलना तो उनके लिए बहुत ही कष्टदायी होता है। मजदूरी के अभाव में श्रमिक एवं उनके आश्रितों को पूरी खुराक नहीं मिलने के कारण स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनका पारिवारिक जीवन छिन्न–भिन्न हो जाता है।

- **श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव.**

हड़ताल के समय श्रमिकों का पारिश्रमिक व्यर्थ चला जाता है। जिस समय में श्रमिक हड़ताल करते हैं, वह समय दोबारा लौटकर नहीं आता। खाली और बेकार बैठे रहने से श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

- **ऋणग्रस्तता एवं गरीबी.**

हड़ताल और तालाबंदी के समय श्रमिकों को ऋणग्रस्तता का सामना करना पडता है, क्योंकि हड़ताल के समय मजदूरी नहीं मिलती। इसलिए अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए श्रमिकों को उधार लेना पड़ता है।

- **हड़तालों की असफलता से हानियां–**

हड़तालों की असफलता से श्रमिकों को निम्न हानियां होती हैं।

- श्रमिकों का नैतिक पतन होता है, साथ ही उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है।

- श्रमिकों की अपने संघ के प्रति आस्था कम हो जाती है और इससे श्रम संघ आंदोलन को गहरी चोट पहुंचती है।
- श्रमिकों में एकता की भावना में कमी आ जाती है।
- बेकारी की समस्या और भी अधिक उग्र हो जाती है।
- श्रमिकों की छंटनी हो जाती है।

3. समाज को हानि.

औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादकों या श्रमिकों को ही हानि नहीं होती, अपितु समाज, जनता और राष्ट्र पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक विवादों से समाज को निम्न हानियां उठानी पडती हैं:

➢ **उत्पादनों की कमी.**

हड़तालों तथा तालाबंदी से उत्पादन कार्य ठप हो जाता है, जिससे उत्पादन में कमी आ जाती है और राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय दोनों पर प्रभाव पड़ता है।

➢ **सामाजिक अव्यवस्था.**

हड़तालों और तालाबंदियों के फलस्वरूप सामाजिक वातावरण दूषित हो जाता है। समाज में अनिश्चितता तथा असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। साथ ही विद्वेष और विषमता को बढ़ावा मिलता है।

➢ **जनसाधारण के लिए संकट.**

जनउपयोगी संस्थाओं जैसे– बिजली, परिवहन, जल आदि में हड़ताल होने से जनसाधारण को बड़ी असुविधा हो जाती है। सर्वसाधारण जनता को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी हड़ताल के कारण उत्पादन कम हो जाता है परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और चोरबाजारी जैसी समाजविरोधी प्रवृत्तियां सक्रिय हो जाती हैं।

➢ **सरकार के लिए समस्या.**

सरकार को कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए इंतजाम करना पड़ता है। हड़ताल तथा तालाबंदी के कारण उत्पादन ठप होने से उत्पादन पर मिलने वाले करों की भी हानि होती है। सरकार को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप की नीति अपनानी पड़ती है।

4.बोध प्रश्न :

- औद्योगिक विवाद के कारण होने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.7 औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए सुझाव

औद्योगिक विवादों से समाज, मालिक और श्रमिक तीनों को क्षति उठानी पड़ती है। इसलिए इस क्षति को रोकना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो कोई भी राष्ट्र आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। इसके लिए सबसे पहला प्रयास तो यह किया जाना चाहिए कि औद्योगिक विवादों का जन्म ही न हो। इससे औद्योगिक शांति की स्थापना के साथ ही उत्पादन में वृद्धि भी होगी, जिससे राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए, जिससे श्रमिकों और मालिकों के बीच दूरी को कम किया जा सके। समस्याओं को उत्साह, लगन, अनुभव और कर्मठता के आधार पर सुलझाया जा सकता है। संक्षेप में, औद्योगिक विवादों की रोकथाम की अनेक विधियां प्रयुक्त की जाती है। उनमें कुछ निम्न प्रकार हैं:

1. औद्योगिक कार्यों की समितियां।
2. सुदृढ़ श्रम संघप्रणाली ।
3. संयुक्त औद्योगिक परिषदों का निर्माण।
4. मजदूरी परिषदों का निर्माण।
5. सरकारी स्थाई आदेश।
6. सुझाव पद्धति का निर्माण।

7. सहभागिता को बढ़ावा देना।

8. लाभ अंशभागिता को बढ़ावा ।

9. श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति।

10. परिवेदना निवारण पद्धति का उपयोग।

1. औद्योगिक कार्यों की समितियां.

औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए कार्य समितियां महत्वपूर्ण रूप से भूमिका का निर्वहन करती हैं। शाही श्रम आयोग के अनुसार औद्योगिक विवादों को सुलझाने एवं समाप्त करने में औद्योगिक समितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। समितियों का प्रमुख कार्य श्रमिकों और नियोक्ताओं (मालिकों) के बीच गलतफहमी को दूर करना, श्रमिकों में कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना एंव उत्तरदायित्व की भावना का प्रचार–प्रसार करना, मालिकों और श्रमिकों के मध्य पारस्परिक सहयोग को बनाए रखना, मालिकों और श्रमिकों के मध्य अनुशासन और उचित व्यवहार को बनाए रखना, श्रमिकों के जीवन स्तर को प्रगातिशील बनाए रखने का प्रयास करना, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के प्रयास करना, श्रमिकों की कार्य क्षमता को बनाए रखना तथा कार्यक्षमता को घटाने वाले कारकों की खोज करना व उनकी जांचकर समाधान करना होता है।

2. सुदृढ़ श्रम संघ प्रणाली .

सुदृढ़ औद्योगिक श्रम संघ उद्योगों में शांति व्यवस्था बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देने का कार्य कर सकते हैं। वास्तव में सुदृढ़ औद्योगिक श्रम संघ हडताल, तालाबंदी, घेराव व तोड़–फोड़ के स्थान पर शांतिपूर्ण तरीके से मतभेदों एवं समस्याओं का निपटारा करने की भावना को प्रोत्साहित करते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सुदृढ श्रमसंघ श्रमिकों के हित में कार्य करने वाली एक महत्वपूर्ण कार्यदायी संस्था है। इसके माध्यम से सामूहिक रूप से सौदेबाजी करके श्रमिकों की समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है।

3. संयुक्त औद्योगिक परिषदों का निर्माण

संयुक्त औद्योगिक परिषदों की स्थापना द्वारा भी समय–समय पर औद्योगिक विवादों को कम किया जा सकता है। ये परिषदें चार प्रकार की हो सकती हैं:

- राष्ट्रीय स्तर पर सभी उद्योगों की एक परिषद,

- राज्य के स्तर पर सभी उद्योगों के लिए एक परिषद,
- अलग–अलग उद्योगों की अलग–अलग परिषद,
- एक ही औद्योगिक इकाई में विभिन्न विभागों के लिए अलग–अलग परिषद।

इन समितियों के माध्यम से विभिन्न विषयों पर विचार–विमर्श हो सकता हैं, वे इस प्रकार हैं:

- प्रतिदिन काम करने की भौतिक दशाएं और श्रमिकों की मजदूरी,
- उद्योगों से संबंधित उत्पादन की प्रकिया,
- आंकड़ों को एकत्रित करना,
- श्रम की कार्य कुशलता को बढ़ाने पर ध्यान देना,
- औद्योगिक क्षेत्र में प्रबंधन संबंधी समस्याओं पर विचार करना एवं उनका समाधान करने का प्रयास करना आदि।

4 मजदूरी परिषदों का निर्माण.

औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी परिषदों के माध्यम से भी औद्योगिक विवादों को कम किया जा सकता है। यह परिषदें मजदूरी से संबंधित समस्याओं और उनके समाधानों के विभिन्न पहलुओं पर विचार करती हैं। साथ ही इन मजदूरी परिषदों का कार्य न्यूनतम मजदूरी की दर का निर्धारण करना और कार्य करने की दशाओं में सुधार से संबंधित भी होता है। इसमें नियोक्ताओं (मालिक) और श्रमिकों के बराबर–बराबर प्रतिनिधि होते हैं तथा कम से कम तीन व्यक्ति बाहर से लिए जाते हैं, जो समस्या से संम्बन्धित विषय के विशेषज्ञ होते हैं।

5 सरकारी स्थाई आदेश.

वर्तमान दौर में दिन–प्रतिदिन श्रमिकों की समस्याओं में वृद्धि होती जा रही है। यदि मालिकों पर ही इन समस्याओं के समाधान का जिम्मा छोड़ दिया जाए तो ये सुलझने के बजाय और भी उलझ जाती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार श्रमिकों से संबंधित नियम–कानून बनाये और इन नियम–कानूनों को संरक्षण देने की व्यवस्था भी करे। स्थाई सरकारी आदेशों के कारण श्रमिकों और मालिकों को अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान हो जाता है। साथ ही, मालिक भी यह जान जाते हैं कि उन्हें किन–किन

शर्तों का पालन करना है। इसका यह परिणाम होता है कि दोनों के बीच कभी भी किसी प्रकार की दुविधा की स्थिति नहीं आती। इसलिए सरकार को स्थाई आदेशों एवं नियमों का निर्माण करना चाहिए और इन्हें कड़ाई से औद्योगिक क्षेत्र में लागू भी करवाना चाहिए, ताकि इससे औद्योगिक विवादों को सुलझाने में मदद मिल सके।

6 सुझाव पद्धति का निर्माण.

सुझाव योजना भी औद्योगिक विवादों के नियंत्रण की एक महत्वपूर्ण विधि है। इस योजना के अंतर्गत श्रमिकों से प्रबंध की विभिन्न क्षेत्रों में सुधार के लिए सुझाव मांगे जाते हैं। इस योजना का मुख्य उद्देश्य सेवायोजक एवं श्रमिकों के बीच अच्छे संबंधों का विकास करना होता है, जिससे औद्योगिक विवाद की स्थिति में कमी आ सके।

7 सहभागिता को बढ़ावा देना.

सहभागिता से तात्पर्य किसी औद्योगिक संस्था में श्रमिकों के हिस्सेदार बन जाने से है। सहभागिता के अंतर्गत श्रमिकों को उद्योग के लाभ में भाग लेने के अतिरिक्त पूंजी व प्रबंध में भी भाग लेने का अधिकार मिल जाता है। सेवायोजकों की ही भांति श्रमिक भी औद्योगिक पूंजी का एक अंश देते हैं और प्रबंध व्यवस्था में भाग लेने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

8 लाभ अंशभागिता को बढ़वा.

लाभ अंशभागिता योजना के अंतर्गत श्रमिकों को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त संस्था के लाभों में से कुछ हिस्सा भी प्रदान किया जाता है। अर्थात सेवायोजकों द्वारा अपने लाभों में से कुछ हिस्सा श्रमिकों को प्रदान करना लाभ अंशभागिता कहलाता है। इसका अच्छे श्रम संबंधों के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान होता है। लाभ अंशभागिता से उद्योग के प्रति अपनेपन की भावना का उदय एवं विकास होता है। श्रमिकों को समान अधिकार एवं सामाजिक न्याय की अनुभूति होती हैं।

9 श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति.

भारतीय कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार प्रत्येक ऐसे कारखाने में जहां साधारणतया 500 या इससे अधिक श्रमिक नियुक्त हों, श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना आवश्यक होता है। आइये जानते हैं, श्रम कल्याण अधिकारी के कर्तव्य .

श्रम कल्याण अधिकारी के निम्न प्रमुख कर्तव्य होते हैं:

- श्रमिकों एवं प्रबंधकों या नियोक्ताओं के मध्य संपर्क स्थापित करना,
- श्रमिकों एवं नियोक्ताओं में मधुर एवं सौहार्दपूर्ण संबंधों का विकास करने का प्रयास करना,
- श्रमिकों में व्याप्त असंतोष व उनके कारणों से प्रबंधकों को अवगत कराना एवं उनका समाधान करना,
- श्रमिकों को उनके कर्तव्यों एवं व्यवहार करने के तरीकों के बारे में जानकारी प्रदान करना,
- प्रबंधकों एवं श्रमिकों के बीच कुशल संप्रेषण व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास करना,
- श्रम नीति के निर्माण में सहयोग देना,
- औद्योगिक विवादों की रोकथाम हेतु प्रयास करना,
- संस्था में होने वाली अवैध हड़तालों व तालाबंदी को रोकने का प्रयास करना।

10 परिवेदना निवारण पद्धति का उपयोग–

परिवेदना किसी कर्मचारी या श्रमिक द्वारा लिखित अथवा मौखिक रूप में औपचारिक ढंग से प्रस्तुत कोई ऐसी शिकायत है, जिसका संबंध उसकी सेवा की शर्तों, कार्यदशाओं, संस्था की नीतियों, सामूहिक सौदेबाजी अथवा अन्य किसी भी समझौते से हो सकता है। ऐसी परिवेदनाएं मजदूरी के भुगतान, अधिसमय मजदूरी, सवेतन अवकाश, स्थानांतरण, पदमुक्ति, पदच्युत करने या ऐसी ही किन्हीं शिकायतों से संबंधित होती हैं। एक अच्छी परिवेदना पद्धति द्वारा कर्मचारियों की दिन–प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली परिवेदनाओं का प्रारंभिक स्तर पर ही सरलता व शीघ्रता से निवारण करने का प्रयास किया जाता है, जिससे परिवेदना औद्योगिक विवाद का रूप धारण न कर पायें।

4.8 सारांश

वर्तमान समय में श्रम का प्रत्येक देश के उत्पादन में विशेष महत्व है, जो किसी भी राष्ट्र के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसलिए श्रमिक वर्ग सदैव अपने अधिकारों एवं उचित श्रमिक मूल्य की मांग नियोक्ताओं से करता है। यह नियोक्ताओं का दायित्व है कि वे उनकी उचित मांगों की पूर्ति समयानुसार करते रहें और श्रमिकों के जीवन को उन्नत बनाने में आवश्यक कदम उठाएं। अगर नियोक्ताओं द्वारा यह कदम नहीं उठाए जाते, तो यहीं से श्रमिकों के संघर्ष की शुरुआत होती है। इसका परिणाम औद्योगिक विवाद के रूप में सामने आता है।

स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि नियोक्ताओं एवं श्रमिकों के मध्य किसी भी बात पर जो मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, वहीं से औद्योगिक विवादों का जन्म होता है। औद्योगिक विवाद के फलस्वरूप श्रमिक हड़ताल एवं तालाबंदी की घोषणा कर देते हैं, जिस कारण उत्पादन प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है, जिससे औद्योगिक क्षेत्र में अशांति फैल जाती है।

औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य सामाजिक एवं आर्थिक समझौते नहीं हो पाना या समयानुसार समायोजन करने की क्षमता का अभाव भी माना जा सकता है। औद्योगिक विवाद कई पक्षों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है। जहां एक ओर इसके सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर हम इसके नकारात्मक प्रभाव भी देखते हैं। श्रमिकों की दशा में सुधार होना, श्रमिकों को आर्थिक लाभ होना, श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं में सुधार होना, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होना, उनके शोषण में कमी होना, प्रबंधकों में श्रमिकों के प्रति जागरूकता उत्पन्न होना ये सभी औद्योगिक विवाद के सकारात्मक पहलू हैं।

वहीं, सुधार इस बात पर भी निर्भर करता है कि औद्योगिक विवाद का निपटारा किसके पक्ष में जा रहा है। इसके विपरीत, औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादन में कमी आती है, अनुशासनहीनता बढती है, सामाजिक अव्यवस्था फैलती है, ऋणग्रस्तता में वृद्धि होती है, सरकार और जनसाधारण के लिए समस्याएं उत्पन्न होती है, जिससे श्रमिकों, नियोक्ताओं, उपभोक्ताओं तथा समाज पर भी हानिकारक प्रभाव पडता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगिक विवाद के अनुकूल प्रभाव के साथ–साथ प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ते हैं।

4.9 स्वप्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

➢ औद्यौगिक संघर्ष वे संघर्ष या मतभेद हैं, जो औद्योगिक रोजगार देने या नहीं देने अथवा रोजगार की शर्तों या श्रम की दशाओं के संबंध में विभिन्न सेवायोजकों के मध्य या विभिन्न श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों और सेवायोजकों के मध्य विद्यमान होता है।

➢ औद्योगिक संघर्ष शब्द साधारणतः श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य श्रमिकों को रोजगार या उनकी बेरोजगारी की दशाओं से संबंधित असहमति को निर्देशित करता है। अधिकांश रूप से उत्पन्न होने वाले औद्योगिक विवादों का मुख्य कारण संघर्ष, मजदूरी, महंगाई भत्ता, बोनस श्रमिकों की पदच्युति अथवा सेवामुक्ति, अवकाश एवं छुट्टियां, सेवानिवृत्ति लाभ और मकान किराया एवं अन्य भत्तों से संबधित होते हैं।

➢ श्रमिकों द्वारा अपने नियोक्ता के विरुद्ध गतिरोध को औद्योगिक विवाद के रूप में देखा जाता है।

क्या आप जानते हैं?

1. An Introduction to Labour पुस्तक के लेखक कौन हैं?

1. प्रो. डैंकार्ट
2. प्रो. जीके अग्रवाल
3. वाटसन एवं डाड
4. प्रो. एचएस पैटरसन

उत्तर–प्रो. डैंकार्ट

2. Social Aspect of Industry पुस्तक के लेखक कौन हैं?

1. प्रो. डैंकार्ट
2. प्रो. एचएस पैटरसन
3. महात्मा गांधी
4. डॉ. मनोज छापड़िया

उत्तर–प्रो. एचएस पैटरसन

3. यंग इंडिया पुस्तक के लेखक कौन हैं?

1. प्रो. डैंकार्ट
2. महात्मा गांधी
3. वाटसन एवं डाड
4. पी.सी. खरे

उत्तर– महात्मा गांधी

10 **श्रमिकों द्वारा अपने नियोक्ताओं के विरूद्ध गतिरोध औद्योगिक विवाद है। किसने कहा है?**

1. प्रो. एचएस पैटरसन
2. वाटसन एवं डाड
3. प्रो. डैंकार्ट
4. महात्मा गांधी

उत्तर– प्रो. एचएस पैटरसन

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. औद्योगिक विवाद से आप क्या समझते हैं? औद्योगिक विवादों के महत्वपूर्ण कारणों की विवेचना कीजिए।
2. औद्योगिक विवादों के दुष्परिणामों की विवेचना कीजिए।
3. औद्योगिक विवाद की परिभाषा दें, भारत में औद्योगिक विवाद के विभिन्न कारणों की व्याख्या करें।
4. भारत में औद्योगिक विवाद का श्रमिकों, नियोक्ताओं, सरकार तथा समुदाय पर पड़ने वाले अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावों का विवेचना करें।
5. औद्योगिक विवाद से आप क्या समझते हैं? औद्योगिक विवाद के निपटारे के लिए समाधान की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

4.11 संदर्भ ग्रंथ

1. पी. सी. खरे, वी. सी. सिन्हा, औद्योगिक समाज विज्ञान, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 1991, पृ०सं० 05.
2. उपरोक्त, पृ०सं० 85.
3. डॉ. मामोरिया एवं डॉ. जैन, भारत की आर्थिक समस्याएं, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, सोलहवां संस्करण,1999, पृ०सं० 338.
4. पी. सी. खरे, वी. सी. सिन्हा, औद्योगिक समाज विज्ञान, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 1991, पृ०सं० 86.
5. उपरोक्त, पृ०सं० 86.
6. चतुर्भुज मामोरिय, डॉ. कामेश्वर पंडित, मानव संसाधन प्रबंध एवं औद्योगिक संबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ०सं० 252.
7. बघेल, डॉ. डी. एस., औद्योगिक समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ०सं० 217–225.

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. कुमावत, बालकृष्ण, औद्योगिक सन्नियम, साहित्य भवन, आगरा, 1988, पृ०सं० 149.
2. उपरोक्त, पृ० सं०156.
3. बघेल, डॉ. डी. एस., औद्योगिक समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ०सं० 207–210.

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक विवाद क्या हैं? औद्योगिक विवादों के महत्वपूर्ण कारणों की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

इकाई-5 औद्योगिक विवाद: प्रमुख संवैधानिक अधिनियम (Industrial Disputes: Main Constitutional Act.)

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 औद्योगिक विवाद

5.3 औद्योगिक विवाद के कारण

5.3.1 आर्थिक कारण

5.3.2 प्रशासनिक कारण

5.3.4 राजनैतिक कारण

5.3.5 अन्य कारण

5.4 भारत में औद्योगिक विवाद अधिनियम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.5 औद्योगिक विवाद अधिनियम-1947

5.6 औद्योगिक विवाद अधिनियम-1947 के उद्देश्य

5.7 औद्योगिक विवाद अधिनियम-1947 की विशेषता

5.8 औद्योगिक विवाद के प्रावधान और प्रमुख अधिनियम

5.8.1 विवाद निपटान मशीनरी

5.8.2 हड़ताल और तालाबंदी

5.8.3 छंटनी-औद्योगिक विवाद अधिनिय-1947 की धारा 2(oo)

5.8.4 शिकायत निवारण तंत्र औद्योगिक विवाद-1947

5.8.4 शिकायत निवारण तंत्र औद्योगिक विवाद -1947

5.8.6 कारख़ाना कानून

5.8.7 कार्यालयी संघों का अधिनियम

5.8.8 औद्योगिक संघों का अधिनियम

5.8.9 ट्रेड यूनियनों की मान्यता

5.9 औद्योगिक विवादों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 प्रस्तावना

औद्योगिक विवाद और संवैधानिक अधिनियम दो महत्वपूर्ण तत्व हैं जो श्रम और उद्योग क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। औद्योगिक विवाद को मजदूरों और उद्यमियों के बीच विवादों के संकेत रूप में देखा जाता है, जबकि संवैधानिक अधिनियम एक नियमन का प्रावधान करते हैं जो इस क्षेत्र के आदान-प्रदान को व्यवस्थित करने में सहायक है। इस इकाई में हम औद्योगिक विवाद और प्रमुख संवैधानिक अधिनियम के बीच के संबंध को विस्तार से चर्चा करेंगे। औद्योगिक विवाद, मजदूरों और उद्यमियों के बीच की आपसी असहमति को दर्शाता है जिसका आधार श्रम संबंधित मुद्दों होते हैं। इसमें वेतन संबंधी मुद्दे, कार्य स्थितियाँ, सामाजिक सुरक्षा, श्रम सुरक्षा, कानूनी अधिकार और उद्योग में कार्य आदेशों की अनुपालन में असंगतता शामिल होती है। ये विवाद नियोक्ताओं के हड़ताल, तालाबन्दी, समझौता और सामूहिक संवाद द्वारा हल किए जा सकते हैं, लेकिन अक्सर न्यायिक या संवैधानिक माध्यमों की आवश्यकता होती है। संवैधानिक अधिनियम-1947 और अन्य संबंधित अधिनियम मजदूरों और उद्यमियों के आदान-प्रदान को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन अधिनियमों के माध्यम से मजदूरों को उचित वेतन, आदान-प्रदान की शर्तें, श्रम सुरक्षा का पालन, आदि जैसे मुद्दों पर सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है। संवैधानिक प्रावधानों में मजदूरों के अधिकारों और सुरक्षा के लिए निर्धारित करारों का पालन करने के लिए कानूनी ढांचा होता है। इस इकाई में, हम संवैधानिक अधिनियमों के महत्वपूर्ण प्रावधानों की चर्चा करेंगे जो औद्योगिक विवादों के समाधान और उद्यमियों और मजदूरों के बीच संबंधों को समायोजित करने के लिए बनाए गए हैं। हम भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेद जैसे अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता), अनुच्छेद 19 (वाक्-स्वातत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण), अनुच्छेद 23 (मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध) आदि के महत्वपूर्ण प्रावधानों पर भी विचार करेंगे।

औद्योगिक विवादों को नियंत्रित करने वाला मुख्य संवैधानिक अधिनियम संबंधित देश के आधार पर भिन्न हो सकता है। कई देशों में, श्रम और औद्योगिक संबंध संवैधानिक अधिनियमों के बजाय विशिष्ट कानून द्वारा नियंत्रित होते हैं। हालाँकि, कुछ देशों में संवैधानिक प्रावधान हैं जो श्रम अधिकारों और औद्योगिक विवादों को संबोधित करते

हैं। उदाहरण के लिए, भारत में, भारत के संविधान में श्रम अधिकारों और औद्योगिक विवादों से संबंधित कुछ प्रावधान हैं। 1976 में 42वें संशोधन द्वारा अंतःस्थापित भारतीय संविधान के अनुच्छेद 43ए में कहा गया है कि राज्य उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएगा। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 51ए (सी) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता के लिए प्रयास करना प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्तव्य बनाता है, जिसमें औद्योगिक संबंध शामिल हो सकते हैं। अन्य देशों में, औद्योगिक विवादों को नियंत्रित करने वाला मुख्य कानून सीधे संवैधानिक अधिनियम से नहीं बल्कि श्रम कानूनों या औद्योगिक संबंधों से संबंधित विशिष्ट अधिनियमों से लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में, औद्योगिक विवादों को मुख्य रूप से 1935 के राष्ट्रीय श्रम संबंध अधिनियम (NLRA) द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो कि एक संघीय कानून है। यह अधिनियम सामूहिक सौदेबाजी या अन्य पारस्परिक सहायता या सुरक्षा के उद्देश्य से कर्मचारियों के संगठित होने और श्रमिक संघ बनाने, सामूहिक सौदेबाजी में संलग्न होने और अन्य ठोस गतिविधियों में भाग लेने के अधिकारों को स्थापित करता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि औद्योगिक विवादों के संबंध में विशिष्ट कानून और नियम देशों के बीच महत्वपूर्ण रूप से अलग हो सकते हैं। इसलिए, औद्योगिक विवादों को नियंत्रित करने वाले प्राथमिक कानून को समझने के लिए संबंधित क्षेत्राधिकार के श्रम कानूनों से परामर्श करना व साथ ही इनका अध्ययन करना आवश्यक है।

5.1 उद्देश्य

1. इस इकाई के माध्यम से औद्योगिक विवादों और संवैधानिक अधिनियमों के महत्वपूर्ण मामलों का भी अध्ययन करेंगे।

2. इस इकाई के माध्यम से, हमारा प्रयास होगा कि पाठक और पठन्त को औद्योगिक विवाद और संवैधानिक अधिनियम के बीच के संबंध समझने में सहायता मिले और उन्हें इन मुद्दों को गहराई से समझने का अवसर प्राप्त होगा।

3. औद्योगिक विवाद के कारण के कारणों का अध्ययन करेंगें।

4. इस इकाई से हमें औद्योगिक संबंधों के क्षेत्र में संवैधानिक अधिकार और न्यायिक ढांचा के माध्यम से मजदूरों की सुरक्षा और संरक्षण में सुधार के नियमों का ज्ञान होगा।

5.2 औद्योगिक विवाद

औद्योगिक विवाद, उद्योग संबंधित मुद्दों पर होने वाले विवादों की संकेत करते हैं। ये विवाद मजदूरों और उद्यमियों के बीच संबंधों, कार्य समय, वेतन, श्रम सुरक्षा, कानूनी अधिकार, श्रम संगठनों के बनने और उनके कार्य का प्रभाव, आदि पर आधारित होते हैं। ये विवाद व्यापारिक मामलों, श्रम के अधिकारों, औद्योगिक संघर्षों, औद्योगिक संबंधों के समायोजन, यूनियन कार्यकर्ताओं के मांगों, आदि से जुड़े होते हैं। औद्योगिक विवादों में व्यापारिक और श्रमिक पक्षों के बीच अपरिहार्य विरोध होता है, जहां मजदूरों की मांगें और उद्यमियों की आर्थिक मांगें संघर्ष करती हैं। इस विवाद के नतीजे में न्यायिक निर्णय, समझौता वार्ता, श्रम संगठनों का बनाना और उनके संघर्ष, संबंधित संविधानिक और कानूनी नियमों का पालन, आदि का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। औद्योगिक विवाद, नियंत्रण के लिए सन् 1938 में मुम्बई सरकार ने मुम्बई में उद्योग से सम्बन्धित कानून को लागू किया। उस समय पहली बार विवाद निपटाने के लिए औद्योगिक अदालत नाम से पृथक तंत्र स्थापित किया गया। जिसके बाद इसकी जगह पर मुम्बई औद्योगिक सम्बन्ध कानून, 1946 बनाया गया जिसे 1948, 1949, 1953 तथा 1956 में क्रम से संशोधित किया गया। स्वतंत्रता के बाद औद्योगिक विवाद से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण कानून औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 है। 1947 का औद्योगिक विवाद अधिनियम, अपनी धारा 2 (जीजी) (के) में औद्योगिक विवादों को परिभाषित करता है, "औद्योगिक विवादों का मतलब नियोक्ताओं और नियोक्ताओं के बीच या नियोक्ताओं और कामगारों के बीच या कामगारों और कामगारों के बीच कोई विवाद या अंतर है, जो इससे जुड़ा है रोजगार या गैर-रोजगार या रोजगार की शर्तों या किसी भी व्यक्ति के श्रम की शर्तों के साथ।" अत: अधिनियम, औद्योगिक विवादों को नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच या

नियोक्ताओं और कामगारों के बीच किसी भी संघर्ष या अंतर के रूप में परिभाषित करता है, जो रोजगार या गैर-रोजगार, रोजगार की शर्तों या काम की शर्तों से जुड़ा है।

5.3 औद्योगिक विवाद के कारण

औद्योगिक विवाद के कई कारण हो सकते हैं, श्रमिकों के हकों और अधिकारों की मांग एक प्रमुख कारण है जब श्रमिक संगठनों या श्रमिकों को लगता है कि उनके हकों का सम्मान नहीं हो रहा है, जैसे कि न्यायपूर्ण वेतन, काम के नियम और शर्तों का पालन, कार्यकारी सुरक्षा, और विभिन्न लाभों की उपलब्धता। विभिन्न संगठन या कर्मचारी संगठनों के बीच मतभेद होते हैं, जैसे कि कर्मचारी संगठन की मांग के साथ मजदूरी संबंधित मुद्दे, नई नीतियों और विधियों के खिलाफ विरोध आदि। व्यापारिक और आर्थिक मुद्दे औद्योगिक विवाद का एक बड़ा कारण हो सकते हैं। साथ ही इसमें बाजार की परिस्थितियों, उत्पाद दरों, विपणन की नीतियों, संगठन के वित्तीय स्थिति, विपणन रणनीतियों, टैरिफ और विदेशी व्यापार से संबंधित मुद्दे शामिल हो सकते हैं। औद्योगिक विवादों का एक और प्रमुख कारण पर्यावरण से संबंधित हो सकता है। जब उद्योगों के कारण प्रदूषण, जल संरक्षण, वनस्पति और जीव-जंतु संरक्षण, औद्योगिक अपशिष्ट और प्रदूषण नियंत्रण के मामले में नियमों के उल्लंघन या नई नीतियों के खिलाफ विरोध होता है। ये कुछ मुख्य कारण हैं, जो औद्योगिक विवादों को पनपाने के लिए उत्तरदायी हैं। औद्योगिक विवादों के लिए आर्थिक, प्रशासनिक, राजनैतिक व अन्य कारण भी शामिल है। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

5.3.1 आर्थिक कारण – आर्थिक कारणों में श्रमिको की गरीबी, कम मजदूरी, कीमत स्तर में वृद्धि, महँगाई – भत्ते की माँग, तालाबन्दी, हड़ताल, काम की असंतोष व्यवस्था, जुर्माना, मजदूरी में से कटौतियाँ, बोनस की माँग, छँटनी तथा काम देने से इन्कारी और नौकरी से अलग करना आदि आते हैं।

5.3.2 प्रशासनिक कारण – प्रशासनिक कारणों में भर्ती की दोषपूर्ण प्रणाली, सेवा की शर्तो में परिवर्तन, पदोन्नति के दोषपूर्ण नियम, श्रमिकों के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण, कार्य के घण्टे, कार्य के विभाजन, कार्य की पाली तथा कार्य समूह आदि की असंतोषजनक व्यवस्था आदि आते हैं।

5.3.3 राजनैतिक कारण – श्रमिकों को भड़काना, दलगत राजनीति, श्रम संघों के आपसी विवाद, श्रम संघ की मान्यता सम्बन्धी प्रकरण, अन्य उद्योग के श्रमिकों की सहानुभूति, श्रमिक नेता की मृत्यु, गिरफ़्तारी या दुर्घटना और सरकारी नीति का विरोध करना आदि औद्योगिक विवाद के राजनैतिक कारण है।

5.3.4 अन्य कारण - औद्योगिक विवाद के अन्य कारणों में परस्पर विरोधी मनोवृत्ति, नियोक्ता द्वारा बदले की भावना से कार्य करना, सामाजिक असुरक्षा व श्रमिकों की अशिक्षा आदि है।

5.4 भारत में औद्योगिक विवाद अधिनियम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित कानून का प्रारम्भ भारत में सन् 1860 से होता है, किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के अंत तक इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नही हुए थे। सन् 1859 में यूरोपीय रेलवे के ठेकेदारो और बम्बई प्रेसीडेंसी के कर्मचारियो के मध्य हिंसात्मक झगड़ों के दौरान एक ठेकेदार की मृत्यु हो जाती है। जिस कारण बम्बई सरकार ने केन्द्र सरकार से इस प्रकार के विवादों को रोकने के लिए कानून बनानें का अनुरोध किया। इसके परिणाम स्वरूप नियोक्ता और श्रमजीवी विवाद अधिनियम 1860 पारित हुआ। जिसके अन्तगर्त रेलवे एंव लोक निर्माण कार्यो में काम करने वाले श्रमिको के बीच मजदूरी संबंधी विवादों का प्रवधान है। सन् 1875 में यह अधिनियम अन्य प्रान्तों में लागू किया किया गया, किन्तु सन् 1932 में यह खत्म का दिया गया। युद्धोत्तर– काल में औद्योगिक क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ, जिससे देश में कई प्रकार की समस्या उत्पन्न हुई। नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच अन्तर और मतभेद बड़ते गये और श्रमिकों द्वारा हड़ताल करना आम हो गयी थी। सन् 1921 में बंगाल और बम्बई सरकार ने औद्यागिक अशांति को समझने व उसके अध्ययन के लिए समितियाँ बनायी गयी। बंगाल समिति ने संयुक्त कार्यशला परिषदों के गठन की

सिफारिश की, साथ ही बम्बई समिति ने जाँच समिति व समझौता समिति आदि के गठन की सिफारिश की। सन् 1924 में बम्बई की सूती वस्त्र मिलों की आम हड़ताल ने औद्योगिक विवाद की ओर सबका ध्यान खींचा। प्रान्तीय सरकारो ने बंगाल व बम्बई समितियो की सिफारिश को लागू करने के लिए विधेयक तैयार किया, लेकिन केन्द्र सरकार ने इसे रोक दिया। केन्द्र सरकार ने एक अलग विधेयक तैयार किया जो 'Canadian Industrial Disputes Investigation' और 'British Disputes Act. 1927' को आधार बनाकर तैयार किया गया। जिसमें औद्योगिक संघर्षों की जाँच व निबटारों के लिए एक बोर्ड बनाया गया, लेकिन प्रांतीय सरकारों के असहयोग के कारण यह विधेयक पारित नहीं हुआ। सन् 1928 में अत्यधिक हड़तालों के परिणाम स्वरूप सरकार ने सन् 1929 में भारतीय श्रम विधायक अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत जाँच समिति का काम औद्योगिक संघषों की जाँच करना व समझौता बोर्ड का कार्य शान्ति पूर्ण ढंग से औद्योगिक विवदों को समाप्त करना था। इस अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि लोकोपयोगी सेवाओं में हड़ताल और तालेबन्दी के लिए पन्द्रह दिन पूर्व सूचना देना अनिवार्य था। इस अधिनियम में श्रमिको के हितों की रक्षा के लिए श्रम पदाधिकारियों की नियुक्ति का भी प्रवधान था, किन्तु औद्योगिक विवदों का निबटारे के लिए किसी भी प्रकार के स्थायी तंत्र (Standing Machinery) की व्यवस्था नही थी। अत: सन् 1936 में इस अधिनियम की कमियों को दूर करने के लिए काफी संशोधन किये गये। सन् 1938 में बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम लाया गया। इस अधिनियम में समझौता बोर्ड, श्रम न्यायलय और पंच निर्णय सम्बन्धी न्यायलय की स्थापना आदि के कानून बनाये गये। पहली बार इस अधिनियम में वैधानिक हड़ताल एंव तालेबन्दी को परिभाषित किया गया। यह अधिनियम पूर्व के सभी अधिनियमों की तुलना में एक विशिष्ट महत्व रखता था।

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के कारण देश में भारत रक्षा नियम (Defence of India Rules) लागू किये गये। भारत रक्षा नियम की धारा 81 (अ) में लोकापयोगी सेवा संस्थाओं में हड़ताल व तालेबन्दी पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। अन्य संस्थाओं में हड़ताल व तालेबन्दी से पूर्व अवगत कराना अनिवार्य कर दिया था। सन् 1942 औद्योगिक विवादों के समझौतो या निर्णय की कार्यवहियों के विचाराधीन मामलों में हड़ताल और तालेबन्दी पर रोक लगा दी गयी।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सन् 1945 में भारत रक्षा नियम की धारा 81 (अ), 1 अक्टूबर, 1946 तक लागू रही। 1 अक्टूबर, 1946 को केन्द्रीय विधान मण्डल में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसमें भारत रक्षा नियम की धारा 81 (अ) के महत्वपूर्ण कानूनों का समावेश किया गया। इस विधेयक को नियोक्ता और श्रमिकों दोनों द्वारा स्वीकार किया गया। यह विधेयक मार्च 1947 में पास हो कर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 कहा जाता है।

5.5 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भारतीय श्रम कानून को नियंत्रित करता है इसका संबंध ट्रेड यूनियनों और भारत में किसी भी उद्योग में काम करने वाले व्यक्तिगत कामगारों से है। यह 1947 में स्वतंत्रता से पूर्व बनाया गया अंतिम कानून था। भारत में, मुख्य संवैधानिक अधिनियम जो औद्योगिक विवादों को संबोधित करता है, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 है। मार्च 1947 में पास होने के बाद इसमें कई संशोधन समय–समय पर किये गये। जिनमें सन् 1949, 1950, 1953, 1956, 1964, 1965, 1967, 1970, 1971 और 1976 में हुए संशोधन मुख्य है। पुन: सन् 1982, 1984, 1987, 1989, 1996, 2003 व 2010 में कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। यह अधिनियम स्वयं संविधान का हिस्सा नहीं है, यह भारतीय संविधान द्वारा दी गई शक्तियों से प्राप्त एक महत्वपूर्ण कानून है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए एक ढांचा प्रदान करता है और कुछ प्रतिष्ठानों में रोजगार की शर्तों को नियंत्रित करता है। इसमें औद्योगिक संबंधों के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है, जिसमें नियोक्ताओं और कर्मचारियों के अधिकार और दायित्व, विवादों के निपटारे की प्रक्रिया और औद्योगिक संबंधों के लिए कानूनी ढांचा शामिल हैं। यह अधिनियम 1 अप्रैल 1947 को अस्तित्व में आया था। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 पूरे भारत में लागू होता है। यह अधिनियम निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्र के उद्योगों के लिए है।

बोध प्रश्न 1

I. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए एक ढांचा प्रदान करता है।

क) सत्य **ख) असत्य**

II. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्र के उद्योगों के लिए है।

क) सत्य **ख)** असत्य

5.6 औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के उद्देश्य

वर्तमान में औद्योगिक अशान्ति, किसी भी देश के लिए एक गम्भीर समस्या है। नियोक्ताओं और श्रमिकों में कई बातों को लेकर विवाद रहते हैं। जिस कारण हड़ताल और तालाबंदी इस औद्योगिक युग में गम्भीर रुप धारण कर लेती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, में औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए विभिन्न तन्त्र (machinery) है। अत: प्रस्तुत अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक विवादों का निबटारा करना तथा देश में औद्योगिक शान्ति बनायें रखना है।

अजायब सिंह बनाम सिरहिन्द कोऑपरेटिव एंव प्रोसेसिंग सर्विस सोसाइटी लिमिटेड के मामले में 1999 में दिये गये निणर्य में न्यायालय ने इस बात को रेखंकित किया है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का उद्देश्य नियोक्ताओं और श्रमिकों दोनों को सामाजिक न्याय प्रदान करना दोनों के बीच समधुर सम्बन्ध एंव एकता स्थापित कर औद्योगिक विकास में वृद्धि करना है। यह कानून का वह अंग है जो श्रमिकों की सेवाशर्तो के नियमन तथा उनमें सुधार की व्यवस्था करता है ताकि देश की समृद्धि के साथ–साथ उन्हें भी सामान्य जीवन की आवश्यक सुविधाओं का लाभ प्राप्त हो सके।[1] यदि हड़तालें और तालाबंदी उद्योग कार्य में बाधा उत्पन्न न करे तो उद्यागों की उन्नति सम्भव है। देश में औद्योगिक विवादों के समापन से ही औद्योगिक शान्ति स्थापित हो सकती है।

जितने भी औद्योगिक विवाद होते हैं उनका प्रमुख कारण श्रमिकों की असन्तोषजनक एंव दयनीय आर्थिक स्थिति है। श्रम विवाद का इतिहास श्रमिक द्वारा अपने श्रम के बदले उचित पुरस्कार सम्बन्धी की जाने वाली निरन्तर माँग के अलावा और कुछ नहीं है। यह माँग विभिन्न रूपों में व्यक्त की जाती है जैसे मजदूरी, भत्ते, अनुलाभ एंव अन्य

सुविधाओं में वृद्धि।[2] प्रस्तुत अधिनियम श्रमिकों के प्रति न्याय करने की दिशा में एक प्रयास है। श्रम संघर्ष का प्रभाव केवल उद्योग की दीवारों तक ही सीमित नहीं होता वरन् इसका प्रभाव सारे समाज व देश के लोगों पर भी समान रूप से पड़ता है। जो कि उसके उत्पादन का उपभोग करते हैं।[3]

जी० कलेरिज एण्ड कम्पनी लि० बनाम औद्योगिक ट्रिब्यूनल, बम्बई के मामले में दिये गये निर्णय में प्रस्तुत अधिनियम के उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है: ''इस अधिनियम का उद्देश्य हड़ताल या तालाबन्दी की शक्ति से औद्योगिक विवादों को दबाने के स्थान पर उनका समाधान न्यायोचित तन्त्र (machinery) के अन्तगर्त परस्पर समझौते, पंचनिर्णय, श्रम न्यायालय, ट्रिब्यूनल आदि के द्वारा करना है। औद्योगिक संघर्ष के पक्षकारों को इस अधिनियम द्वारा इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे स्वतन्त्र एंव निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा निर्धारित शर्तो को आधार मानकर विवाद का निपटारा करने में सफल हो सकें।''[4]

दिमाकुची टी एस्टेट बनाम प्रबन्धकों के मामले में अपना निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिनियम के उद्देश्य निम्न प्रकार बताये हैं[5]

1. नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच अच्छे सम्बन्ध तथा बन्धुत्व स्थापित करने तथा बनाये रखने के लिए आवश्यक उपायों को प्रोत्साहन देना।
2. औद्योगिक संघर्षों की जाँच तथा निपटारा करना।
3. गैर–कानूनी हड़ताल तथा तालाबन्दी को रोकना।
4. छँटनी तथा काम देने से इन्कारी की दशा में श्रमिकों को राहत देना।
5. सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन देना।

5.7 औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की विशेषताएँ

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं –

1. इस अधिनियम के अन्तर्गत कार्यशाला समितियों की स्थापना का प्रबन्ध है जिससे नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच संघर्ष उत्पन्न न हो।
2. नियोक्ताओं और श्रमिकों के मध्य मतभेद होने पर सुलह कराने के लिए समझौता अधिकारी, समझौता बोर्ड और जाँच समितियों के गठन का प्रबन्ध है।
3. विवाद होने पर उसके निबटारे व निर्णय के लिए श्रम न्यायलय, औद्योगिक ट्रिब्यूनल, राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल और पंच निर्णय की व्यवस्था है।
4. दस हजार रूपये तक का मासिक वेतन प्राप्त करने वाला व्यक्ति चाहे वह निरीक्षक सम्बन्धी कार्य करता हो वह श्रमिक में शामिल किया जायेगा। (अधिनियम के 2010 के संशोधन के अनुसार)
5. हड़ताल व तालाबन्दी में भाग न लेने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा के प्रबन्ध की व्यवस्था की गयी है।
6. शिकायत निपटान अधिकारी को व्यक्तिगत विवाद को सुलझाने के लिए सन्दर्भित करने का प्रवधान है।
7. अवैध हड़ताल, अवैध तालाबन्दी नियत्रंण का प्रवधान है।

5.8 औद्योगिक विवाद के प्रावधान और प्रमुख अधिनियम

औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित के प्रावधान और प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित हैं।

5.8.1 विवाद निपटान मशीनरी

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत औद्योगिक विवादों को रोकने एंव निबटारे के लिए कुछ प्रावधानों व तन्त्रों की व्यवस्था की गई हैं: -

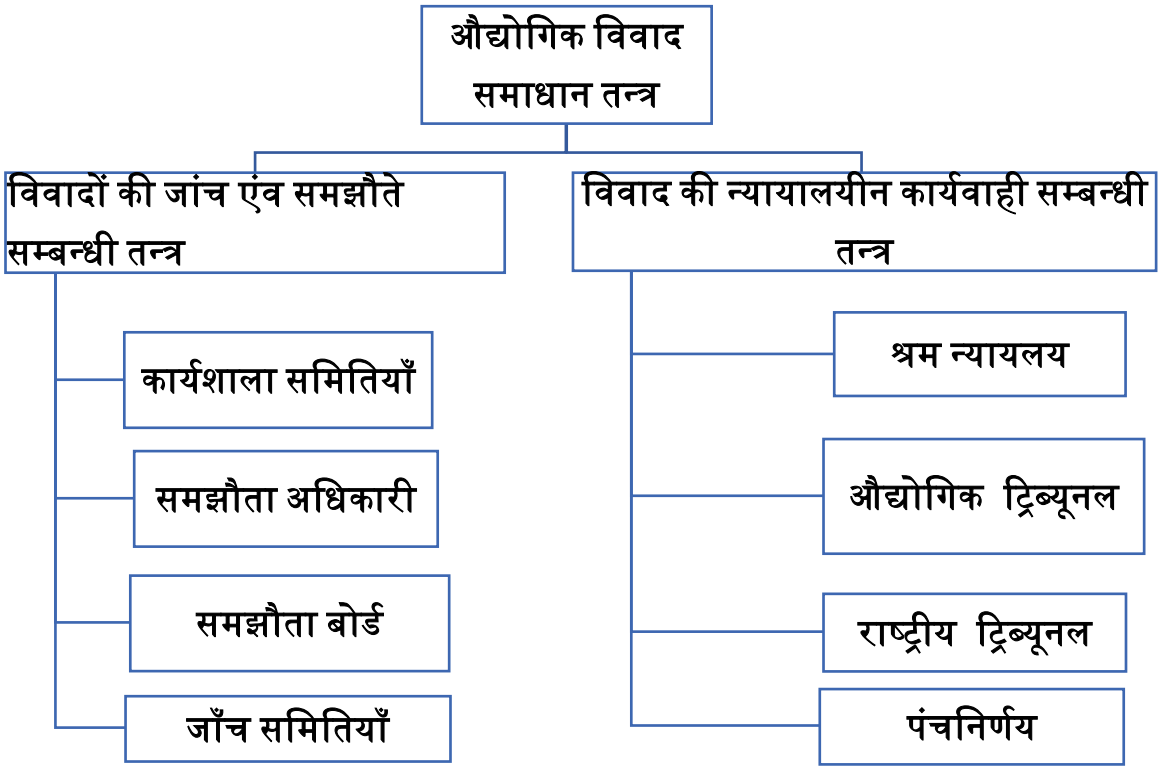

श्रम अदालतों, औद्योगिक न्यायाधिकरणों और राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों को अधिनियम बनाता है, जो औद्योगिक विवादों का निर्णय और निपटान करेंगे। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 एक व्यापक अधिनियम है जिसका उद्देश्य नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच विवादों को हल करना है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत औद्योगिक विवादों को रोकने एंव निबटारे के लिए मुख्य रूप से दो व्यवस्था है। पहली व्यवस्था विवादों की जांच व समझौते के लिए की है। द्वसरी में विवाद की न्यायालयीन कार्यवाही एंव निणर्य हेतु न्यायलय एंव ट्रिब्यूनल व्यवस्था की व्यवस्था है।

इस अधिनियम में विवादों की जांच व समझौते के लिए धारा 3 में कार्यशाला समितियाँ (Works Committee), धारा 4 में समझौता अधिकारी (Conciliation Officer), धारा 5 में समझौता बोर्ड (Conciliation Board) और धारा 6 में जांच समितियाँ (Court of Enquiry) का प्रवधान है। इन चार प्रकार के उपकरणों का उद्देश्य

औद्योगिक विवाद को न होने देना, दोनों पक्षों के बीच अच्छे संबंध बनाना, यदि विवाद हुआ तो उसे दूर करना और विवाद की जाँच करना आदि है। अत: यह अधिनियम औद्योगिक विवादों को बातचीत, सुलह और मध्यस्थता के माध्यम से हल करने के लिए समझौता अधिकारियों, समझौता बोर्डों और मध्यस्थता बोर्डों की नियुक्ति करता है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 7 में श्रम न्यायालय, धारा 7A में औद्योगिक ट्रिब्यूनल, 7B में राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल और धारा 10A में पंचनिर्णय का प्रवधान है। पंचनिर्णय (Arbitration), औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Industrial Tribunal), राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल (National Tribunal) और श्रम न्यायालय (Labour Law), न्यायालयीन कार्यवाही और फैसले करने के लिए बनाए गए हैं। यही कारण है कि जब कोई समझौता नहीं हो सकता, तो विवादों में न्यायालयीन प्रक्रिया लागू होती है। अन्य मुकदमों की तरह विवादों को सुनवाई करने के बाद उन पर फैसला दिया जाता है।

5.8.2 हड़ताल और तालाबंदी

हड़ताल और तालाबंदी के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 नियमों और प्रक्रियाओं को बनाता है। यह अनुचित श्रम प्रथाओं के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है और बताता है कि क्या हड़ताल या तालाबंदी कानूनी या अवैध है।

5.8.3 छंटनी - औद्योगिक विवाद अधिनिय 1947 की धारा 2(oo)

यह एक्ट कुछ इस्टैबलिशमेंट्स में कर्मचारियों की छंटनी (दुर्व्यवहार के अलावा अन्य कारणों से रोजगार की समाप्ति) और छंटनी (काम का अस्थायी निलंबन) को रेगुलेट करता है। यह छंटनी किए गए श्रमिकों को मुआवजे और अन्य लाभों के भुगतान को अनिवार्य करता है। इसमें छंटनी और उद्योग को बंद करने के नियम भी हैं। इस अधिनियम के अनुसार पचास से अधिक लोगों को काम देने वाले उद्योग को बंद करने के लिए 60 दिन का नोटिस देना होगा. इस नोटिस में उद्योग बंद करने के कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए। 1982 में इसे 90 दिन तक बढ़ा दिया गया था।

यदि प्रतिष्ठान में 300 से अधिक कर्मचारी हैं, तो उसे उचित सरकारी अधिकारी से छँटनी, छँटनी और बंद करने की अनुमति लेनी होगी। 1982 के संशोधन ने सीमा को 100 कर्मचारियों में तक कर दिया था। औद्योगिक विवाद अधिनियम यह सुनिश्चित करता है कि कोई नियोक्ता किसी कर्मचारी को अपनी इच्छा से नौकरी पर रख या निकाल नहीं सकता। उन्हें ऐसी कोई भी कार्रवाई करने से पहले श्रम आयुक्त से अनुमति लेनी होगी। यह विषय भी समवर्ती सूची में शामिल है क्योंकि कई राज्यों ने और भी कठोर नियमों और शर्तों को लागू किया है ताकि छंटनी और काम बंद करना और भी कठिन हो।

5.8.4 शिकायत निवारण तंत्र औद्योगिक विवाद 1947

अधिनियम के अध्याय 2 में वर्णित धारा 9C के अन्तगर्त औद्योगिक विवादों निर्णय और निपटान के लिए श्रम अदालतों, औद्योगिक न्यायाधिकरणों और राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों जैसे विभिन्न निकायों और प्राधिकरणों की स्थापना करता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 एक व्यापक कानून है जिसका उद्देश्य सामंजस्यपूर्ण औद्योगिक संबंधों को बढ़ावा देना और नियोक्ताओं और कर्मचारियों के बीच संघर्षों के समाधान के लिए एक तंत्र प्रदान करना है। उभरते श्रम मुद्दों और बदलते औद्योगिक गतिशीलता को संबोधित करने के लिए वर्षों में इसमें कई बार संशोधन किया गया है।

5.8.5 श्रम संबंधित कानून (श्रम कानून)

श्रम संबंधित कानून उद्योग में काम करने वाले लोगों के अधिकारों और प्रावधानों को सुरक्षित रखने के लिए बनाए गए हैं। इसमें काम की शर्तें, वेतन, कार्य समय, छुट्टी, श्रम संगठनों के अधिकार, श्रम सुरक्षा, श्रमिकों की संघर्ष संबंधित मुद्दे शामिल होते हैं। यह कानून उद्योग में न्यायिक अदालतों के सामरिकता में उपयोगी होते हैं।

5.8.6 कारख़ाना कानून

कारख़ाना कानून औद्योगिक संगठन की व्यवस्था और उद्यमियों के अधिकारों को संरक्षित रखने के लिए बनाया गया है। यह कानून उद्योग में काम करने वाले मजदूरों के अधिकारों, कारख़ानों के संगठन और प्रबंधन के नियमों, उद्योग संघों के गठन आदि के मामलों को संगठित करता है।

5.8.7 कार्यालयी संघों का अधिनियम

यह अधिनियम कार्यालयी संघों और उनके कर्मचारियों के अधिकारों और प्रावधानों को संरक्षित करने के लिए बनाया गया है। इसमें कार्यालयी कर्मचारियों के संगठन और उनके कार्यकाल, श्रम संबंधित मामलों, अधिकारों की सुरक्षा, वेतन, छुट्टी, आदि पर ध्यान दिया जाता है।

5.8.8 औद्योगिक संघों का अधिनियम

यह अधिनियम उद्योगिक संघों के गठन, संघर्ष, प्रतिनिधित्व, औद्योगिक समझौतों, औद्योगिक विवादों के समाधान, आदि पर ध्यान देता है। यह संघों को उद्योग में व्यापारिक प्रभाव बनाने और मजदूरों के हित की रक्षा करने की अनुमति देता है।

5.8.9 ट्रेड यूनियनों की मान्यता

औद्योगिक विवाद अधिनियम ट्रेड यूनियनों को मान्यता देता है और उन्हें कुछ अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान करता है। यह ट्रेड यूनियनों के पंजीकरण, मान्यता और अमान्यता के प्रावधान प्रदान करता है।

5.9 औद्योगिक विवादों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान

औद्योगिक विवादों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान भारतीय संविधान से संबंधित हैं जो निम्नलिखित है –

1. **अनुच्छेद 14**[6] विधि के समक्ष समता (equality before law) के अनुसार, राज्य का दायित्व है कि वह कानून के समक्ष किसी भी व्यक्ति की समानता या भारत के क्षेत्र के भीतर कानूनों के समान संरक्षण से इनकार न करें।

2. **अनुच्छेद 15**[7] धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (Prohibition of discrimination on grounds of religion, race, caste, sex, or place of birth) के अनुसार राज्य, किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म–स्थान या इनमें से किसी के अधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

3. **अनुच्छेद 19**[8] वाक्-स्वातत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण (Protection of certain rights regarding freedom of speech) सभी नागरिकों 19(1) (ग) के अनुसार संगम या संघ या सहकारी सोसाइटी बनाने का अधिकार होगा।

4. **अनुच्छेद 21**[9] प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (Protection of life and personal liberty) के अनुसार यह हर व्यक्ति को जीवन के संरक्षण का अधिकार देता है। यह उद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों को उनकी सुरक्षा और अवसरों के लिए संरक्षण प्रदान करता है।

5. **अनुच्छेद 23**[10] मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध (Prohibition of traffic in human beings and forced labour) के अनुसार नागरिकों को औद्योगिक क्षेत्र में गुलामी और अवैध काम के लिए निषिद्धता से बचाने का प्रावधान करता है।

6. **अनुच्छेद 24**[11] कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिरोध (Prohibition of employment of children in factories) यह बालश्रम के प्रतिबंध का प्रावधान करता है और व्यापारिक काम में बालश्रम को रोकने के लिए संरक्षण प्रदान करता है।

भारतीय संविधान के भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य नीति निर्देशक तत्वों का वर्णन है। जिसमें उद्योग और श्रम से संबधित प्रमुख अनुच्छेद निम्नलिखित है।

7. **अनुच्छेद 38**[12] राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा (The state shall make a social order for the promotion of public welfare) के **अनुच्छेद के उपखंड [(1)]** के अन्तगर्त राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।

तथा **उपखंड (2)** राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

8. **अनुच्छेद- 43**[13] श्रमिकों के लिए निर्वाह मजदूरी, आदि (Living wage, etc, for workers) इसके अनुसार राज्य, विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 43 (क)[14] उद्योगों के प्रबंध में कर्मगारों का भाग लेना (Participation of workers in management of industries) के अनुसार राज्य सभी कामगारों के लिये निर्वाह योग्य मजदूरी और एक उचित जीवन स्तर सुनिश्चित करने कर प्रयास करेगा।

9. अनुच्छेद 47[15] पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और स्वास्नय के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों (Duty of the state to raise the level of nutrition and the standard of living and to improve public health) राज्य, अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और स्वास्नय के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और लोक स्वास्नय के लिए हानिकर ओषधियों के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

भारतीय सविधान की सातवीं अनुसूची

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची (Seventh Schedule of Indian Constitution) में संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची को सम्मलित किया गया है। श्रम संबंधी अधिकांश विषय संविधान की समवर्ती सूची में हैं।

संघ सूची[16] **(Union list) श्रम संबंधी प्रविष्टि**

प्रविष्टि संख्या 55. खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन।

प्रविष्टि संख्या 61. संघ के कर्मचारियों से संबंधित औद्योगिक विवाद।

राज्य सूची[17] **(State list) श्रम संबंधी प्रविष्टि**

प्रविष्टि संख्या 9. विकलांगों और बेरोजगारों को राहत।

समवर्ती सूची[18] **(Concurrent list) श्रम संबंधी प्रविष्टि**

प्रविष्टि संख्या 22. व्यापार संघ, औद्योगिक और श्रम विवाद।

प्रविष्टि संख्या 23. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, नियोजन और बेकारी।

प्रविष्टि संख्या 24. श्रमिकों का कल्याण जिसके अंतर्गत कार्य की दशायें, भविष्य निधि, नियोजक का दायित्व, कर्मकार प्रतिकर, अशक्तता और वार्धक्य पेंशन तथा प्रसूति सुविधाएं हैं।

बोध प्रश्न 2

1. भारतीय सविधान की सातवीं अनुसूची में सम्मलित है –

   क) संघ सूची। ख) राज्य सूची।

   ग) समवर्ती सूची। घ) सभी।

2. नागरिकों को औद्योगिक क्षेत्र में गुलामी से बचाने के लिए अनुच्छेद है।

   क) अनुच्छेद 23 ख) अनुच्छेद 21

   ग) अनुच्छेद 19 घ) अनुच्छेद 43

3. बालश्रम के प्रतिबंध का प्रावधान करता है।

   क) अनुच्छेद 21 ख) अनुच्छेद 43

   ग) अनुच्छेद 24 घ) अनुच्छेद 17

5.10 सारांश

1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम के निमार्ण औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान को प्रोत्साहित करना था और सुलह, मध्यस्थता और न्यायनिर्णय द्वारा औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान के लिए तंत्र और प्रक्रिया प्रदान करना था, जो कानून के तहत प्रदान किया गया है। यह अधिनियम पारित करने का मुख्य उद्देश्य था "भारत में उद्योग में शांतिपूर्ण कार्य संस्कृति को बनाए रखना", जिसका विवरण अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों में दिया गया है। अधिनियम यह भी कहता है, कि काम बंद करने या छंटनी के कारण कर्मचारी को मुआवजे का भुगतान दिया जायेगा। किसी नियोक्ता, ट्रेड यूनियन या श्रमिकों की ओर से अनुचित श्रम प्रथाओं के खिलाफ की जाने वाली कार्रवाई, जैसे छँटनी या औद्योगिक प्रतिष्ठानों को बंद करने के लिए सरकार की पूर्व अनुमति की प्रक्रिया है। भारतीय

संविधान में भी औद्योगिक शांति बनायें रखने के लिए कई नियम और प्रवधान है। भारतीय संविधान श्रमिकों को सामाजिक कल्याण और आर्थिक सुरक्षा का संरक्षण करता है। समवर्ती सूची पर कानून बनाने का संसद और राज्य के विधान-मण्डल दोनों को अधिकार हैं।

5.11 शब्दावली

औद्योगिक विवाद- औद्योगिक विवाद, उद्योग संबंधित मुद्दों पर होने वाले मतभेद की ओर संकेत करते हैं।

अधिनियम- संसद या राज्य विधानसभाओं द्वारा अधिनियमित कानून को "अधिनियम" कहते है। इन अधिनियमों का निर्माण संसद या राज्य विधानसभाओं द्वारा किया जाता है।

छॅटनी (Retrenchment)– छॅटनी से अभिप्राय अनुशासन सम्बन्धी दण्ड के अतिरिक्त किसी भी कारण से नियोजक द्वारा कर्मचारी को सेवा से निकालना है।

5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

I. क) सत्य II. क) सत्य

बोध प्रश्न 2.

I. घ) सभी, II.क) अनुच्छेद 23, III.ग) अनुच्छेद 24

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.औद्योगिक विवाद से आप क्या समझते हैं।

2.औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. (1999) 6 SSC 82, 1999 SCC (L&S) 1054
2. Hariprasad vs. A. K. Divekar, A.I.R. 1957, S.C. 121.

3. U. S. Senate Committtee Report, No. 570.

4. A.I.R. 1951 Bombay, 400 and 3 F.J.R., 153.

5. Workmen of Dimakuchi Tea Estate vs Management, S.C.

6. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 5.

7. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), पृष्ठ संख्या 6.

8. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 9.

9. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 11.

10. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 13.

11. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 14.

12. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 21.

13. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 22.

14. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 23 .

15. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 23.

16. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 317.

17. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 324.

18. उपाध्याय, जय जय राम, ''भारत का संविधान'', सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी : प्रयागराज (इलाहाबाद), 2022, पृष्ठ संख्या 328.

इकाई- 6 श्रमिक संघवाद: अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य एवं प्रकार

(Trade Unionism: Meaning, Definition, Objective and Type)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 श्रमिक संघ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

6.3 श्रमिक संघ का अर्थ एवं परिभाषा

6.4 श्रमिक संघ की विशेषताएं

6.5 श्रमिक संघ के उद्देश्य

6.5.1 उद्योगों के साथ समन्वय स्थापित करना

6.5.2 उद्योगों के नियोक्ता और श्रमिकों में सौहार्दपूर्ण संबंधों को विकसित करना

6.5.3 श्रमिकों को आधाभूत सुविधाएं प्रदान करवाना

6.5.4 श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए कार्य कराना

6.5.5 श्रमिक कल्याण की व्यवस्था कराना

6.5.6 सामाजिक सुरक्षा से संबंधित सुविधाएं उपलब्ध कराना

6.5.7 औद्योगिक विवादों को सुलझाना

6.5.8 श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कार्य करना

6.5.9 श्रमिकों में अनुशासन की भावना का विकास करना

6.5.10 श्रमिकों में राजनैतिक चेतना का विकास करना

6.6 श्रमिक संघ के प्रकार

6.6.1 सदस्यता के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

6.6.2 उद्देश्यों के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

6.6.3 सदस्यता के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

6.6.4 भौगोलिक सीमा के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

6.6.5 आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गठित श्रमिक संघ

6.7 श्रमिक संघों के कार्य

6.8 श्रमिक संघों के महत्व

6.9 श्रमिक संघों के दोष

6.10 सारांश

6.11 शब्दावली

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.15 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे कि-

- श्रमिक संघ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में समझ सकें,
- श्रमिक संघ का अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकें,
- श्रमिक संघ की विशेषताओं को गहनता से जानें,
- श्रमिक संघ के उद्देश्यों को समझ सकें,
- श्रमिक संघ के प्रकारों को समझ सकें,
- श्रमिक संघों के कार्यों के विषय में समझ सकेंगें,
- श्रमिक संघों के महत्व को समझें और स्पष्ट कर सकें,
- श्रमिक संघों के दोषों को समझ सकें,

6.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के आर्थिक विकास में वहां के नागरिकों के परिश्रम का योगदान प्रमुख रहता है। कुशल परिश्रम के बिना देश की आर्थिक स्थिति की मजबूती की कल्पना शायद ही की जा सकती हो। देश की अर्थव्यवस्था में श्रमशक्ति महत्वपूर्ण साधन बन जाती है। किसी भी देश को देखा जाये, चाहे वह देश कृषि प्रधान हो या उद्योग प्रधान, उस देश का सामाजिक-आर्थिक विकास श्रमशक्ति पर ही निर्भर रहता है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि जिस देश की श्रमशक्ति जितनी ज्यादा खुशहाल एवं अपने काम से संतुष्ट होगी, उस देश की अर्थव्यवस्था भी तीव्र गति से विकास करेगी। वह देश समृद्धशाली होने का गौरव प्राप्त करेगा। भारत एक कृषि प्रधान देश है। जब देश विकास की दृष्टि से कृषि पर निर्भर था, तब व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर कृषि कार्यों पर ही निर्भर होते थे। तब व्यवसाय भी बहुत कम होते थे। गांवों में लोगों के बीच प्रकार्यात्मक संबंधों की प्रधानता होती थी। जजमानी प्रथा की मौजूदगी के कारण लोग

एक–दूसरे को अपनी सेवाओं के एवज में वस्तुऐं, अनाज आदि देते और प्राप्त करते थे। भारत में औपनिवेशिक शासन के आगमन के पश्चात् उद्योग-धंधे विकसित होने लगे। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप भारत में नये-नये कारखाने स्थापित होने लगे।

औद्योगिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा है। उद्योगों, कारखानों, लघु उद्योगों एवं कुटीर उद्योगों का संचालन श्रमशक्ति से ही संभव है। इसलिए औद्योगिक समाजशास्त्र श्रमशक्ति से संबन्धित मुद्दों और पहलुओं का अध्ययन करने का आवश्यक माध्यम है। औद्योगिक समाजशास्त्र औद्योगीकरण, उद्योगों का समाज पर प्रभाव, व्यवसायों का विविधीकरण, मजदूर संघ, श्रमिक संघवाद, औद्योगिक संबंध, श्रम कल्याण आदि से संबंधित पहलुओं का अध्ययन करता है।

भारत में अंग्रेजों के आने के पश्चात् अनेक उद्योग धंधे विकसित हुए। वस्तुओं का निर्माण, मनुष्यों के बजाय मशीनों से किया जाने लगा। अलग-अलग उद्योगों की स्थापना होने लगी थी। मशीनों से वस्तुओं का निर्माण एवं उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा। अलग-अलग उद्योगों में अलग-अलग कार्यों के निष्पादनों के लिए उन कार्यों में निपुण श्रम शक्ति की आवश्यकता पड़ने लगी, क्योंकि कुशल व्यक्ति ही मशीनों को संचालित कर सकता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उद्योगों की स्थापना में तेजी आने से श्रमशक्ति की जरूरत बढ़ने लगी। बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण बड़े-बड़े शहर आर्थिक क्रियाओं के केन्द्र बनकर उभरने लगे। श्रमिकों की संख्या में भी बढ़ोतरी होने लगी। परिणामस्वरूप श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में गिरावट को रोकने के लिए श्रम कानूनों का पालन करना और इन्हें लागू करना आवश्यक हो गया। श्रमिकों के अच्छे स्वास्थ्य, काम करने के वातावरण, निर्धारित काम के घंटे से संबंधित प्रावधानों का कडाई से पालन किया जाने लगा।

आधुनिकता के इस दौर में विकसित प्रौद्योगिकी ने नये उद्योगवाद को जन्म दिया है। आज श्रम सिर्फ शारारिक श्रम तक ही सीमित नहीं है अब तकनीकि श्रम एवं मानसिक श्रम भी अब महत्वपूर्ण हो गये हैं। वास्तव में देखा जाये,

तो आधुनिक समाज में बढ़ती व्यावसायिक भिन्नता ने श्रम के स्वरूपों को भी परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक उद्योगवाद में श्रम विभाजन भी बढ़ गया है। आज उद्योगों में मशीनों को संचालित करने समेत विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। आधुनिक उद्योगवाद विशेषज्ञों पर आधारित व्यवस्था है।

6.2 श्रमिक संघवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

18वीं शताब्दीं में सर्वप्रथम ब्रिटेन में श्रमिकों के छोटे-छोटे संगठन उभरकर आये, लेकिन एक संगठित एवं व्यवस्थित रूप से श्रमिकों का संगठन ग्रेट ब्रिटेन में 19वीं शताब्दी में सर्वप्रथम बना। श्रमिक संघवाद सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा श्रमिकों के लिए निर्धारित काम के घंटे, वेतन, कार्य स्थल का अच्छा वातावरण, श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सामूहिक रूप से श्रमिकों द्वारा बनाया एवं स्वैच्छिक संगठन है।

भारत में श्रमिक संघ की शुरूआत 1851 से हुई। श्रमिक संघ अपने हितों की रक्षा तथा नियोक्ता के शोषण से श्रमिकों को बचाने के लिए औद्योगिक प्रजातंत्र की विचारधारा पर कार्य करते हैं, जिससे प्रत्येक श्रमिक का कल्याण हो सके।

श्रमिक संघ का गठन औद्योगिक परिस्थितियों का परिणाम है। श्रमिक उद्योगों, कारखानों, कर्मचारी संगठनों आदि के सदस्य होते हैं। लेकिन ये मुख्यत: श्रमिक संघ पर ही केन्द्रित होते हैं। सामान्य रूप से श्रमिक संघ के सामाजिक एवं राजनैतिक उद्देश्य होते हैं। इसमें कोई दो मत नहीं है कि वर्तमान समय में औद्योगिक युग में श्रमिक संघ राजनैतिक शक्ति के स्त्रोत बन रहे हैं। श्रमिक संघ उद्योगों, कारखानों में शक्ति संतुलन स्थापित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न

प्रश्न.1 सर्वप्रथम छोटे-छोटे श्रमिक संगठन कौन सी शताब्दी में उभरकर सामने आये?

.....

प्रश्न.2 श्रमिकों का संगठन संगठित एवं व्यवस्थित रूप से सर्वप्रथम कहां बना?

.....

प्रश्न.3 भारत में श्रमिक संघ की शुरूआत कब हुई?

.....

6.3 श्रमिक संघवाद का अर्थ एवं परिभाषा

औद्योगिक विकास के साथ नये-नये उद्योगों की स्थापना ने श्रमिकों के लिए उद्योगों में कार्य करने के अवसरों को बढ़ाया। हजारों की संख्या में श्रमिक उद्योगों में कार्य करने लगे। श्रमिकों की संख्या बढ़ने से उद्योगपतियों के लिये यह संभव नहीं हो पाया कि वे प्रत्येक श्रमिक का ध्यान रख सकें। परिणाम यह हुआ कि उद्योगपतियों द्वारा श्रमिकों के हितों की उपेक्षा होने लगी। इससे श्रमिकों में अपने नियोक्ताओं के प्रति असंतोष पैदा होने लगा। श्रमिकों ने इस असंतोष से मुक्ति के लिए संघ बनाकर उद्योगपतियों के अन्याय और शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाया। सामाजिक संघवाद के बीज जिस तरह सामाजिक-विकास में व्याप्त हैं, उसी तरह सामाजिक श्रमिक संघवाद के बीज औद्योगिक विकास में व्याप्त हैं। उद्योग-धंधों में बढ़ते मशीनीकरण के कारण मशीनों को चलाने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता भी बढ़ने लगी। उद्योगों में श्रमिकों की अधिकता होने से अधिक उत्पाद पर भी जोर दिया जाने लगा। अधिक उत्पादन के लिए श्रमिकों को भी अधिक काम करना पड़ता था। श्रम के इस अमानवीय वितरण के कारण श्रमिकों का शोषण होने लगा। श्रमिकों का उद्योगपतियों द्वारा शोषण होने कारण ही श्रमिक संघवाद का अभ्युदय हुआ। श्रमिकों ने अपने हितों की रक्षा तथा नियोक्ता द्वारा किये जा रहे शोषण के विरूद्ध संघ बनाकर श्रमिकों के हितों की आवाज उठानी शुरू की। पहले स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे संघ बने। बाद में श्रमिकों का समर्थन इन संगठनों को मिलने लगा। आज श्रमिक संघवाद पूरे विश्व स्तर पर एक श्रमशक्ति के संगठन के रूप में पहचाना जाता है।

सामान्य अर्थों में श्रमिक संघवाद से आशय श्रमिकों के एक ऐसे संगठन से है, जो श्रमिकों को उद्योगपतियों के शोषण और दमन से रोकने के लिए गठित किया गया है। श्रमिक संघवाद का गठन लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित होता है। यह संगठन एक ऐच्छिक संगठन होता है, जिसकी सदस्यता ग्रहण करनी है या नहीं, यह श्रमिक निर्धारित करते

हैं। श्रमिक संघवाद श्रमिकों के अधिकारों, उनके कार्यस्थल की दशाओं में सुधार, उनके वेतन, भत्ते, अतिरिक्त कार्य के एवज में भुगतान, वेतन वृद्धि तथा श्रमिक कल्याण से संबंधित विषयों पर प्रतिबद्ध रहता है। श्रमिक संघवाद श्रमिकों को उद्योगपतियों के दमन से मुक्ति दिलाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रमिक संघवाद औद्योगिक समाज में नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच संतुलन स्थापित करने का एक साधन है। श्रमिक संघवाद ने निर्धन, शोषित और सामान्य श्रमिकों को समाज में नई दिशा प्रदान की है। श्रमिक संघवाद औद्योगिक समाज में एक नवीन शक्ति के रूप में उभर रहा है। श्रमिक संघवाद मुख्य रूप से श्रमिकों की आर्थिक, सामाजिक समानता को मजबूती देने के लिए सम्बल का काम कर रहा है।

वी. वी. गिरी के अनुसार, ''श्रमिक संघ एक ऐच्छिक संगठन है। इसमें सामूहिक रूप से श्रमिकों के सामूहिक हितों की रक्षा की जाती है। श्रमिकों के हितों को ध्यान में रखते हुए उनके अधिकारों, सुविधाओं तथा कल्याण से संबंधित उपागमों के लिए कार्य जाता है।''[1]

एन. बरोन के अनुसार,"श्रमिक संघ में निरन्तरता होती है। यह एक ऐच्छिक संघ है। इसके अन्तर्गत वेतन, मजदूरी तथा आर्थिक अर्जन से जुड़े लोगों को सम्मिलित किया जाता है। मूलत: यह कामगारों का संगठन है। कामगार मजदूरी पर अपना श्रम बेचते हैं। श्रम के बदले कामगारों को वेतन भी प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रम, स्वेद और रक्त बेचने वाले श्रमिकों का संगठन श्रमिक संघ के नाम से जाना जाता है।"[2]

जी.डी.एच. कोल ने अपनी पुस्तक **ऐन इन्ट्रोडक्शन टू ट्रेड यूनियनिज्म** में बताया है कि ''सामान्यतः श्रमिक संघ का अर्थ एक या अधिक व्यवसायों में श्रमिकों के ऐसे संघ से लगाया जाता है, जो अपने सदस्यों के दैनिक कार्यों से संबंधित आर्थिक हितों की रक्षा एवं वृद्धि करने के उद्देश्य से संचालित किया जाता है।''[3]

आर.ए. लेस्टर के अनुसार ''श्रमिक संघ वे संगठन हैं, जो मालिकों द्वारा होने वाले शोषण से बचने के लिए और अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए बनाये जाते हैं।''[4]

प्रो. कोल के अनुसार ''श्रमिक संघों का अंतिम उद्देश्य उद्योगों पर श्रमिकों का नियंत्रण स्थापित करना है।''

प्रो. सेलिंग पर्लमैन के अनुसार ''श्रमिक संघों का ध्येय सेवायोजकों को दबाना नहीं होता, अपितु उनकी प्रतिस्पर्धा के भय को दबाना होता है।''[5]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि-

- श्रमिक संघ औद्योगिक श्रमिकों का एक संगठित समूह है।
- श्रमिक संघ का उद्देश्य श्रमिकों के हितों की सुरक्षा करना है।
- श्रमिक संघ उद्योगपतियों, नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों से होने वाले शोषण, छंटनी, अत्याचार से बचने के लिए बनाया गया संगठन है।
- श्रमिक संघ सामूहिक सौदेबाजी का एक वैध साधन है।
- प्रत्येक श्रमिक संगठन एक ऐच्छिक संगठन है।

6.4 श्रमिक संघवाद की विशेषताएं

औद्योगिक समाज के साथ-साथ श्रमिक संघवाद का उदय हुआ। आज श्रमिक संघवाद औद्योगिक समाज के प्रमुख शक्तिशाली समूह बन गये हैं। श्रमिक संघवाद इस मान्यता में विश्वास करते हैं कि श्रमिकों को अपना भाग्य बदलने के लिए सामूहिक रूप से संगठित होना आवश्यक है। श्रमिक संघवाद की विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

- श्रमिक संघ अपने सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों एवं नियोक्ताओं के मध्य हुए विवादों को सुलझाने का कार्य करता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों में वर्गचेतना उत्पन्न करने तथा उनके हितों की रक्षा का काम करता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों की सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता में वृद्धि करता है।

- श्रमिक संघ श्रमिकों के कार्य की दशाओं में सुधार करता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों को उद्योगपतियों के भय से मुक्त करता है।
- श्रमिक संघ आवश्यकता पड़ने पर श्रमिकों को कानूनी परामर्श व सहायता प्रदान करता है।
- श्रमिक संघ कार्य के दौरान श्रमिकों के साथ घटित दुर्घटनाओं में घायल श्रमिकों का इलाज करवाने में मदद करता है।
- श्रमिक, सरकार तथा नियोक्ताओं के मध्य समन्वय स्थापित करने का काम करता है।
- श्रमिक संघ स्कूल, वाचनालय, ऋण समिति आदि को खोलकर श्रमिकों को सुविधाऐं प्रदान करते हैं।

इस प्रकार श्रमिक संघ अपने लिखित कानूनों, नियमों तथा संहिताओं द्वारा श्रमिकों से संबंधित गतिविधियों तथा जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं। श्रमिक संघवाद अपने उन सदस्यों के विरूद्ध कार्यवाही भी करते हैं, जो श्रमिक संघ के नियमों का उल्लंघन करते हैं।

6.5 श्रमिक संघवाद के उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों हमने अब तक इस इकाई में श्रमिक संघवाद क्या है? इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के साथ-साथ श्रमिक संघवाद की विशेषताओं को समझा है। जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक संगठन किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गठित किया जाता है। संगठन के सभी सदस्यों की विचारधारा, उद्देश्य एवं लक्ष्य समान होते हैं, तभी संगठन के उद्देश्यों को हासिल करने में आसानी होती है। अब हम श्रमिक संघ के उद्देश्यों को समझने का प्रयास करते हैं। सामान्यतः श्रमिक संघ एक या अधिक व्यवसायों में लगे श्रमिकों का एक ऐसा संघ है, जो अपने सदस्यों के दैनिक कार्यों से संबंधित आर्थिक एवं सामाजिक हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से संचालित किया जाता है। चूंकि श्रमसंघ एक ऐच्छिक संगठन होने के कारण श्रमिकों के पास स्वतंत्रता होती है कि वे इसके सदस्य बनें या नहीं, प्राय: देखा गया है कि उद्योगों में कार्यरत श्रमिक किसी न किसी श्रमिक संघ के सदस्य होते हैं। यह बात भी जानने योग्य हैं कि एक ही

उद्योग या कारखाने में एक या एक से अधिक श्रमिक संघ हो सकते हैं। किस श्रमिक संघ की सदस्यता श्रमिक को लेनी है, यह श्रमिकों के विवेक पर निर्भर होता है। आइये श्रमिक संघ के प्रमुख उद्देश्यों को समझने की कोशिश करते हैं।

6.5.1 उद्योगों के साथ समन्वय स्थापित करना

श्रमिक संघों के गठन से श्रमिक आपस में संगठित हो जाते हैं। किसी भी औद्योगिक इकाई या कारखाने में श्रमिक संघ का पहला उद्देश्य औद्योगिक इकाई के साथ सहयोग करना होना चाहिए। जापान जैसे देश में वहां के श्रमिक अपनी पहचान अपने उद्योग एवं कारखाने से करते हैं।

6.5.2 उद्योगों के नियोक्ता और श्रमिकों में सौहार्दपूर्ण संबंधों को विकसित करना

अक्सर श्रमिक संघ का कयास उद्योगों के विरोधी होने से लगाया जाता है। यह भी देखा गया है कि बहुत से श्रमिक संघों ने इस तरह के ही रूख को अपनाये भी रखा। नियोक्ता और श्रमिकों के आपसी टकराव से दोनों पक्षों का नुकसान होता है, जिसका परिणाम गरीब श्रमिकों पर पड़ता है। वर्तमान औद्योगिक समय में श्रमिक संघों की ओर से अपनी बात को एवं अपनी मांगों को लोकतांत्रिक तरीके से रखने के कारण उद्योगों एवं श्रमिक संघों के बीच आपसी सौहार्दपूर्ण संबंध मजबूत होते दिखाई देते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रमिक संघों का उद्देश्य औद्योगिक प्रबंधन के साथ सौहार्दपूर्ण संबंधों को विकसित करना होता है।

6.5.3 श्रमिकों को आधाभूत सुविधाएं प्रदान करवाना

श्रमिक संघ अपने सदस्यों को औद्योगिक प्रबंधन से उन आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध करवाने के लिए प्रयासरत रहते हैं, जिनकी श्रमिकों को नितांत आवश्यकता होती है।

6.5.4 श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए कार्य कराना

श्रमिक संघ अपने सदस्यों के हितों को ध्यान में रखते हुए श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए औद्योगिक प्रबंधन को अवगत कराते हैं।

6.5.5 श्रमिक कल्याण की व्यवस्था कराना

श्रमिक संघ श्रमिकों के कल्याण के लिए आधारभूत आवश्यकताओं जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, खेलकूद तथा मनोरंजन की सुविधाएं उपलब्ध करवाते हैं, जिससे श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठता हो।

6.5.6 सामाजिक सुरक्षा से संबंधित सुविधाएं उपलब्ध कराना

श्रमिक संघ औद्योगिक प्रबंधन से श्रमिकों से संबंधित योजनाओं की सुविधाएं जैसे-कर्मचारी भविष्य निधि, राज्य बीमा, बोनस, ग्रेच्यूटी, पेंशन तथा क्षतिपूर्ति आदि श्रमिकों को उपलब्ध कराने के लिए कार्य करते हैं।

6.5.7 औद्योगिक विवादों को सुलझाना

जब श्रमिक संघ और औद्योगिक प्रबंधन के बीच विवाद पैदा होता है, तो उस स्थिति में श्रमिक संघ के पदाधिकारी और औद्योगिक प्रबन्धन आपस में विचार विमर्श कर औद्योगिक विवादों को सुलझाने का काम करते हैं।

6.5.8 श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कार्य करना

यदि औद्योगिक प्रबंधन अपने श्रमिकों को न्यूनतम वेतन से कम वेतन देते हैं, तब श्रमिक संघ औद्योगिक प्रबंधन से बात कर श्रमिकों को इतना वेतन देने के लिए दबाव बनाते हैं, जिससे श्रमिकों तथा उनके परिवारों का भरण-पोषण आसानी से हो जाये।

6.5.9 श्रमिकों में अनुशासन की भावना का विकास करना

श्रमिक संघ अपने सदस्यों को अनुशासन में रहकर कार्य करने को कहते हैं। इनका मानना है कि यदि श्रमिक अनुशासित तरीके से अपने कार्यों को करेंगे, तो औद्योगिक प्रबंधन भी अपने कर्मचारियों का ख्याल रखेंगे।

6.5.10 श्रमिकों में राजनैतिक चेतना का विकास करना

श्रमिक संघों के विकसित होने से श्रमिकों में श्रमिक संगठनों के प्रति आस्था सुदृढ़ होती है। इसके साथ ही प्रजातांत्रिक व्यवस्था में श्रमिकों की राजनैतिक स्थिति भी सुदृढ़ होती है। श्रमिक राजनैतिक व्यवस्था में अपनी शक्ति की अहमियत को समझते हैं। श्रमिक राजनैतिक दृष्टि से जागरूक हो जाते हैं।

6.6 श्रमिक संघवाद के प्रकार

विद्यार्थियों श्रमिक संघों को उनके उद्देश्यों, स्तरों, प्रकृति एवं प्रकार्यों के आधार के साथ-साथ सदस्यता के आधार एवं आर्थिक उद्देश्यों के आधार पर समझाने के कोशिश की जा रही है। इसे हम निम्नवत स्पष्ट कर सकते हैं:

6.6.1 सदस्यता के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

सदस्यता के आधार पर गठित श्रमिक संघों में से तीन प्रमुख श्रमिक संघों का उल्लेख किया जा रहा है।

कामगार अथवा शिल्प संघ- कामगार अथवा शिल्प संघ के सदस्य तकनीकि ज्ञान से जुड़े श्रमिकों का संगठन है। ट्रक चालक, बस चालक, रेलवे इंजन चालक को शिल्प संघ के रूप में समझ सकते हैं। कामगार अथवा शिल्प संघ का गठन स्थानीयएं क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर किया जा सकता है।

सामान्य श्रम संघ- ये श्रमिक संघ विभिन्न व्यवसायों/उद्योगों से जुड़े होते हैं। सामान्यतः ये संघ कुशल और अकुशल व्यवसायों में भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में कार्य करने वाले कामगार अपने अधिकारों एवं हितों की रक्षा के लिए सामान्य श्रमिक संघ के माध्यम से आंदोलन करते हैं। प्रारम्भ में सामान्य श्रमिक संघ का स्वरूप मजबूत था। श्रम विभाजन तथा व्यवसायों में विभिन्नता, विशेषीकरण एवं आधुनिक मशीनीकरण के इस दौर में सामान्य श्रमिक संघ का महत्व अब धीरे-धीरे कमजोर पड़ता जा रहा है।

औद्योगिक श्रम संघ- ये संघ एक ही उद्योग के विभिन्न श्रमिकों द्वारा गठित संगठन हैं। उदाहरण के लिये- नेशनल यूनियन ऑफ माइंस **(NUM)]** टाटा वर्कर्स यूनियन, इंडियन नेशनल टेक्सटाइल वर्कर्स आदि इसके उदाहरण हैं। ये श्रमिक संघ पदानुक्रम में सभी स्तरों पर श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हैं।

6.6.2 उद्देश्यों के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर श्रमिक संघों को निम्नांकित प्रकारों में समझाया जा सकता है-

क्रांतिकारी श्रम संघः ये श्रमिक संगठन औद्योगिक व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते हैं, लेकिन कई बार ये संगठन औद्योगिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए हिंसा, अराजकता एवं विध्वंस का सहारा भी लेते हैं। श्रमिकों के साथ अन्याय, शोषण, उत्पीड़न होने की स्थिति में इन संघों की गतिविधियां बढ़ जाती हैं।

सुधारवादी श्रमिक संघः सुधारवादी श्रमिक संघ औद्योगिक व्यवस्था में वैधानिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों एवं कानूनों के द्वारा सुधार लाना चाहते हैं। इस प्रकार के श्रमिक संघ श्रमिकों के स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन एवं सुरक्षा से संबंधित मुद्दों पर सकारात्मक समाधान के लिये औद्योगिक प्रबंधन से वार्ता करते हैं।

सामूहिकता के आधार पर निर्मित श्रमिक संघः इस प्रकार के श्रमिक संघ श्रमिकों एवं कामगारों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा के लिए सजग रहते हैं। ये श्रमिक संघ श्रमिकों के जीवनस्तर में सुधार लाने के लिए एक होकर सामूहिक रूप से औद्योगिक प्रबंधन पर दबाव बनाते हैं।

कम्पनी श्रमिक संघः ये श्रमिक संघ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उद्योगपतियों के द्वारा संचालित होते हैं। इन श्रमिक संघों के नेता औद्योगिक प्रबंधन द्वारा समर्थित और घोषित होते हैं।

व्यापार श्रमिक संघः ये श्रमिक संघ श्रमिकों में स्वयं अपना उत्थान करने की भावना को जागृत करने के लिए गठित किये जाते हैं। इनकी मुख्य गतिविधियां परोपकार, आत्म उन्नति तथा विभिन्न संस्कारों को पूर्ण करने से संबंधित होती है।

6.6.3 सदस्यता के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

भौगोलिक सीमा के आधार पर निर्मित श्रमिक संघों के निम्नलिखित प्रकार हैं:

स्थानीय स्तर के श्रम संघः इन श्रमिक संघों का आकार सीमित होता है। ये श्रमिक संघ स्थानीय स्तर पर गठित होते हैं। किसी स्थानीय नगर पालिका, स्थानीय नगर निगम के पर्यावरण मित्रों का गठित समूह स्थानीय स्तर के श्रमसंघ के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

क्षेत्रीय स्तर पर निर्मित श्रम संघः किसी क्षेत्र विशेष में कार्यरत ऐसे श्रमिकों का संगठन, जो उस क्षेत्र विशेष में ही कार्य करते हैं, क्षेत्रीय श्रम संघ के नाम से जाना जाता है। किसी क्षेत्र विशेष में स्थित चाय बागानों के श्रमिक, किसी क्षेत्र विशेष में स्थित गन्ना मिल में कार्यरत श्रमिकों के संगठन को क्षेत्रीय श्रम संघ के उदाहरण के रूप में समझ सकते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर गठित श्रमिक संघः ये श्रमिक संगठन राष्ट्रीय स्तर पर गठित होते हैं। इसके सदस्यों की संख्या अधिक होती है। राष्ट्रीय स्तर पर गठित श्रमिक संघ अपने श्रमिकों के अधिकारों तथा हितों के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। इंडियन नेशनल ट्रेड कांग्रेस (इंटक), ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एंटक), नेशनल लेबर ऑर्गेनाईजेशन (NLO) तथा भारतीय मजदूर संघ (BMS) आदि श्रमिक संगठन इसके उदाहरण हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गठित श्रमिक संगठनः अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गठित श्रमिकों का संगठन अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के नाम से जाना जाता है। ये श्रमिक संगठन अंतराष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों की आवाज उठाते हैं। वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन तथा इंटरनेशन कान्फेडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन इस श्रमिक संगठन के उदाहरण हैं।

6.6.4 भौगोलिक सीमा के आधार पर निर्मित श्रमिक संघ

श्रमिक संघों का मुख्य आधार श्रमिकों के आर्थिक हितों की रक्षा करना होता है। इस इकाई में आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गठित श्रमिक संघों के स्वरूपों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर निर्मित श्रमिक संघः इन श्रमिक संघों को शुद्ध एवं सरल श्रमिक संघ के नाम से भी जाना जाता है। ये श्रमिक संघ सामूहिक सौदेबाजी को आधार बनाकर औद्योगिक विवादों का निपटारा करते हैं।

श्रमिक दल संघः ये श्रमिक संगठन विशेष रूप से राज्य सरकार से जुड़े होते हैं, ये श्रमिक संघ श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए राज्य सरकार से सहयोग लेते हैं।

विकसित श्रम संघः इन श्रमिक संघ का ध्यान श्रमिकों के आर्थिक हितों के साथ जुड़ा होता है। ये सरकार द्वारा बनायी गई मजदूरी नीति पर औद्योगिक प्रबंधन का ध्यान केन्द्रित करवाते हैं। साथ ही विकसित श्रमिक संघ श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि तथा बोनस आदि में बढ़ोतरी के लिए प्रयासरत रहते हैं।

औद्योगिक प्रबंधकीय संघः ये श्रमिक संघ औद्योगिक प्रबंधकों के संगठन हैं। ये संगठनों की प्रकृति, विशिष्टता, आंतरिक संरचना, अधिकार प्रणाली से संबंधित विषयों के निर्माण के लिए कार्य करता है।

स्व मूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-4 इंटक का विस्तारित रूप क्या है?

.....

प्रश्न-5 कुछ अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठनों के उदाहरण दीजिए।

.....

प्रश्न-6 BMS का विस्तारित रूप क्या है?

.....

6.7 श्रमिक संघों के कार्य

यूँ तो औद्योगिक जगत में श्रमिक संघ श्रमिकों से संबंधित समस्याएं, उनकी रोजगार की दशाएं, श्रमिकों को समुचित मिलने वाले पारिश्रमिक, श्रमिकों के हितों की रक्षा, श्रमिकों की शोषण से रक्षा तथा औद्योगिक प्रबंधन से श्रमिकों का सामंजस्य बनाये रखने के लिए कार्य करते हैं। अब हम श्रमिक संघों के मुख्य कार्यों को समझने का प्रयास करते हैं। श्रमिक संघों के मुख्य कार्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

श्रमिक संगठन से संबंधित आंतरिक कार्यों को करनाः श्रमिक संगठनों के श्रमिकों से जुड़े संगठन के कारण श्रमिकों से जुड़े मुद्दे, जैसे– श्रमिक संगठन की नियमावली, श्रमिक संगठनों के पदाधिकारियों के दायित्वों तथा कार्यों, श्रमिक संघ की आहूत की जाने वाली बैठकों, श्रमिक संघ की संरचना को मजबूती देने

के लिए श्रमिक संघ के सदस्यों के दायित्वों आदि अनेक पहलुओं, जो श्रमिक संगठनों से संबंधित हैं, से जुड़े कार्यों को करने का कार्य श्रमिक संघ करते हैं।

श्रमिक संघ द्वारा संगठन के आर्थिक कोष को मजबूत करने के लिए कार्य: हम सब इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि प्रत्येक संगठन या संस्था को चलाने के लिए अर्थ यानी रूपयों की जरूरत होती है। श्रमिक संघ अपने संगठन के क्रियाकलापों को चलाने के लिए श्रमिक संघ सदस्यता शुल्क, वार्षिक शुल्क तथा चंदे आदि के जरिये कोष जमा करते हैं। इन सबके विषय में श्रमिक संगठनों की नियमावली में स्पष्ट वर्णन किया जाता है। इस आर्थिक सहयोग से श्रमिक संगठन श्रमिक संघ से संबंधित क्रियाकलापों को करते हैं। उदाहरण के लिए श्रमिकों की बैठक बुलाना, श्रमिकों के अधिवेशन में प्रतिभाग करना, श्रमिकों को संगठन द्वारा आर्थिक मदद करना इस कोष से ही किया जाता है। इस प्रकार श्रमिक संगठन द्वारा अपने संगठन के आर्थिक कोष को बढ़ाने के लिए कार्य किया जाता है।

श्रमिक संगठन द्वारा अपने सदस्यों के लिए कल्याणकारी कार्यों को करना: श्रमिकों के गरीब होने के कारण वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होते हैं। श्रमिक संगठन अपने संगठन के ऐसे सदस्यों को उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कराने में आर्थिक सहयोग प्रदान करने का भी कार्य करते हैं। श्रमिकों के साथ घटित आपदा की स्थिति में चिकित्सा की जरूरत पड़ने पर, श्रमिकों की लड़कियों की शादी एवं अन्य जरूरत आदि से संबंधित अनेक कल्याणकारी कार्य श्रमिक संगठन अपने सदस्यों के लिए करते हैं।

श्रमिक संगठन के सदस्यों की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कार्य करना: प्रत्येक श्रमिक संगठन की नींव श्रमिक होता है। श्रमिकों द्वारा ही श्रमिक संगठन का निर्माण किया जाता है। संगठन में श्रमिकों को संख्या के ज्यादा होने के कारण श्रमिकों की विचारधारा अलग-अलग हो सकती हैं। अलग-अलग विचाराधारा, क्षेत्रों से, धर्मों, जातियों एवं सम्प्रदायों से होने के कारण श्रमिक संगठन को ये तत्व कमजोर कर

सकते हैं। इससे संगठन का वजूद खत्म हो सकता है। इस तरह की स्थितियों को रोकने के लिए श्रमिक संगठन अपने सदस्यों में संगठन के प्रति एकता की भावना का विकास कर उन्हें संगठन को मजबूती देने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रमिक संघ अपने सदस्यों में संगठन के प्रति एकता को बनाये रखने के लिए कार्य करते हैं।

संगठन की राजनैतिक शक्ति को प्रबल बनाने के लिए कार्य करना: प्रत्येक श्रमिक संगठन अपनी शक्ति को मजबूत करना चाहता ह। श्रमिक संगठन अपने संगठन की मजबूती के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर से किसी न किसी राजनैतिक पार्टी की विचारधारा से प्रभावित होते हैं। ये श्रमिक संगठन राजनीतिज्ञों को अपनी शक्ति का अहसास कराने के लिए तथा श्रमिक संगठन का वोट बैंक उस राजनीतिज्ञ या राजनैतिक पार्टी के पक्ष में डालने या डलवाने के लिए कभी-कभी आपसी सौदेबाजी भी करते हैं। श्रमिक संगठन अपने संगठन की विचारधारा से मेल खाती राजनैतिक पार्टी से भी अपने हितों के लिए संरक्षण लेते हैं।

औद्योगिक प्रबंधन को सहयोग देने से संबंधित कार्यों का निर्वहन करना: श्रमिक संघ औद्योगिक प्रबंधन के साथ भी सहयोग करने के लिए कार्य करते हैं। यदि कभी किसी कारणवश श्रमिकों एवं औद्योगिक प्रबंधन के बीच विवाद उत्पन्न हो जाता है, तब उस स्थिति में श्रमिक संघ एवं औद्योगिक प्रबंधन के पदाधिकारी आपस में बात कर विवाद को समाप्त करने और सहयोग का रास्ता निकालने की कोशिश करते हैं।

कार्यस्थल या औद्योगिक इकाई पर श्रमिकों को अच्छा वातावरण प्रदान करवाने के लिए कार्य करना: प्रत्येक श्रमिक संगठन चाहता है कि उसके नियोक्ता एवं औद्योगिक प्रबंधन प्रत्येक श्रमिक को कार्यस्थल पर अच्छा वातावरण मुहैया करवायें, जिससे श्रमिकों की कार्यशक्ति बढ़ेगी। यदि किसी औद्योगिक इकाई में श्रमिकों के कार्यस्थल का माहौल, वातावरण, ठीक नहीं है, तब उस स्थिति में श्रमिक संगठन कार्यस्थल के अच्छे वातावरण को बनाये रखने के लिए औद्योगिक प्रबंधन से वार्ता करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते

हैं कि श्रमिकों के कार्यस्थल पर श्रमिकों को अच्छा वातावरण प्रदान करने से संबंधित कार्य श्रमिक संगठन द्वारा किये जाते हैं।

श्रमिकों की कार्यस्थल की समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याओं के निराकरण के लिए कार्य करना: श्रमिक संघ के कार्य सिर्फ श्रमिकों के कार्यस्थल तक ही सीमित नहीं होते हैं। यदि किसी श्रमिक के परिवार में कोई बीमार हो जाता है या परिवार का कोई सदस्य किसी दुर्घटना का शिकार हो जाता है, तब उस स्थिति में श्रमिक संघ उस श्रमिक के परिवार के सदस्यों को इलाज की सुविधाओं के साथ-साथ परिवार को उन मूल आवश्यकताओं की पूर्ति भी करवाते हैं, जो उस परिवार के लिए आवश्यक हो।

औद्योगिक संस्थानों में श्रम कानूनों को लागू करने के लिए प्रबंधन पर दबाव बनाना: श्रम कानून श्रमिकों के लिए सुरक्षा का कार्य करते हैं। श्रम कानून श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हैं। औद्योगिक संस्थाओं में श्रम कानूनों की अनदेखी या लागू नहीं होने की स्थिति में श्रमिक संगठन कारखाना अधिनियम 1948, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1936, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 जैसे श्रम कानूनों को लागू करवाकर श्रमिकों के हितों की रक्षा करते हैं। ये श्रम कानून श्रमिकों को मजबूती देते हैं।

जनतंत्रात्मक कार्यों को करना: श्रमिक संघ श्रमिकों में स्वतंत्रता, आत्मविश्वास तथा श्रमिकों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का भी कार्य करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रम संघ लोकतंत्र की भावना के प्रेरणास्त्रोत हैं। ये सभी श्रमिकों को सुरक्षा देते हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-7 कारखाना अधिनियम कब आया?

.....

प्रश्न-8 औद्योगिक विवाद अधिनियम किस वर्ष बनाया गया?

.....

प्रश्न-9 समान पारिश्रमिक अधिनियम किस वर्ष आया?

.....

प्रश्न-10 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम किस वर्ष बनाया गया?

.....

6.8 श्रमिक संघों का महत्व

जैसा कि हम सब जानते हैं कि श्रमिक संघ एक या एक से अधिक व्यवसायों में लगे श्रमिकों के ऐसे संगठन से है, जो अपने सदस्यों के दैनिक कार्यों से संबंधित आर्थिक-सामाजिक एवं राजनैतिक हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से गठित किया जाता है। श्रमिक संघों के पीछे जो विचारधारा बलवती होती है, वह है श्रमिकों के हितों की सुरक्षा करना। इसके साथ ही श्रमिक संघ का यह भी उद्देश्य होता है कि औद्योगिक इकाई में प्रबंधन के साथ श्रमिकों के मजबूत रिश्ते भी कायम रहें तथा उत्पादन में गिरावट न आये। इस प्रकार श्रमिकों की औद्योगिक इकाइयों के साथ प्रतिबद्धता बनी रहे तथा औद्योगिक इकाइयों की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे और उत्पादन भी बढ़ता रहे।

इकाई के इस भाग में हम श्रमिक संघ के महत्व पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे। श्रमिक संघ के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

- श्रमिक संघ एक सुनियोजित, विवेकपूर्ण तथा तर्कसंगत रूप से गठित, श्रमिकों का एक संघ है। इसका गठन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।
- श्रमिक संघ औद्योगिक इकाइयों में कार्य करने वाले श्रमिकों का एक ऐच्छिक संगठन है। इसकी सदस्यता लेने या नहीं लेने का अधिकार श्रमिकों के पास है। यानी श्रमिक इसकी सदस्यता लेने या नहीं लेने के लिए स्वतंत्र हैं।

- श्रमिक संघ के सदस्यों की भूमिकाओं, अधिकारों और कर्त्तव्यों की स्पष्ट व्याख्या होती है।
- श्रमिक संघ उन श्रमिकों के लिए कार्य करता है, जो समाज के आखिरी पायदान पर खड़े हैं। श्रमिक संघ उन्हें सहयोग करने के लिए तत्पर रहता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा तथा उन्हें शोषण से बचाने के लिए एक कवच का कार्य करते हैं।
- श्रमिक संघ औद्योगिक प्रबंधन से श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी, कार्य के घंटे, कार्यस्थल पर श्रमिकों का शोषण रोकने के लिए हमेशा कार्य करते हैं।
- श्रमिक संघ उद्योग और समाज के रूप में श्रमिकों की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए तत्पर रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप उद्योग और श्रमिकों के बीच प्रकार्यात्मक संबंध प्रगाढ़ बन सकें।
- श्रमिक संघ अपने सदस्यों तथा उनके परिवारों के लिए स्कूल, वाचनालय, चिकित्सा सुविधा तथा ऋण सुविधा की व्यवस्था भी करते हैं।
- श्रमिक संघ श्रम से संबंधित कानूनों को उद्योगों में कार्यान्वित करने के लिए भी कार्य करते हैं। श्रम कानूनों के लागू होने से इसका फायदा श्रमिकों को मिलता है।
- श्रमिक संघ श्रमिकों की दुर्घटना, बीमारी या अन्य संकट के समय, श्रमिकों के परिवारों को आर्थिक सहायता भी करते हैं।

6.9 श्रमिक संघों के दोष

प्रत्येक संगठित श्रम संघ अपने उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करते हैं। अधिकतर श्रमिक संघ अपने सदस्यों के हितों की रक्षा के लिए गठित किये जाते हैं। श्रमिक संघ श्रमिकों को दमन एवं शोषण से मुक्ति दिलाते हैं। श्रमिक संघों ने औद्योगिक इकाइयों में शक्ति संतुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निवर्हन किया है। श्रमिक संघों ने

औद्योगिक प्रबंधनों के प्रति अंधी भक्ति के स्थान पर श्रमिकों के मन में निष्ठापूर्ण विरोध की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। इसके परिणामस्वरूप श्रमिक औद्योगिक इकाइयों के प्रति निष्ठाहीन होते जा रहे हैं। औद्योगिक प्रबंधन की शक्ति के समक्ष श्रमिक संघों ने एक नवीन शक्ति खड़ी कर दी है। श्रमिक संघों ने उद्योगों में श्रमिक पदाधिकारियों को वह शक्ति प्रदान कर दी है कि वे औद्योगिक प्रबंधनों तथा नियोक्ताओं के साथ बराबरी के दर्जे के साथ बात करके किसी समस्या को आसानी से सुलझा सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रमिक संघ श्रमिक कल्याण को वैधानिक स्वरूप प्रदान करने और श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा को गति देने के लिए कार्य करते हैं। श्रमिक संघों के उदय का परिणाम है कि आज औद्योगिक क्रांति और राजनैतिक क्रांति परस्पर जुड़ रहे हैं। श्रमिक संघों ने सामान्य श्रमिकों को इस योग्य बना दिया है कि वे औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न आर्थिक, राजनैतिक एवं लोकतांत्रिक विकास का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। आज श्रमिक भौतिक दृष्टि से सुखी और समृद्ध तथा सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित एवं स्वतंत्र नागरिक के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। एक ओर श्रमिक संघ श्रमिकों के हितों के लिए हमेशा कवच बनकर कार्य कर रहे हैं, जिसका फायदा सामान्य श्रमिकों को प्राप्त होता है। वहीं दूसरी ओर श्रमिक संघ अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का दुरूपयोग करते हुए औद्योगिक इकाइयों को प्रभावित भी कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक इकाइयों में नियोक्ता और श्रमिकों के बीच में असमानता की खाई बढ़ती जा रही है। औद्योगिक इकाइयों में इसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ रहा है। अब हम श्रमिक संघ के दोषों पर चर्चा करने का प्रयास करेंगे:

- श्रमिक संघों की अधिकता के कारण ये संघ अब राजनैतिक लाभ के अखड़े बन गये हैं।
- श्रमिक संघ अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए औद्योगिक इकाइयों पर दबाव बनाने का कार्य कर रहे हैं।
- श्रमिक संगठनों का निर्माण किसी राजनैतिक दलों की प्रेरणा से होने के कारण औद्योगिक इकाइयों में श्रमिक संघ राजनैतिक नेताओं के निर्देशन में कार्य कर रहे हैं।

- श्रमिक संघों की संख्या अधिक होने के कारण औद्योगिक इकाइयों के श्रमिकों ने अपने-अपने गुट बना लिए हैं, जो श्रमिक संघोंको कमजोर करने का कार्य करते हैं।
- श्रमिक संघों के औद्योगिक प्रबंधन के साथ मनमाने रवैये के कारण श्रमिकों में अनुशासनहीनता की भावना बढ़ रही है, जिसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है।
- अधिकतर श्रमिक संगठन अपने हितों को सर्वोपरि रखते हैं। इसका औद्योगिक इकाई पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिस कारण उद्योगों में आये दिन हड़ताल एवं तालाबंदी रहती है और औद्योगिक इकाइयां बंद होने की कगार पर आ जाती हैं, जिससे देश की अर्थव्यवस्था कमजोर हो रही है।

6.10 सारांश

इस इकाई में हमने श्रमिक संघवाद के विषय पर चर्चा के साथ शुरूआत की थी। इस इकाई में श्रमिक संघवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, श्रमिक संघवाद का अर्थ एवं विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं के विषय में चर्चा की। इसके साथ ही श्रमिक संघवाद की विशेषताओं, श्रमिक संघवाद के उद्देश्य एवं श्रमिक संघवाद के विभिन्न स्वरूपों में भी चर्चा की ।

औद्योगिक इकाइयों में श्रम संघ एवं औद्योगिक प्रबंधन के मधुर रिश्ते औद्योगिक इकाइयों के विकास के साथ-साथ श्रमिकों को भी आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। श्रमिक संघ अपने दायित्वों एवं कर्त्तव्यों के निर्वहन इस प्रकार करते हैं कि औद्योगिक प्रबंधन और श्रमिक संघों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास एवं निष्ठा बनी रहे। इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए श्रमिक संगठन कार्य करते हैं। श्रमिक संघों के कार्यों को भी इस इकाई में समझाया गया है। इस इकाई के अंत में श्रमिक संघों के महत्व तथा श्रमिक संघों के दोषों का भी वर्णन किया गया है। इस इकाई के अंत में विद्यार्थियों के ज्ञान को परखने के लिए श्रमिक संघ से संबंधित लघु उत्तरीय एवं निबंधात्मक प्रश्नों का समावेशन किया जा रहा है।

6.11 शब्दावली

श्रमिक संघः ''श्रमिक संघ वे संगठन हैं, जो मालिकों द्वारा होने वाले शोषण से बचने के लिए अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए बनाये जाते हैं।''[6]

संघवाद: स्थानीय, श्रमिक-आधारित संगठनों की स्थापना और हड़तालों के माध्यम से श्रमिकों की मांगों और अधिकारों को आगे बढ़ाने के लिए श्रमिक आंदोलन में संघवाद एक धारा है।

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-1 18वीं शताब्दी

प्रश्न-2 ग्रेट ब्रिटेन में 19 वीं शताब्दी में

प्रश्न-3 1851 में

प्रश्न-4 इंडियन नेशनल ट्रेड कांग्रेस

प्रश्न-5 वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन तथा इंटरनेशन कान्फेडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन

प्रश्न-6 भारतीय मजदूर संघ

प्रश्न-7 कारखाना अधिनियम 1948

प्रश्न-8 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948

प्रश्न-9 समान पारिश्रमिक अधिनियम 1936

प्रश्न-10 औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947

6.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Giri, V.V., (1959), "Labour Prolbems In Indian Industry", Published By Asia Publishing House*
2. *Baron, N. (1920), "The History Of Trade Unionism" Published By Routegde Taylor & Francis Group.*
3. *Cole, G.D.H. "Organised Labour : An Introduction To Trade Unionism" Published By Routlegde Taylor & Francis Group.*
4. *Lester, R.A., "Labouor & Industrial Relation"*
5. *Perlman, Selig, (2019), "A History Of Trade Unionism In The United States", Published By Forgotten Books*
6. *Ramaswamy, E.A. & U.Ramaswamy, (1981), "Industry And Labour : An Introduction", Published By Oxford University Press.*
7. *झा, विश्वनाथ, (2012), "औद्योगिक समाजशास्त्र", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर*

6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. *https://www.hmoob.in/wiki/Strike_action*
2. *https://www.hmoob.in/wiki/Labour_movement*
3. *https://www.lawinsider.com/dictionary/business-enterprise*

6.15 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

1. श्रमिक संघवाद से आप क्या समझते हैं।
2. श्रमिक संघ के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
3. श्रमिक संघों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. श्रमिक संघों के मुख्य कार्यों पर प्रकाश डालिए।
5. श्रमिक संघों के महत्व का वर्णन कीजिए।

6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रमिक संघवाद की अवधारणा स्पष्ट करते हुए श्रमिक संघों के कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. श्रमिक संघ से आप क्या समझते हैं? श्रमिक संघों की विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
3. श्रमिक संघ के महत्व एवं दोषों पर एक निबंध लिखिए।
4. श्रमिक संघ के स्वरूपों की चर्चा कीजिए।
5. श्रमिक संघ की परिभाषा दीजिए। श्रमिक संघों के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

इकाई-7 भारत में श्रम आंदोलन

(Labour Movement in India)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 श्रमिक आंदोलन की अवधारणा

7.3 श्रमिक आंदोलन का विकास

7.4 श्रमिक आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7.5 श्रमिक आंदोलन के कारण

7.6 औपनिवेशिक काल में हुए श्रमिक आंदोलन

7.7 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हुए श्रमिक आंदोलन

7.8 भारत के प्रमुख श्रमिक संघ

7.9 श्रमिक आंदोलन की विशेषताएं

7.10 श्रमिक आंदोलन की कमजोरियां

7.11 सारांश

7.12 लघु उत्तरीय प्रश्न

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.14 संदर्भ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे कि-

- श्रमिक आंदोलन की अवधारणा, श्रमिक आंदोलन का विकास एवं श्रमिक आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकें।
- भारत में श्रमिक आंदोलन के कारणों के विषय में जान सकें और वर्णन कर सकें।
- औपनिवेशिक काल एवं द्वितीय विश्वयुद्व के पश्चात् हुए श्रमिक आंदोलनों के बारे में जानें।
- श्रमिक आंदोलनों की कमजोरियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करें।

7.1 परिचय

किसी भी औद्योगिक इकाई को संचालित करने के लिए श्रम शक्ति की नितान्त आवश्यकता होती है। श्रमिकों की श्रमशक्ति से ही वस्तुओं का उत्पादन होता है। श्रमशक्ति के एवज में श्रमिकों को नियोजकों से मजदूरी मिलती है। श्रमिक इस मजदूरी से अपने तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं। लेकिन यहां यह प्रश्न उठता है श्रमिक जो उद्योगों, फैक्ट्रियों, कारखानों एवं निर्माण इकाइयों में काम करते हैं, क्या उन्हें उतनी मजदूरी मिल पाती है जितने के वे हकदार हैं? और क्या कल्याणकारी श्रम कानूनों से उनकी रक्षा हो पा रही है या नहीं? लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत क्या श्रमिक अपने हितों एवं अधिकारों की रक्षा के लिए नियोक्ता से वार्ता करते हैं? यदि श्रमिकों के हितों की नियोक्ता द्वारा अनदेखी की जाती है, तो स्वाभाविक है श्रमिकों में अपने नियोक्ताओं के प्रति असंतोष उत्पन्न होगा। इन समस्याओं के समाधान के लिये श्रमिक, श्रमिक संगठनों का गठन करते हैं। श्रमिक संगठन श्रमिकों की रोजगार की दशाओं को ठीक करने के लिए कार्य करते हैं और नियोजकों के उत्पीड़न एवं शोषण से श्रमिकों की रक्षा करते हैं। साथ ही श्रमिकों के वेतन, भत्ता, बोनस एवं अन्य मुद्दों के लिए कार्य करते हैं। वैश्वीकरण तथा आर्थिक उदारीकरण के

वर्तमान दौर में श्रमिक संघों के समक्ष नई चुनौती उत्पन्न हुई है, क्योंकि वैश्वीकरण तथा उदारीकरण ने श्रमिक संघों के बुनियादी आधारों को झकझोर कर रख दिया है।

जैसा कि हम जानते हैं कारखानों, उद्योगों एवं फैक्ट्रियों का संचालन मशीनों के साथ-साथ श्रमशक्ति से होता है। मशीनों का संचालन मनुष्यों के द्वारा ही होता है। श्रमिक अपने श्रम से वस्तुओं का उत्पादन एवं विनिर्माण करते हैं। औद्योगिक इकाइयों में कार्य करने वाले श्रमिकों को उनके श्रम का उचित प्रतिफल मिल पाता है या नहीं? श्रमिकों को न्यूनतम वेतन मिल पाता है या नहीं? श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था है या नहीं? श्रमिकों को औद्योगिक इकाइयों से मिलने वाली सुविधाएं समुचित है या नहीं? आदि मुद्दों ने श्रमिकों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया था। अधिकतर श्रमिकों को इन सुविधाओं से वंचित रखने के कारण श्रमिकों की चेतना इन सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए जागृत होने लगी थी। इसके परिणामस्वरूप तमाम सुविधाओं की वंचना ने श्रमिकों में असंतोष के बीज डाल दिये। श्रमिकों में औद्योगिक इकाइयों, औद्योगिक प्रबंधनों एवं नियोक्ताओं के प्रति असंतोष बढ़ने लगा। श्रमिकों के इस असंतोष ने श्रम आंदोलनों को चिंगारी देने का काम किया।

इस इकाई में हम भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों पर ध्यान केंन्द्रित करेंगे। यहां प्रश्न उठता है कि श्रमिक कौन हैं? श्रमिक से आशय उस व्यक्ति से है जो अपनी श्रम शक्ति से औद्योगिक इकाइयों, कारखानों, विनिर्माण के क्षेत्रों, लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों, कृषि कार्यों एवं उत्पादन की उन समस्त इकाइयों में अपने श्रम से वस्तुओं का उत्पादन एवं विनिर्माण के कार्य करता है। श्रमिक के कार्य के एवज में उसे पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है। आधुनिकीकरण के इस दौर में आज श्रम के मायने भी बदले हैं। आज श्रम सिर्फ शारारिक श्रम तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान समय में शारीरिक श्रम के साथ-साथ तकनीकि श्रम एवं मानसिक श्रम भी महत्वपूर्ण हो गये हैं। वास्तव में देखा जाये तो आधुनिक समाज में बढ़ती व्यावसायिक भिन्नता ने तो श्रम के स्वरूपों को भी परिवर्तित कर दिया है।

श्रम कैसा भी हो आखिर मेहनत तो श्रमिक की ही ज्यादा होती है, लेकिन क्या श्रमिक की मेहनत के एवज में उसको उतना मिल पाता है, जितनी उसकी मेहनत होती है? श्रमिक को मिलने वाला वेतन, स्वास्थ्य सुवधिाएं, बोनस,

ग्रेच्यूटी, बीमा सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा से संबंधित लाभों पर श्रमिकों का अधिकार होता है। श्रमिकों को मिलने वाली इन तमाम सुविधाओं से श्रमिकों का औद्योगिक इकाइयों के साथ विश्वास बना रहता है। इस विश्वास के कारण ही औद्योगिक-प्रबंधन एवं श्रमिकों के बीच प्रकार्यात्मक संबंध बने रहते हैं। साथ ही औद्योगिक प्रबंधन एवं श्रमिकों के आपसी संबंध भी मजबूत होते हैं।

7.2 श्रमिक आंदोलन की अवधारणा

श्रमिक आंदोलन से तात्पर्य है, श्रमिकों के समूह द्वारा अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ऊंचा उठाने की दिशा में किया गया एक सामूहिक प्रयास, जो निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक विचारधारा, नेतृत्व एवं संगठन के द्वारा किया गया एक आंदोलन था। जिसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना था। इमाईल दुर्खीम ने अपनी पुस्तक "Social Division of Labour" में सामाजिक एकता की धारणा का प्रयोग करते हुए बताया कि "किसी समूह या समाज की उस स्थिति को सामाजिक एकता कहा जाता है, जिसमें सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सहयोग, सदभाव, मेल-मिलाप तथा सामूहिक क्रिया का प्रयोग किया जाता है।" इससे लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी होती है।

7.3 श्रमिक आंदोलन का विकास

प्राचीन भारत पारम्परिक ग्रामीण लघु, कुटीर उद्योगों की दृष्टि से उन्नत था। विभिन्न आक्रमणकारियों ने इन उद्योगों को नुकसान पहुँचाने का काम किया था, जिससे इन उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिक भी प्रभावित होने से नहीं बच पाये। अंग्रेजों के आगमन एवं इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के बाद तो भारत के इन उद्योगों का अस्तित्व ही खत्म हो गया था। तब भारत सस्ते श्रम एवं कच्चे माल के उत्पादन की एक बहुत बड़ी मंडी बन गया था। अंग्रेजों के द्वारा भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों को नष्ट करने के परिणामस्वरूप श्रमिकों की स्थिति दयनीय होती गयी। श्रमिकों में असंतोष के कारण श्रमिक आंदोलन तेज होने लगे थे।

7.4 श्रमिक आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1760 के कालखण्ड में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति हुई थी। दुनिया के अन्य देशों में भी इस समय औद्योगिक क्रांति का विस्तार हो रहा या उत्पादन की गति को तेज करने के लिए नये-नये क्षेत्रों में अन्वेषण हो रहे थे। औद्योगिक क्रांति ने एक नई दुनिया को जन्म देने का कार्य किया था। इस औद्योगिक क्रांति का प्रभाव भारत में भी पड़ने लगा था। औनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने भारत में कपड़ा, कागज, चीनी, रसायन, औषधि एवं इस्पात आदि के उद्योग धंधे स्थापित किये थे। इसी के साथ-साथ अंग्रेजों ने भारत में चाय-कॉफी, बागान, खान एवं अन्य सेवाओं को भी शुरू किया था। अंग्रेजी शासन की नीति के कारण भारत में कृषि चौपट हो चुकी थी। इसी कारण अधिकतर लोग श्रमिक जीवन अपनाने लगे थे, जिससे श्रमिकों की संख्या भी बढ़ने लगी थी। यहां तक कि लोगों जबरन श्रमिक बनाया जाने लगा था। भारत में 1850 के बाद सूती कपड़े एवं पटसन के कारखाने अंग्रेजों द्वारा लगाये गये थे। इस कारण यहां के हाथ के कारीगर बेरोजगार हो गये थे, क्योंकि अब हाथ के बजाय मशीनों से कार्य होना शुरू हो गया था। इन मशीनों को चलाने के लिए निपुण लोगों की आवश्कता होती थी। इसी कारण भारत के अधिकांश श्रमिक बेरोजगार हो गये थे। इन बेरोजगार श्रमिकों से मनमाना कार्य करवाया जाने लगा था। इन श्रमिकों से आवश्यकता से अधिक कार्य लिया जाता था। न तो श्रमिकों के कार्य के घंटे निश्चित थे, न ही उन्हें न्यूनतम मजदूरी दी जाती थी। इसके चलते ये अपना एवं अपने परिवार का भरण पोषण भी ठीक से नहीं कर पाते थे। इस कारण अधिकतर श्रमिक ऋणग्रस्त थे।

भारत में हुए इस औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में एक नये वर्ग का जन्म हुआ, जिसे श्रमिक वर्ग कहा गया। प्रारम्भ में यह वर्ग संगठित नहीं था। 20 वीं शताब्दी में कुछ राजनैतिक नेताओं ने किसानों एवं श्रमिकों को संगठित करके इनकी चेतना को जागृत करने का प्रयास किया था। जिसके परिणामस्वरूप भारत में श्रमिक आंदोलनों की शुरूआत हुई थी।

यूं तो भारत में श्रमिक आंदोलनों का विकास कई चरणों से जुड़ा है। भारत के इतिहास में श्रमिक आंदोलनों की शुरूआत 1860 के दशक में हुई थी। भारत में पहला श्रमिक आंदोलन बॉम्बे में 1875 में हुआ था। भारत में हुए श्रमिक आंदोलन अलग-अलग कालखंडों में हुए थे।

7.5 श्रमिक आंदोलनों के कारण

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ श्रमिकों की भी मांग बढ़ने लगी थी। भारत में भी औद्योगिक इकाइयों का विस्तार होने लगा था। इन औद्योगिक इकाइयों के लिए श्रमिकों की मांग बढ़ने लगी थी। जोर-जबरदस्ती से श्रमिक बनाये जाने लगे थे। भारत में औद्योगिक इकाइयों में श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों के माध्यम से की जाने लगी। ठेकेदारों को श्रमिकों की नियुक्ति करने के एवज में मोटा कमीशन मिलता था। इसके लालच में ठेकेदार गांव से लोगों को बहला-फुसलाकर श्रमिक बना देते थे। इन श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। श्रमिकों के कठिन परिश्रम के एवज में उन्हें सिर्फ उतनी मजदूरी मिलती थी, जिससे वे जीवित रह सकें और औद्योगिक इकाइयों में काम कर सकें। श्रमिकों की स्थिति 'कोल्हू के बैल' के समान थी और दिन पर दिन दयनीय होती जा रही थी। इसी दौरान धीरे-धीरे श्रमिक संघ भी अस्तित्व में आने लगे, जिससे श्रमिक आंदोलनों को गति मिलने लगी। श्रमिक आंदोलनों के लिए उत्तरदायी कारकों को हम निम्नवत समझने की कोशिश करेंगे:

- श्रमिक आंदोलनों का प्रमुख कारण, श्रमिकों की दयनीय स्थिति एवं उनके शोषण से जुड़ा है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप श्रमिकों की स्थिति में गिरावट आने लगी थी। श्रमिकों से कार्य भी ज्यादा लिया जाता था। कार्य के घंटे नियत नहीं थे, न ही उनकी मजदूरी का निर्धारण निश्चित था।

- श्रमिकों की आर्थिक असुरक्षा से उत्पन्न संकट श्रमिक आंदोलन के कारण बने।

- काम के दौरान दुघर्टना, आकस्मिक मृत्यु, बीमारी से सुरक्षा आदि से संबंधित प्रावधान श्रमिकों को प्राप्त नहीं थे। इस कारण श्रमिक संघों ने औद्योगिक इकाईयों के विरूद्ध श्रमिकों को साथ लेकर श्रमिक आंदोलनों की दिशा को गति देने का प्रयास किया था। जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक आंदोलनों का जन्म हुआ था।

इस इकाई में हम भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों के विषय में चर्चा करेंगे। भारत में श्रमिक आंदोलन अलग-अलग कालखण्डों में एवं अलग-अलग चरणों में हुए हैं। मुख्यत: दो कालखण्डों के अलग-अलग चरणों में हुए श्रमिक आंदोलनों को समझाने की कोशिश प्रस्तुत इकाई में की जा रही है।

7.6 औपनिवेशिक काल में हुए श्रमिक आंदोलन

भारत में श्रमिक आंदोलनों की शुरूआत अंग्रेजी शासन के भारत में आने के बाद हुई थी। अंग्रेजों ने भारत में औद्योगिक इकाइयों को स्थापित किया था। इनमें कार्य करने के लिए बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता थी। अंग्रेजों ने भारत के ग्रामीणों को बड़ी संख्या में श्रमिक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। श्रमिकों से जितना कार्य लिया जाता था, उसके एवज में सिर्फ उतनी ही मजदूरी दी जाती थी, जिससे वे जीवित रह सकें। ये मजदूर सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हुए थे। इनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ था। ये निरक्षर थे, इस कारण श्रमिकों की स्थिति दयनीय थी। इसी दौरान श्रमिकों ने अपनी दयनीय स्थिति से निजात पाने के लिए श्रमिक संघों का गठन करना भी सुनिश्चित कर दिया था। इसके साथ ही श्रमिकों की दयनीय स्थिति की तरफ बहुत से समाज सुधारकों, बुद्धिजीवियों का ध्यान गया। इन समाजसुधारक एवं बुद्धिजीवियों ने श्रमिकों की चेतना को जागृत किया तथा श्रमिकों की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए समाज के इन वर्गों ने श्रमिकों को अपना सहयोग दिया। जिसके परिणामस्वरूप देश के कोने-कोने में श्रमिक आंदोलनों का आगाज होना शुरू हो गया। भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों के चरणों को निम्नवत समझा जा सकता-

1857 से 1918 का चरण: भारत में सन 1857 से 1918 तक के कालखण्ड में हुए श्रमिक आंदोलनों को निम्नलिखित बिंदुओं में प्रस्तुत किया जा रहा है।

- अंग्रेजी शासनकाल के अत्याचारों से मुक्ति के लिए देश के कोने-कोने में आंदोलन हो रहे थे। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में श्रमिकों ने भी आंदोलन में सहभागिता की थी। देखा जाये तो 1860 से श्रमिक आंदोलनों का आरंभ हुआ, लेकिन औपचारिक तौर पर भारत में पहला श्रमिक आंदोलन बॉम्बे में सन् 1875 में एस.एस. बंगाली के नेतृत्व में हुआ था। इस आंदोलन ने श्रमिकों के रूप में काम कर रहीं महिलाओं और बच्चों की दुर्दशा पर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराया । इस आंदोलन के परिणामस्वरूप 1875 में बॉम्बे में कारखाना आयुक्त को नियुक्त किया गया था, जिसकी सिफारिश पर वर्ष 1881 में पहला कारखाना अधिनियम बना।
- 1890 में एन.एम. लोखांडे ने बम्बई की फैक्ट्री में कार्य करने वाले श्रमिकों का सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप 1890 में 'बॉम्बे मिल हैन्डस एसोशियेशन' (बम्बई मिल मजदूर संघ) नामक पहला श्रमिक संघ बना था। इस श्रमिक संघ ने श्रमिकों के कार्य के घंटे नियत करने, साप्ताहिक अवकाश, मध्यांतर अवकाश एवं श्रमिकों को अन्य सुविधाएं प्रदान करने पर जोर दिया। 1891 में द्वितीय कारखाना अधिनियम आया था।
- 1905 में बंगाल विभाजन के दौरान श्रमिकों को राजनैतिक ताकतों का साथ मिला। इस दौरान श्रमिकों ने अपनी दुर्दशा को सुधारने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में हड़तालें एवं आंदोलन किये थे। इन आंदोलनों ने श्रमिक संघों के गठन के लिए श्रमिकों को प्रोत्साहित किया।
- 1905 में ही श्रमिकों ने कलकत्ता में एक श्रमिक संगठन 'प्रिन्टर्स यूनियन कलकत्ता' का गठन किया था। यह संगठन 1881 के फैक्ट्री एक्ट में आई विसंगतियों के परिणामस्वरूप गठित हुआ था।
- 1907 में पोस्टल यूनियन का गठन किया गया था। ये संगठन श्रमिकों को कल्याणकारी सुविधाएं प्रदान करने एवं उनके शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए गठित किया गया था।

- 1910 में 'कामगार हित वर्धक सभा' (वर्कर्स वेलफेयर सोसाइटी) का गठन एन.ए. तालचेरकर, एस.के. वोले, वी.आर. नरे एवं एस.डब्ल्यू. पाटिल और अन्य द्वारा किया गया था। इस संगठन ने श्रमिकों के काम के घंटों में कमी करने, औद्योगिक मुआवजे एवं श्रमिकों की शिक्षा के लिए आंदोलन किया था। कामगार हितवर्धक सभा के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1911 में फैक्ट्री एक्ट पारित हुआ था।

7.7 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हुए श्रमिक आंदोलन

भारत में श्रमिक आंदोलनों की गति प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद बढ़ने लगी थी। भारत में धीरे-धीरे औद्योगिक इकाइयों का जाल फैल रहा था। भारत में श्रमिक आंदोलनों को राजनैतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों एवं स्वतंत्रता संग्राम के रणबांकुरों का साथ मिलने से यह आंदोलन व्यापक स्तर पर देश कोने-कोने तक फैल रहा था।

1918 से 1935 के चरण में हुए श्रमिक आंदोलनः सन् 1918 से 1935 तक के कालखण्ड में भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है–

- वी.वी. गिरी के अनुसार भारत में श्रमिक संघवाद का प्रारम्भ प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर हुआ था। डॉ. पुणेकर ने भारतीय श्रमिक संघवाद के इतिहास की इस अवधि को भारतीय श्रमिक संघवाद की प्रारम्भिक अवधि बताया है।
- 1918 में बी.पी. वाडिया ने 'मद्रास लेबर यूनियन' का गठन किया था, जो पहला व्यस्थित श्रमिक संघ था।
- अहमदाबाद में टेक्सटाइल मिलों में काम करने वाले श्रमिकों ने 1918 में महात्मा गांधी की प्रेरणा से 'अहमदाबाद वस्त्र मजदूर संघ' का गठन किया। इसमें गांधी जी को अनुसूइया बेन ने अपना समर्थन दिया

था। अहमदाबाद मिल के श्रमिकों ने अहमदाबाद में फैली प्लेग बीमारी के कारण श्रमिकों को प्लेग बोनस देने के लिए 21 दिन तक हड़ताल की थी। श्रमिकों के इस आंदोलन ने मिल मालिकों को प्लेग बोनस देने के लिए बाध्य किया था।

- 1919 में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन (ILO) के गठन के पश्चात् भारतीय श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ने लग गयी थी। श्रमिक संगठित होने लग गये थे।
- 1920 से पहले भारत में कोई राष्ट्रीय स्तर का श्रम संगठन नहीं था। 1920 से पहले अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में सरकार के प्रतिनिधि ही भाग लेते थे। 1920 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में श्रमिकों के प्रतिनिधियोंको भेजने के उद्देश्य से 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' नामक राष्ट्रीय स्तर के संगठन की स्थापना की गयी। इस संगठन के पहले अध्यक्ष लाला लाजपत राय थे। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारी संख्या में भारत में औद्योगिक इकाइयों का विस्तार और इसके फलस्वरूप श्रमिकों की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई थी। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् वस्तुओं की कीमतों में बढ़ोतरी हो गयी थी, लेकिन श्रमिकों की मजूदरी ज्यों की त्यों बनी हुयी थी। दूसरी ओर, मिल एवं औद्योगिक इकाइयों के मालिकों की पूंजी दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। इससे श्रमिकों में और असंतोष बढ़ गया और हिंसक हड़तालें शुरू हो गयी थी। 1924 तक भारत के श्रमिक आंदोलनों में तीव्र गति और बढ़ने लगी थी। अब श्रमिकों की हड़तालें लंबी अवधि की होने लगी थी।
- श्रमिकों में बढ़ते असंतोष एवं रोष के कारण 1926 में 'भारतीय श्रमिक संघ' कानून पारित हुआ था, जिसमें श्रमिकों के पंजीकृत श्रमिक संगठनों को वैधानिक मान्यता मिल गई। इस कानून में यह व्यवस्था दी गयी कि कोई भी व्यापारिक या औद्योगिक इकाई में कार्यरत व्यक्ति श्रमिक संघ बना सकता है और श्रमिक संघ का सदस्य बन सकताहै। इसके लिए तब श्रमिक की न्यूनतम आयु 15 वर्ष होना अनिवार्य था। यह श्रमिकों की दशा में सुधार के लिए एक सार्थक पहल थी।

- 1929 में स्थापित 'रॉयल कमीशन ऑन लेबर' के अध्यक्ष जॉन हेनरी व्हिटली थे। इस कमीशन ने 1931 में श्रम सांख्यिकी के आंकड़ों को व्यवस्थित करने का सुझाव देते हुये कहा कि प्राप्त आंकड़ों, तथ्यों के आधार पर ही श्रम नीति को बनाया जाना चाहिए। इस आयोग ने औद्योगिक श्रमिकों के रहने, काम करने और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को देखते हुए उपयुक्त कानून बनाने की सिफारिश की थी।
- 1930 से 1934 के बीच श्रमिक संघों में गिरावट आयी। श्रमिक संघ कमजोर हो गये थे। श्रमिक वर्ग के जीवन स्थितियों पर पड़ने वाले प्रभावों के परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग ने 1931 से 1934 तक के वर्षों के बीच भी अपनी स्थिति को उठाने के लिए श्रमिक आंदोलनों को जारी रखा था।

1935 से 1939 के काल में हुए श्रमिक आंदोलन

1935 में भारत सरकार ने अधिनियम बनाया, जिसके अन्तर्गत प्रांतों के राजनैतिक अधिकारों तथा प्रभावों में बढ़ोतरी की गई थी। इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक संघों के निर्वाचन क्षेत्रों से श्रमिक प्रतिनिधियों के निर्वाचन की व्यवस्था की गया। इसके परिणामस्वरूप श्रमिक संघों में एकता की स्थापना के प्रयास प्रारम्भ हुए।

1937 के प्रांतीय चुनावों में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने कांग्रेस के उम्मीदवारों का समर्थन किया। बाद में विभिन्न प्रांतों में गठित कांग्रेसी सरकारों ने व्यापार संघ गतिविधियों को अपना समर्थन दिया। सामान्यत: श्रमिकों की मांगों के प्रति कांग्रेसी सरकारों का रवैया सहानुभूतिपूर्ण था। इस दौरान श्रमिक समर्थक अनेक विधान बनाये गये ।

1938 में नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन तथा नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस का आपस में विलय हुआ। इस समय श्रमिक संघ तथा श्रम आंदोलनों के क्षेत्र एवं प्रभाव का विस्तार हो रहा था। 1938 में कार्य बंदियां और श्रमिकों की हड़तालें भी तेजी से बढ़ रही थीं।

1939 से 1945 के काल में हुए श्रमिक आंदोलन

श्रमिक संघ तथा श्रम आंदोलनों का चौथा काल अपने संगठन, आंदोलन एवं वैचारिकी में समानता लिए पूंजीपतियों, औद्योगिक इकाइयों के मालिकों एवं मिल मालिकों के खिलाफ लामबंद था। अब श्रमिकों में अपने वर्ग के प्रति चेतना का विकास हो रहा था। इस दौरान श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा जागरूक दिखाई दे रहे थे। द्वितीय विश्व युद्धकाल में सरकार ने प्रतिरक्षा नियमों के अन्तर्गत तालाबंदी और हड़ताल को अवैध घोषित कर दिया था। इसके साथ ही औद्योगिक विवादों को समझौतों एवं अधिनिर्णयन द्वारा हल करने का प्रयास किया था। सरकार को युद्ध में सहयोग करने के प्रश्न पर श्रमिक नेताओं में मतभेद थे। इसके परिणामस्वरूप एम.एन. राय ने 1941 में 'ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' से अलग होकर 'इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर' नामक नया संघ गठित कर दिया था। किंतु 1944 में इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर पर आरोप लगा कि यह संगठन ब्रिटिश अधिकारियों से धन प्राप्त करता है। युद्ध के पश्चात् सरकार द्वारा इंटरनेशनल लेबर ऑर्गेनाईजेशन में भारतीय श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से 'ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' और 'इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर' को मान्यता दी गयी।

1946 से वर्तमान तक हुए श्रमिक आंदोलन

औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम1946 एवं बॉम्बे औद्योगिक संबंध अधिनियम 1946 ने देश में व्यापार संघवाद को मजबूती देने का कार्य किया। आजादी के बाद राजनैतिक दल संघवाद के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके थे। मई 1947 में भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन राष्ट्रवादियों और नरमपंथियों द्वारा किया गया था और इसे कांग्रेस पार्टी द्वारा नियंत्रित किया गया था। 1948 में 'हिंद मजदूर सभा' का गठन हुआ था। एम.एन. राय की 'इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर' का हिंद मजदूर सभा में विलय हो गया। 1955 में जनसंघ पार्टी ने 'भारतीय मजदूर संघ' (BMS) की स्थापना की थी, जो वर्तमान में भारतीय जनता पार्टी से संबद्ध है। 1960 के बाद श्रमिक वर्ग की स्थिति में सुधार होने लगा था। इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों की हड़तालों की संख्या में भी कमी आयी।

1991 के बाद वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण ने श्रमिक आंदोलन को एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अपने एजेंडे, आर्थिक मंदी एवं विवेकीकरण के नाम पर मजदूरों की छंटनी की जा रही है। वर्तमान समय में श्रमिक संघ एवं श्रमिक आंदोलन संक्रमण के कगार पर है। आधारभूत संरचना, व्यापार तथा प्रबंधन, उत्पादक शक्ति एवं उत्पादन की प्रक्रिया तथा सूचना तकनीकि के विकास के कारण औद्योगिक संगठनों में भारी पैमाने पर फेरबदल हुआ है। श्रमिकों के सम्मुख नई चुनौतियां खड़ी हुई हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिक संघ श्रमिकों में यह प्रेरणा जागृत करें कि उनकी उद्योगों में सहभागिता है और यदि उद्योगों में उत्पादन बढ़ेगा, तो उसका लाभ निश्चित रूप से श्रमिकों, उद्योगपतियों और सम्पूर्ण देश को मिलेगा, जिससे हमारा देश भी मजबूत होगा और श्रमिक भी खुशहाल जिंदगी जी सकेंगे।

7.8 भारत के प्रमुख श्रमिक संघ

केन्द्रीय श्रम आयुक्त द्वारा 14 जनवरी 2008 की जारी रिपोर्ट के अनुसार देश में मान्यता प्राप्त केन्द्रीय श्रम संघों की कुल संख्या 12 है, जिनकी कुल सदस्य संख्या 2.49 करोड़ है। रिपोर्ट के अनुसार सदस्य संख्या के आधार पर देश के पांच बड़े श्रम संघ क्रमश: भारतीय मजदूर संघ, इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, हिन्द मजदूर सभा तथा सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन हैं।

7.9 श्रमिक आंदोलन की विशेषताएं

भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास औद्योगिकीकरण के साथ-साथ हुआ था। भारत के श्रमिक आंदोलनों को समाजसुधारकों, राजनीतिज्ञों एवं प्रबुद्ध जनों का सहयोग मिला था। यह आंदोलन प्रारम्भ में तो सीमित थे, लेकिन बाद में ये विविध उद्योगों में अपनी जड़ें जमा चुके थे। भारत में हुए श्रमिक आंदोलन की विशेषताओं को इकाई के इस भाग में निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

- भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास अंग्रेजी शासन की औद्योगिक नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ था।

- श्रमिक आंदोलन श्रमिकों की दयनीय स्थिति से मुक्ति के लिए किया गया आंदोलन था।
- भारत में श्रमिक आंदोलनों को समाजसुधारकों, राष्ट्रवादियों एवं प्रबुद्धजनों का साथ मिलने से यह तेजी से बढ़ने लगा था, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत में देखने को मिला था।
- अंग्रेजी शासनकाल में भारत में चाय बागानों, कल कारखानों, खनिज उद्योगों में जिस प्रकार वृद्धि हुई वैसे-वैसे श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई थी। श्रमिकों की संख्या बढ़ने से श्रमिकों की दशा दयनीय होते जा रही थी। श्रमिकों को सबसे कम मजदूरी मिलती थी। इस कारण वे अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ थे। इन सब परिस्थितियों ने श्रमिकों को आंदोलन के लिए मजबूर किया था।
- भारत में श्रमिक आंदोलन संगठित क्षेत्र तक ही सीमित था।
- भारत में श्रमिक आंदोलन सिर्फ उन ही स्थानों पर हुए थे, जहां बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयां स्थापित थीं। इस प्रकार भारत का श्रमिक आंदोलन एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित था।
- भारत के श्रमिक आंदोलन पर राजनैतिक दलों का प्रभाव था।
- श्रमिकों में क्षेत्रीयता व जातिगत चेतना के विकास के कारण श्रमिक आंदोलन बंटा हुआ था। उनमें एकता की कमी थी।
- भारत के श्रमिक आंदोलन में स्वायत्त विकास की अनुपस्थिति थी। ये आंदोलन श्रमिकों के बजाय बाहरी ताकतों पर ज्यादा निर्भर होने लग गये थे।
- श्रमिक आंदोलनों में राजनैतिक पार्टियों के प्रभाव के कारण एक समान विचारधारा का अभाव था। अलग-अलग राजनैतिक पार्टियों की विचारधारा ने श्रमिक आंदोलनों को कमजोर करने का कार्य किया था।

7.10 श्रमिक आंदोलनों की कमजोरियां

भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास देश की औद्योगिक प्रक्रिया के साथ-साथ राजनैतिक प्रक्रिया को भी दर्शाता है। प्रारम्भ में श्रमिक आंदोलन सिर्फ कपड़ा उद्योग तक ही सीमित था। धीरे-धीरे श्रमिक आंदोलन विविध उद्योगों तक फैल गया। प्रारम्भ में औद्योगिक श्रमिक बल का एक महत्वपूर्ण भाग ग्रामीण समाज से था, जिन्हें अकाल, भुखमरी ने अपने घरों से बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया था। जैसे ही इन श्रमिकों को अपने गांवों में नौकरियां मिलने लगीं, वे लौटने लगे। भारत में आधुनिक उद्योगों का प्रारम्भ 1850 से 1870 के बीच हुआ था। उद्योगों में श्रमिकों के कार्य की दशाएं बड़ी दयनीय थी। सोलह घंटों से अधिक कार्य, वेतन के निर्वाह स्तर पर निम्नतम होने के कारण श्रमिकों में रोष एवं असंतोष था, जिसने श्रमिक आंदोलनों का जन्म दिया।

भारत के श्रमिक आंदोलनों का इतिहास लंबा है। भारत में आधुनिक श्रमिक वर्ग का पदार्पण 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन के तहत पूंजीवाद के आगमन के साथ हुआ था। प्रारम्भ में श्रमिक आंदोलन प्रमुखत: वस्त्र उद्योग तक ही सीमित था। बाद में धीरे-धीरे श्रमिक आंदोलन ने अपनी जड़ें अन्य क्षेत्रों में भी जमानी शुरू कर दीं। यूं तो श्रमिक आंदोलनों ने भारतीय समाज पर अपना सकारात्मक प्रभाव छोड़ा था, जिससे श्रमिकों की स्थिति में सुधार आया था। इसके साथ ही भारत में हुए श्रमिक आंदोलन असफल भी हुए थे। इन श्रमिक आंदोलनों की असफलता एवं कमियों के कारणों पर अब इकाई के भाग में चर्चा करते हैं। भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों की कमजोरियों को निम्नलिखित माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है—

- श्रमिक आंदोलनों में श्रमिकों के सभी वर्गों के शामिल न होने से यह आंदोलन सिर्फ संगठित क्षेत्र के श्रमिकों तक सीमित रह गया था। क्योंकि भारत में असंगठित क्षेत्र के कामगारों की बड़ी संख्या इन आंदोलानों का हिस्सा नहीं बन पाई थी।
- अत्यधिक मात्रा में श्रमिक संघों के गठन ने श्रमिकों को भम्र की स्थिति में डाल दिया था। जिस कारण श्रमिक वर्गों के सम्मुख दुविधा उत्पन्न हो गई थी।

- श्रमिक संघ श्रमिकों की समस्याओं को नजरअंदाज कर अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे थे। इस कारण श्रमिकों की वास्तविक समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई थी।
- श्रमिक संघों में राजनैतिक पार्टियों का वर्चस्व स्थापित था। राजनैतिक पार्टियां सिर्फ अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए श्रमिकों का इस्तेमाल कर रही थीं। राजनैतिक पार्टियों के लिए श्रमिक सिर्फ वोट बैंक थे। श्रमिकों की वास्तविक परेशानियों से राजनैतिक पार्टियों का कोई लेना-देना नहीं था।
- जातिवाद एवं क्षेत्रवाद की भावना के प्रबल होने के कारण सभी श्रमिक इन आंदोलनों में शामिल नहीं हो पाये थे। जातिवाद एवं क्षेत्रवाद ने श्रमिकों को जोड़ने के बजाय तोड़ने का कार्य किया था। इससे श्रमिक अलग-अलग धड़ों में बँट गये थे।
- श्रमिकों के बीच आपसी वैमनस्य ने भी श्रमिक आंदोलनों को कमजोर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।
- संगठित क्षेत्र के श्रम संघों ने सामाजिक रूप से उत्पीड़ित समूहों में महिला श्रमिकों और अन्य श्रमिकों को अनदेखा किया था। इसके परिणामस्वरूप महिला श्रमिकों और अन्य श्रमिकों की परेशानियां ज्यों की त्यों बनी हुयी थीं।
- 1960 के दशक में आई आर्थिक मंदी ने श्रमिक आंदोलनों को कमजोर करने का कार्य किया था, क्योंकि महंगाई बहुत बढ़ गई थी। महंगाई के अनुपात में श्रमिकों का वेतन नहीं बढ़ा था।
- नई आर्थिक नीति, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण ने श्रमिक संघों की सौदेबाजी को कम कर दिया था।
- श्रमिकों से संबंधित कल्याणकारी नीतियों एवं श्रम कानूनों के आने से भी श्रमिक आंदोलनों की गति में कमी हुई थी।

7.11 सारांश

भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास देश की औद्योगिक प्रक्रिया के साथ-साथ राजनैतिक प्रक्रिया को भी दर्शाता है। प्रारम्भ में श्रमिक आंदोलन सिर्फ कपड़ा उद्योग तक ही सीमित था। धीरे-धीरे श्रमिक आंदोलन विविध उद्योगों तक फैल गया था। प्रारम्भ में औद्योगिक श्रमिक बल का एक महत्वपूर्ण भाग ग्रामीण समाज से था, जिन्हें अकाल और भुखमरी ने श्रमिक बनने की ओर बढ़ा दिया था। भारत में आधुनिक उद्योगों का प्रारम्भ 1850 से 1870 के बीच हुआ था। उद्योगों में श्रमिकों के कार्य की दशाऐं बड़ी दयनीय थी। इसके कारण श्रमिक आंदोलनों का जन्म हुआ। इस इकाई में हमने श्रमिक आंदोलन की अवधारणा, भारत में श्रमिक आंदोलन का विकास, श्रमिक आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में चर्चा की है। इस इकाई में उन कारणों पर भी चर्चा की गई है, जो श्रमिक आंदोलनों का मूल बने। भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों को उनके कालखण्ड के अनुसार समझाने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। भारत के प्रमुख श्रमिक संघों पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है। श्रमिक आंदोलनों की विशेषताओं एवं कमजोरियों पर भी चर्चा करने की कोशिश की गई है एवं अंत में शिक्षार्थियों के अभ्यासार्थ प्रश्नों का समावेश भी इस इकाई में किया गया है।

7.12 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. श्रमिक आंदोलन से आप क्या समझते हैं?
2. भारत में हुए श्रमिक आंदोलनों के क्या कारण थे?
3. औपनिवेशिक काल में हुए श्रमिक आंदोलनों पर प्रकाश डालिए।
4. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हुए श्रमिक आंदोलनों पर प्रकाश डालिए।
5. श्रमिक आंदोलन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. श्रमिक आंदोलनों की कमजोरियों पर प्रकाश डालिए।

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में श्रमिक आंदोलन के विकास की विवेचना कीजिए।
2. श्रमिक आंदोलन क्या है? उन कारणों की चर्चा कीजिए] जिन्होंने श्रमिक आंदोलनों को जन्म दिया।
3. श्रमिक आंदोलनों से श्रमिकों की स्थिति पर पड़े प्रभावों की विवेचना कीजिए।
4. श्रमिक आंदोलनों की कमजोरियों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

7.14 संदर्भ

1. *https://readerblogs.navbharattimes.indiatimes (2017) 'मजदूर आंदोलन का इतिहास'*
2. *https://www.indiaolddays.com (2019) 'मजदूर आंदोलन का इतिहास'*
3. *https://indiaculture.gov.in "Printersunion1905", Ministry of culture, Government of India*
4. *https://spiritofhr.wordpress.com, "history of trade union in India" pre-independence era,*
5. *https://bombayki.with.camp, "kamgar hitwardhak sabba", bombaywiki.*
6. *Giri. V.V., (1959) "Labour Problems In Indian Industries", published by asia publishing house.*
7. *Punekar, S.D., (1948), "Trade unionism in India" Published by New Book Company, Bombay*
8. *https://www.Frontier,weekly,com, "Rise and Fall of trade union movement" ashish sengupta*
9. *https://hi.m.wikipedia.org, "अहमदाबाद मिल हड़ताल, 1918"*
10. *https://in.m.wikipedia.org, "All India Trade Union Congress"*
11. *https://historyguruji.com, "भारत में मजदूर आंदोलन और श्रमिक संघों का विकास"*
12. *https://hi.m.wikipedia.org, "भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926"*
13. *https://en.m.wikipedia.org, "Royal commission of labour"*
14. *https://historyguruji.com "भारत के श्रमिक आंदोलन का इतिहास: ब्रिटिश काल से वर्तमान काल तक"*
15. *https://www.vivacepanorama.com, "भारत में ट्रेड यूनियनों का विकास"*

16. https://en.m.wikipedia.org, "Indian federation of Labour"

17. https://www.yourarticlelibary.com, "6 Phases of trade union movement in India"

18. झा, विश्वनाथ, 2012, औद्योगिक समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

2. गुप्ता, एलएम. एवं डी.डी., शर्मा, 2019, समाजशास्त्र, अध्याय 9, उद्योग एवं समाज, पब्लिकेशन्स साहित्य भवन, आगरा।

इकाई-8 सामूहिक सौदेबाजी: अर्थ, परिभाषा, विशेषताएं, एवं प्रकृति

(Collective Bargaining: Meaning, Definition, Characteristics and Nature)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 सामूहिक सौदेबाजी का प्रादुर्भाव

8.3 सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ

8.4 सामूहिक सौदेबाजी की परिभाषा

8.5 सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताएं

8.5.1 सामूहिक क्रिया

8.5.2 निरंतर चलने वाली प्रक्रिया

8.5.3 गतिशील प्रक्रिया

8.5.4 लचीली प्रक्रिया

8.5.5 हड़ताल एवं तालाबंदी के अधिकार की अनिवार्यता

8.5.6 सामूहिक सौदेबाजी एक कला

8.6 सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति

8.6.1 सामूहिक सौदेबाजी एक प्रक्रिया

8.6.2 एक द्विपक्षीय व्यवस्था

8.6.3 नियम-कानूनों पर आधारित व्यवस्था

8.6.4 दो पक्षों की आपसी सहमति पर आधारित व्यवस्था

8.7 सामूहिक सौदेबाजी की समस्याएं

8.8 सामूहिक सौदेबाजी के लाभ

8.9 सामूहिक सौदेबाजी के नुकसान

8.10 सारांश

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

8.12 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.14 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

8.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- सामूहिक सौदेबाजी की पृष्ठभूमि के बारे समझेंगे।
- सामूहिक सौदेबाजी के अर्थ को समझेंगे।
- सामूहिक सौदेबाजी की परिभाषा को समझेंगे।
- सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं को समझेंगे।
- सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति को समझेंगे।

8.1 प्रस्तावना

सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अतर्गत श्रमिकों के कार्य दशाओं के संबंध में श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों तथा नियोक्ताओं के बीच वार्ता एवं संवाद के आधार पर समझौता किया जाता है। यह एक प्रक्रिया भी है, जिसमें कर्मचारियों की छँटनी, निलंबन, मजदूरी में वृद्धि, मजदूरों की सुरक्षा तथा अन्य संवेदनशील मुद्दों पर कई चरणों में वार्ता के आधार पर अनुबंध किया जाता है।

8.2 सामूहिक सौदेबाजी का प्रादुर्भाव

औद्योगिक क्रांति ने जहाँ एक तरफ उत्पादन में एकाएक वृद्धि की, वहीं दूसरी तरफ इसने कई औद्योगिक नगरों को भी जन्म दिया। इसके कारण यूरोप में कई नए औद्योगिक नगरों जैसे- मैनचेस्टर, लीवरपुल, लंकाशायर, पिट्सबर्ग, बर्मिघम आदि का विकास हुआ। इन शहरों में रोजगार के लिए गाँवों से लोगों का पलायन शुरू हुआ, जिसके कारण यूरोप की सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संबंधों में भी बदलाव हुआ। औद्योगिक क्रांति से पहले जहाँ उत्पादन उपयोग के लिए होता था, वहीं औद्योगिक क्रांति के बाद उत्पादन ज्यादा से ज्यादा लाभ के लिए किया जाने लगा। इस औद्योगिक क्रांति ने एक औद्योगिक समाज को जन्म दिया। औद्योगिक समाज एक ऐसा समाज है, जो बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए नई-नई तकनीक एवं प्रौद्योगिकी तथा मशीन का उपयोग करता है तथा श्रम विभाजन के लिए उच्च क्षमता वाली बड़ी आबादी का समर्थन करता है। औद्योगिक क्रांति से पहले उत्पादन परम्परागत तरीके से होता था और इसे एक पारिवारिक उत्पादन की इकाई के रूप में जाना जाता था। यह उत्पादन लघु तथा कुटीर उद्योग के रूप में था, जहाँ बहुत कम लोगों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन कर दिया था। उत्पादन की इकाइयाँ भी अलग-अलग होती थीं, जहाँ उनमें आपसी संबंध भी कम थे। इसके कारण उत्पादन करने वाले लोगों के बीच भी संबध नहीं होते थे। लेकिन औद्योगिक क्रांति ने उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों को तथा उद्योगों को भी एक स्थान पर लाकर खड़ा किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अलग-अलग उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक भी एक स्थान विशेष में रहने लगे। इससे उनके बीच

चेतना का संचार हुआ। जहाँ एक तरफ पूंजीपतियों के ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के लिए श्रमिकों का शोषण करने का प्रयास किया, वहीं इस शोषण के कारण एक ही उद्योग में ज्यादा से ज्यादा संख्या में कार्य करने के कारण श्रमिकों के आपसी संबंध (समान दशा के कारण) बने। सभी श्रमिकों की समस्याएं एकसमान होने के कारण तथा उनमें सामूहिक चेतना का विकास हुआ। सामूहिक चेतना ने ही सामूहिक संगठन का जन्म दिया। इन संगठनों के माध्यम से वे अपनी मांगों को पूंजीपतियों से या नियोक्ता वर्ग से मांग उठाने लगे, तो श्रमिकों के सामूहिक संगठन ने ही श्रम संघ को जन्म दिया। श्रमिक इस श्रम संघ के माध्यम से अपनी मांगों को मनवाने लगे। श्रमिकों के आपसी हित एवं पूंजीपतियों के हित के मध्य टकराव से ही सामूहिक सौदेबाजी का जन्म (प्रादुर्भाव) हुआ।

औद्योगिक अशांति एवं औद्योगिक विवाद से जुड़े तनावपूर्ण माहौल में इस सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से औद्योगिक संबंधों में अर्थात पूंजीपति एवं श्रमिकों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। वर्तमान के औद्योगिक लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में भी सामूहिक सौदेबाजी का विशेष महत्व है। श्रमिक संगठनों ने सामूहिक सौदेबाजी के लिए एक नई उर्जा को उत्पन्न किया है। अत: पूँजीपतियों तथा नियोक्ता तथा कामगारों के बीच सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर लोकतांत्रिक मूल्यों एवं प्रक्रियाओं के माध्यम से दोनों के बीच एक सम्मानजनक एवं सदभावनापूर्ण माहौल का निर्माण किया जा सकता है।

किसी उद्योग में/संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों की किसी समस्या के निवारण हेतु नियोक्ता वर्ग एवं श्रमिक संगठन के बीच पारस्परिक विचार विमर्श के बाद जो समझौता किया जाता है उसे सामूहिक सौदेबाजी कहते हैं। जब कोई संस्थान किसी औद्योगिक संस्थान या अन्य किसी संस्थान के कर्मचारियों एवं प्रबंधन वर्ग के बीच होने वाले किसी विवाद या समस्या का समाधान निकालना जरूरी हो, तो उस स्थिति में सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता होती है, ताकि उस संस्थान में शांति स्थापित हो सके। एंथनी गिडेन्स के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सामूहिक उत्पादन की प्रक्रिया तीव्र हुई। यहीं से श्रमिक संघवाद का तीव्र दौर आरंभ हुआ। इसके कारण प्रबंधन और कामगारों के बीच सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को एक स्पष्ट आधार प्राप्त हुआ। गिडेंस के अनुसार, सामूहिक सौदेबाजी का तात्पर्य

औपचारिक समझौते से है। यह औपचारिक समझौता नियोक्ता तथा कामगारों के अधिकृत प्रतिनिधियों के बीच होता है। इस समझौते के अंर्तगत कर्मचारियों के हितों तथा उनके सुरक्षा के साधनों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

इस तरह, सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अतर्गत श्रमिकों की कार्य दशाओं के संबंध में श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों तथा नियोक्ताओं के बीच वार्ता एवं संवाद के आधार पर समझौता किया जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया भी है, जिसमें कर्मचारियों की छँटनी, निलंबन, मजदूरी में वृद्धि, मजदूरों की सुरक्षा तथा अन्य संवेदनशील मुद्दों पर कई चरणों में वार्ता के आधार पर अनुबंध किया जाता है। सामूहिक समझौता एक पद्धति भी है, जिसमें निरंतरता पाई जाती है। यह गतिशील प्रकृति की होती है, जिसमें वार्ता के दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं और यह आवश्यकता के अनुरूप लगातार चलने वाली प्रक्रिया भी है। इसके अंर्तगत औद्योगिक विवादों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान किया जाता है, लेकिन सौदेबाजी के अनुरूप नियोक्ताओं के द्वारा समझौते का अनुपालन नहीं करने पर श्रमिक हड़ताल, सत्याग्रह तथा अन्य आंदोलनों का उपयोग कर सकता है। चूँकि सामूहिक सौदेबाजी एक प्रक्रिया है अतः इसमें दो या दो से अधिक पक्ष जुड़े होते हैं। सामान्यत: एक पक्ष नियोक्ता तथा दूसरा पक्ष श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों का होता है। इन दोनों पक्षों के बीच अंतःक्रिया होती है। यह अंतः क्रिया वार्ता तथा संवाद पर आधारित होती है। समझौते के लिए की जाने वाली वार्ता एवं संवाद कई चरणों में हो सकता है।

सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को निम्न चरणों में व्यक्त किया जा सकता है-

- वार्ताकारों का चयन
- सौदेबाजी की व्यूह रचना
- सौदेबाजी की युक्तियां
- अनुबंध
- अनुबंध क्रियान्वयन

सामूहिक सौदेबाजी के लिए एक या एक से अधिक उद्देश्यों का होना अनिवार्य है। साथ ही इसके लिए मुद्दों पर आधारित एजेंडा का निर्धारण किया जाता है। सामूहिक सौदेबाजी की विषय वस्तु के अंतर्गत वेतन/ मजदूरी की दर या यात्रा का निर्धारण, वेतन सहित अवकाश, बीमारी अवकाश, पदोन्नति के आधार, जबरन छुट्टी तथा छँटनी की दशाएं निर्धारित करना, दुघर्टना पर क्षतिपूर्ति, शिकायत निवारण तथा कार्य दशाओं से संबंधित अन्य विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु प्रयासों को सम्मिलित किया जाता है।

1993 के आर्थिक सुधारों के दौरान वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण ने आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को बदल दिया। इसके कारण औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन की शक्ति, उत्पाद की प्रक्रिया, उत्पादन के स्वामित्व एवं व्यापार तथा प्रबंधन के क्षेत्र में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ, जिससे विकसित तथा विकासशील देशों में सामूहिक सौदेबाजी की परम्परागत प्रकियाओं एवं स्थापित नियमों पर प्रश्न उठने लगे। वर्तमान समय अर्थात् 21वीं शताब्दी में सूचना-क्रांति, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, कार्य संस्कृति तथा उत्पादन प्रक्रिया के इस नये परिवेश में श्रम कानूनों एवं सामूहिक सौदेबाजी की परम्परागत नियमों में बदलाव बहुत जरूरी हो गया है। 21वीं शताब्दी में सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था में पुनर्मूल्यांकन जरूरी है। इस संबंध में पारसंस ने अपने एक शोध निबंध "सम रिफ्लेक्शन ऑन दी इंस्ट्रीट्यूशनल फ्रेमवर्क ऑफ इकोनोमिक डेवलपमेंट" में स्पष्ट किया है कि जिन परिस्थितियों में सामाजिक संरचना में कोई महत्वपूर्ण परिघटना एक बार विकसित हो चुकी है, उसी परिघटना के दोबारा विकसित होने के लिए वे ही परिस्थितियां सर्वाधिक अनुकूल होंगी। अर्थात औद्योगिक अर्थतंत्र के मामले में संभवत: यह सत्य नहीं है।" अर्नेस्ट गेलना ने भी अपनी पुस्तक थॉट एंड चेंज (लंदन;1964) में औद्योगिक संबंधों के विविध परिप्रेक्ष्यों में व्यापक परिवर्तन के संकेतों को रेखांकित किया है। अत: यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण ने औद्योगिक संबंधों को नया आयाम दिया है।

बोध प्रश्न-1

सामूहिक सौदेबाजी में कौन-कौन भाग ले सकता है? संक्षिप्त में लिखिए।

.....

.....

8.3 सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ

सामूहिक सौदेबाजी शब्द का सर्वप्रथम विश्लेषण सिडनी और बीट्रिस वेब ने अपनी पुस्तक 'इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी' में की है। यह अवधारणा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के अध्यक्ष सैमुअल गोम्पर्स ने सामूहिक सौदेबाजी को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार नियोजन की शर्तें एवं दशाओं के निर्धारण में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। विश्व के अनेक देशों में औद्योगिकीकरण के तीव्र विकास के कारण श्रमिक संघों की शक्ति में अभिवृद्धि हुई। कई श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता मिली, जिसके कारण श्रमिक संघों के द्वारा श्रमिकों के हितों की रक्षा तथा विकास के लिए सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया के तेज किया गया।

सामूहिक सौदेबाजी दो शब्दों से मिलकर बना है, पहला सामूहिक और दूसरा सौदेबाजी। सामूहिक शब्द का तात्पर्य किन्हीं सम्बन्धित व्यक्तियों के विशेष समूह से है। यहां इनका आशय श्रमिक एवं नियोक्ता वर्ग से है। सौदेबाजी से तात्पर्य, दो पक्षों द्वारा एक दूसरे के साथ मोल-भाव करने की प्रक्रिया से है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी वह प्रक्रिया है, जिसमें श्रमिक एवं नियोक्ता सेवा की शर्तों एवं कार्य की दशाओं के संबंध में पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा कोई निश्चित अनुबंध या समझौता करते हैं। किसी समस्या के समाधान के लिए नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य होने वाली वार्तालाप की प्रक्रिया को सामूहिक सौदेबाजी कहा जाता है। यह एक ऐसा माध्यम है, जिसके दोनों पक्ष अच्छे कर्मचारी संबंधों के निर्माण हेतु समझौता करते हैं। इसके माध्यम से श्रमिकों के हितों में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है। इमाइल दुर्खीम के अनुसार सामूहिक सौदेबाजी एक सामाजिक तथ्य है। इसके अंतर्गत औद्योगिक विवाद, टकराव एवं

औद्योगिक शांति से जुड़े प्रश्नों पर नियोजन तथा श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों के बीच वार्ता तथा संवाद का दौर चलता है। यह कई चरणों में पूरा हो सकता है। सौदेबाजी के आधार पर सम्मानजनक समझौता तथा अनुबंध को स्वीकृत किया जाता है। यह लगातार चलने वाली एक प्रक्रिया है।

बोध प्रश्न- 2

'इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी' के लेखक का नाम बताइये।

.....

बोध प्रश्न- 3

'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के अध्यक्ष कौन थे।

.....

8.4 सामूहिक सौदेबाजी की परिभाषा

सामूहिक सौदेबाजी को विभिन्न विद्वानों, संगठनों तथा विशेषज्ञों ने अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

एडविन फ्लिप्पो के अनुसार-सामूहिक सौदेबाजी से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत श्रम संगठनों के प्रतिनिधि तथा व्यावसायिक संगठन प्रतिनिधि मिलते हैं तथा एक समझौता या अनुबंध करने का प्रयास करते हैं जो कर्मचारियों एवं सेवायोजक संघ के संबंधों की प्रकृति का निर्धारण करता है।

आर. एफ. होक्सी ने सामूहिक सौदेबाजी को परिभाषित करते हुए निम्न बिन्दुओं को स्पष्ट किया है-

- सामूहिक सौदेबाजी में दो पक्ष होते हैं, एक पक्ष कर्मचारियों के संगठित निकाय का तथा दूसरा पक्ष नियोक्ताओं का।
- सामूहिक सौदेबाजी एक तकनीक है, जिसके आधार पर नियोजन की शर्तें सुनिश्चित की जाती हैं।
- सामूहिक सौदेबाजी एक समझौता है।
- यह समझौता संबंधित पक्षों के बीच होता है। इसमें श्रमिक संघ के प्रतिनिधि एवं नियोक्ता के प्रतिनिधि नियोजन की शर्तों के संबंध में परस्पर सहमति के आधार निर्णय करते हैं तथा समझौता करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने भी सामूहिक सौदेबाजी को परिभाषित करते हुए निम्न बिंदुओं को स्पष्ट किया है-

- सामूहिक सौदेबाजी विचार-विमर्श तथा वार्ता पर आधारित एक प्रक्रिया है।
- इसके अंतर्गत नियोक्ता तथा श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों के बीच वार्ता तथा विचार-विमर्श होता है।
- सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर परस्पर सहमति के द्वारा समझौता किया जाता है।
- समझौता नियोजन संबंधों में अधिकारों एवं दायित्वों की व्याख्या से संबन्धित होता है।
- यह संहिता के रूप में कार्य करती है।
- समझौता नियोजन की दशाओं से संबंधित होता है। इसके अन्तर्गत नियोजन की दशाओं को विस्तार दिया जाता है तथा उसे सुनिश्चित किया जाता है।
- सामूहिक सौदेबाजी व्यक्ति विशेष की समस्याओं से संबंधित नहीं है। व्यक्तिगत कर्मचारी से संबंधित विवाद का इसमें कोई महत्व नहीं होता है। यह कर्मचारियों के समूहों के कार्य की दशाओं से संबंधित है।

1960 में (ILO) मैनुअल के अनुसार, सामूहिक सौदेबाजी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है- "एक समझौते पर पहुँचने की दृष्टि से एक नियोक्ता, कर्मचारियों के एक समूह या एक या एक से अधिक नियोक्ता संगठन के बीच काम करने की स्थिति और रोजगार की शर्तों के बारे में बातचीत।"

यह भी दावा किया गया है कि "समझौतों की शर्तें एक दूसरे के साथ अपने रोजगार संबंधों में प्रत्येक पक्ष के अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित करने वाले एक कोड के रूप में कार्य करती हैं। यदि कर्मचारियों की विस्तृत शर्तों की एक बड़ी संख्या को ठीक करती है और इसकी वैधता के दौरान कोई भी मामला इससे संबंधित नहीं हैं। आंतरिक परिस्थितियाँ विवाद परामर्श और व्यक्तिगत श्रमिकों के लिए आधार देती है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें नियोक्ता एवं श्रमिक संघ के बीच श्रमिकों के हितों, उनकी कार्य दशाओं तथा उनकी नियुक्ति, पदोन्नत्ति, वेतन वृद्धि तथा उनसे जुड़े सामाजिक, आर्थिक पहलुओं, स्वास्थ्य के संबंध में एक समझौता है। यह समझौता दोनों के पारस्परिक संबंधों को बनाए रखता है एवं औद्योगिक शांति स्थापित करता है।

बीच के अनुसार, "सामूहिक सौदेबाजी का संबंध कर्मचारियों और नियोक्ताओं (या उनके प्रतिनिधियों) को रिपोर्ट करने वाले यूनियनों के बीच संबंधों से है।

बीट्रिस वेब के अनुसार: "एक आर्थिक संस्था के रूप में सामूहिक सौदेबाजी- जहाँ भविष्य के व्यापार तय किए जाते हैं- में उद्योग और श्रमिकों का साथ-साथ विकास शामिल होता है।"

करोल लेदर कर्मचारी संगठन बनाम लिबर्टी फुटवियर कंपनी के प्रसिद्ध मामले में,भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसी तकनीक है, जहाँ रोजगार और मजदूरी से संबंधित समस्याओं को, एक अनुबंध या समझौते द्वारा सामंजस्यपूर्ण ढंग से हल किया जाता है, जबरदस्ती से नहीं।"

बोध प्रश्न- 4

'सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर परस्पर सहमति के द्वारा समझौता किया जाता है।' यह परिभाषा किसने दी है।

.....

8.5 सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताएं

सामूहिक सौदेबाजी की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

8.5.1 सामूहिक क्रिया

यह एक सामूहिक क्रिया है, जिसमें कामगारों के प्रतिनिधि नियोक्ता या उसके प्रतिनिधियों के साथ बैठकर नियोजन की शर्तों एवं काम की दशाओं के बारे में मिलकर संयुक्त रूप से निर्णय लेते हैं।

8.5.2 निरंतर चलने वाली प्रक्रिया

यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत नियोक्ता एवं कामगारों के बीच नियोजन संबंध की निरंतरता चलती रहती है। इसमें नियोजनकर्ता तथा कामगारों के बीच नियोजन की शर्तें एवं काम की दशाओं के बारे में सौदेबाजी होती रहती है। एक सौदेबाजी के बाद दूसरी एवं दूसरी के बाद तीसरी सौदेबाजी होती रहती है और यह क्रम निरंतर चलता रहता है।

8.5.3 गतिशील प्रक्रिया

सामूहिक सौदेबाजी के विभिन्न क्षेत्रों में समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। समय के साथ इसके स्वरूप, स्तर, ढंग और सामूहिक सौदेबाजी के विषय आदि भी बदलते रहते हैं।

8.5.4 लचीली प्रक्रिया

सामूहिक सौदेबाजी एक लचीली प्रक्रिया है, क्योंकि इसमें नियोक्ता तथा कामगारों के बीच नियोजन की शर्तों एवं दशाओं में घटाने-बढ़ाने एवं उसके रवैये में परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। जैसे-जैसे सौदेबाजी आगे बढ़ती है,

वैसे-वैसे नियोक्ता एवं कामगार इसे अपनी स्थिति के अनुसार अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं। दोनों के कठोर रूख से सौदेबाजी संभव नहीं होती। दोनों पक्षों को लचीला रूप अपनाना पड़ता है।

8.5.5 हड़ताल एवं तालाबंदी के अधिकार की अनिवार्यता

सामूहिक सौदेबाजी में हड़ताल और तालाबंदी के अधिकार का होना आवश्यक है। कामगारों द्वारा हड़ताल किए जाने के भय से ही नियोक्ता वार्ता में तत्परता दिखाते हैं। इसी प्रकार नियोक्ता द्वारा तालाबंदी के भय से श्रमिकों के प्रतिनिधि समझौता करना जरूरी समझने लगते हैं।

8.5.6 सामूहिक सौदेबाजी एक कला

सामूहिक सौदेबाजी एक कला भी है। इसमें सौदेबाजी करने वाले व्यक्तियों की दक्षता तथा अनुभव का बहुत बड़ी भूमिका होती है। कुछ लोग इस कार्य में बहुत निपुण होते हैं, जबकि यदि निपुण लोग नहीं हो तो अनुकूल परिस्थितियों में भी वे सामूहिक सौदेबाजी नहीं कर पाते।

8.6 सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति

8.6.1 सामूहिक सौदेबाजी एक प्रक्रिया

सामूहिक सौदेबाजी में श्रमिक संघ एवं नियोक्ता के बीच आपसी हितों के लेकर वार्ता होती रहती है। श्रमिक संघ अपने श्रमिकों के लिए ज्यादा सुविधाएं नियोक्ता वर्ग से लेने के लिए प्रयासरत होते हैं, वहीं नियोक्ता वर्ग का प्रयास होता है कि श्रमिक वर्ग से ज्यादा काम कैसे लिया जायs और अपना मुनाफा कैसे बढ़ाया जाय। इसके लिए दोनों पक्ष गिले-शिकवे प्रस्तुत करते हैं और खुलकर अपनी-अपनी बातों को रखते हैं। इस प्रकार श्रमिक संघ एवं नियोक्ता के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया और अंत:क्रिया होती हे। इस अंत-क्रिया के दौरान इनमें सहयोग, संघर्ष, अनुकूलन, समायोजन, एकीकरण जैसी सामाजिक प्रक्रिया इन दोनों पक्षों के बीच विकसित होती है। इस प्रकार यह एक सामाजिक प्रक्रिया है।

8.6.2 एक द्विपक्षीय व्यवस्था

सामूहिक सौदेबाजी में दो पक्ष होते हैं। एक नियोक्ता पक्ष एवं दूसरा श्रमिक संघ। चूंकि, प्रथम पक्ष श्रमिकों को रोजगार देता है, उसका उद्योग पर नियंत्रण होता है या यूं भी कह सकते हैं कि वह उद्योग का मालिक होता है। इसलिए वह नियोक्ता से संबंधित सेवा शर्तों को स्वयं बनाता है एवं श्रमिकों को उन सेवा शर्तों को मानने के लिए बाध्य करता है, ताकि ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाया जा सके। वहीं, दूसरा वर्ग जो कामगार वर्ग या श्रमिक वर्ग होता है, वह अपनी जीविका के लिए काम करता है। चूंकि, प्रारंभ में इस वर्ग को अपने जीवन निर्वाह के लिए काम चाहिए होता है, इसलिए यह नियोक्ता वर्ग के नियम शर्तों को मानने के लिए बाध्य हो जाता है। लेकिन धीरे-धीरे इनमें चेतना विकसित होती है और ये संगठित होकर अपने हितों की पूर्ति के लिए सामूहिक सौदेबाजी करने लगते हैं। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी में स्पष्ट रूप से दो पक्ष आमने-सामने एक मंच पर बैठकर वार्ता करते हैं।

8.6.3 नियम-कानूनों पर आधारित व्यवस्था

सामूहिक सौदेबाजी का आधार श्रमिक वर्ग तथा नियोक्ता वर्ग के बीच समझौता है। यह समझौता कुछ शर्तों के आधार पर होता है। यह समझौता कुछ संवैधानिक प्रावधानों तथा श्रम कानूनों के दायरे में किया जाता है। समझौता तथा अनुबंध को नियम कानूनों तथा संवैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखकर ही अंतिम रूप दिया जाता है।

8.6.4 दो पक्षों में आपसी सहमति पर आधारित व्यवस्था

यह दोनों पक्षों में आपसी सहमति पर आधारित है। सामूहिक समझौतों में श्रमिक संघ एवं नियोक्ता दोनों पक्ष अपने-अपने हितों को लेकर एक-दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं। इन आपसी हितों के कारण ही इनका आपस में विवाद होता है। इन विवादों का निपटारा ये दोनों पक्ष आपसी सहमति से करते हैं।

8.7 सामूहिक सौदेबाजी की समस्याएं

नियोक्ता और यूनियन दोनों का मुख्य एजेंडा मामले को मनमाने ढंग से सुलझाने के बजाय, एक सामान्य न्यूनतम समझौते पर पहुँचकर आपस में मध्यस्थता प्रक्रिया के माध्यम से सुलझाना है। लेकिन सामूहिक सौदेबाजी बड़े संयंत्रों और कारखानों तक ही सीमित होती है। छोटे कारखाने और संगठन इस नियम के अंतर्गत नहीं आते हैं।

भारत में कानून मध्यस्थता का आसान रास्ता देते हैं। औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत, विवाद से संबंधित पक्ष मामले को मध्यस्थता के लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण या श्रम न्यायालय में भेजने के लिए सरकार से संपर्क कर सकते हैं।

8.8 सामूहिक सौदेबाजी के लाभ

● शायद इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि, औपचारिक समझौते पर पहुँचने से, दोनों पक्षों को पता चलता है कि एक-दूसरे से क्या अपेक्षा करनी है और वे अपने अधिकारों के बारे में जानते हैं। इससे बाद में होने वाले झगड़ों की संख्या में कमी आ सकती है। यह परिचालन को और अधिक कुशल भी बना सकता है।

● जो कर्मचारी सामूहिक सौदेबाजी में प्रवेश करते हैं, वे जानते हैं कि उन्हें नियोक्ता के प्रतिशोध या नौकरी से निकाले जाने से कुछ हद तक सुरक्षा प्राप्त है। यदि नियोक्ता केवल कुछ मुट्ठी भर व्यक्तियों के साथ काम कर रहा है, तो वह उन्हें खोने का जोखिम उठाने में सक्षम हो सकता है। हालाँकि, जब वह पूरे कार्यबल के साथ काम कर रहा होता है, तो परिचालन जोखिम में होता है और तब वह आसानी से अपने कर्मचारियों की बातों को अनसुना नहीं कर सकता है।

● भले ही नियोक्ताओं को थोड़ा पीछे हटने की आवश्यकता हो, लेकिन यह रणनीति उन्हें एक समय में केवल कुछ ही लोगों के साथ काम करने में सक्षम होने का लाभ देती है। यह बड़ी कंपनियों में बहुत व्यावहारिक है जहाँ नियोक्ता के पेरोल पर दर्जनों, सैकड़ों या हजारों कर्मचारी हो सकते हैं। केवल कुछ प्रतिनिधियों के साथ काम करने से मौजूदा मुद्दे अधिक व्यक्तिगत लग सकते हैं।

● इन वार्ताओं के माध्यम से पहुँचने वाले समझौतों में आमतौर पर कम से कम कुछ वर्षों की अवधि शामिल होती है। इसलिए लोगों को अपने कार्य वातावरण और नीतियों में कुछ स्थिरता रखनी होती है। इससे आम तौर पर कंपनी के वित्त विभाग को लाभ होता है, क्योंकि वह जानता है कि बजट से संबंधित कम चीजें बदल सकती हैं।

● व्यापक पैमाने पर इस पद्धति का अच्छी तरह से उपयोग करने से व्यवसाय करने का अधिक नैतिक तरीका सामने आ सकता है। उदाहरण के लिए, यह निष्पक्षता और समानता जैसे विचारों को बढ़ावा देता है। ये अवधारणाएँ किसी व्यक्ति के जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी फैल सकती हैं और दूसरों के प्रति बेहतर सामान्य व्यवहार को प्रेरित कर सकती हैं।

8.9 सामूहिक सौदेबाजी के नुकसान

- सामूहिक सौदेबाजी प्रणाली का उपयोग करने में एक बड़ा दोष यह है कि भले ही परिणाम जो कुछ भी हो, उसमें हर किसी को अपनी बात कहने का अधिकार होता है, अंततः बहुमत शासन करता है, और केवल कुछ ही लोग यह निर्धारित करते हैं कि क्या होगा। इसका मतलब यह है कि बड़ी संख्या में लोग, विशेष रूप से सामान्य कार्यबल में प्रभावित हो सकते हैं और महसूस कर सकते हैं कि उनकी राय वास्तव में मायने नहीं रखती है। सबसे खराब स्थिति में यह समूह में गंभीर विभाजन और शत्रुता का कारण बन सकता है।

- सामूहिक सौदेबाजी के लिए हमेशा कम से कम दो पक्षों की आवश्यकता होती है। भले ही सिस्टम को दोनों पक्षों को एक साथ खींचने की उम्मीद है, किसी समझौते पर पहुँचने की कोशिश की प्रक्रिया के दौरान, लोग हम-बनाम-वे की मानसिकता अपना सकते हैं। जब बातचीत समाप्त हो जाती है, तो एक-दूसरे को देखने के इस तरीके को नज़रअंदाज़ करना मुश्किल हो सकता है और कंपनी में एकता खराब हो सकती है।

- सामूहिक सौदेबाजी समय और धन दोनों के लिहाज से महंगी भी हो सकती है। प्रतिनिधियों को हर पहलु पर दो बार चर्चा करनी होती है- एक बार छोटी प्रतिनिधि बैठकों में, और दूसरी बार जब वे बड़े समूह को जानकारी देते हैं। बाहरी मध्यस्थों या अन्य पेशेवरों को जल्दी भुगतान करने से काफी बड़ा बिल बन सकता है, और जब किसी और को लाया जाता है, तो चीजें अक्सर धीमी और अधिक जटिल हो जाती हैं क्योंकि इसमें और भी अधिक लोग शामिल होते हैं।

- कुछ लोगों का कहना है कि इन तकनीकों में नियोक्ताओं की शक्ति को प्रतिबंधित करने की प्रवृत्ति होती है। कर्मचारी अक्सर इसे एक अच्छी व्यवस्था के रूप में देखते हैं, लेकिन कंपनी के दृष्टिकोण से यह बुनियादी प्रक्रियाओं को भी कठिन बना सकता है। उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत श्रमिकों से निपटना एक चुनौती बन सकता है।

- सिस्टम का लक्ष्य हमेशा एक सहयोगात्मक समझौते पर पहुँचना होता है, लेकिन कभी-कभी तनाव बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप, एक या दोनों पक्षों को यह महसूस हो सकता है कि उनके पास दूसरे पक्ष को हार मानने के लिए मजबूर करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। कर्मचारी हड़ताल पर जाकर ऐसा कर सकते हैं, जिससे परिचालन पर असर पड़ेगा और मुनाफे में कटौती होगी। दूसरी ओर, औद्योगिक प्रबंधन तालाबंदी करके ऐसा कर सकते हैं, जो श्रमिक संघों के सदस्यों को अपना काम करने और भुगतान प्राप्त करने से रोकता है, जिससे उनकी आय और जीवन की समग्र गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

- अंततः, यूनियन का बकाया कभी-कभी एक मुद्दा होता है। वे किसी व्यक्ति को मिलने वाले, टेक होम सेलरी यानी वेतन की मात्रा को कम कर देते हैं, इसके लिए रकम सीधे वेतन से काट ली जाती है। जब किसी कंपनी में चीजें अच्छी होती हैं और लोगों को ऐसा नहीं लगता कि उन्हें बकाया भुगतान से कुछ भी मिल रहा है, तो वे आमतौर पर दरों को लेकर नाखुश हो जाते हैं।

8.10 सारांश

सामूहिक सौदेबाजी नियोजकों तथा कामगारों में सुलह, सद्भावना एवं सामंजस्य की तकनीक का कार्य करती है। लोकतंत्र के इस दौर में अब वह दिन लद गये, जब कामगार नियोजकों के तानाशाही फरमान एवं शोषणकारी प्रवृत्तियों के तले दबे रहते थे। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि सरकार तथा न्यायालयों द्वारा भी सामूहिक सौदेबाजी के फैसलों को प्रमाणिक अनुबन्ध के रूप में आज स्वीकार किया जाता है। इसका प्रमाण यह भी है कि, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने स्पष्ट किया है कि सामूहिक सौदेबाजी ने कामगारों को जाग्रत, सशक्त, उर्जावान बनाने का कार्य किया है। आधुनिकता के इस दौर में सामूहिक सौदेबाजी ने एक नई औद्योगिक संस्कृति को विकसित किया है। यह न सिर्फ कामगारों के लिए महत्वपूर्ण है, वरन् यह प्रबंधकों के लिए भी लाभदायक है।

इस इकाई में आपने सामूहिक सौदेबाजी की पृष्ठभूमि के विषय में जाना। यह भी समझा कि किस प्रकार सामूहिक सादेबाजी का प्रादुर्भाव हुआ। देखा जाये तो सामूहिक सौदेबाजी औद्योगिक क्रांति परिणाम है। सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में वार्ताकारों का चयन, सौदेबाजी की व्यूह रचना, सौदेबाजी की युक्तियां, सामूहिक सौदेबाजी में अनुबंध एवं अनुबंध के क्रियान्वयन के विषय में विस्तार से इस इकाई में चर्चा की गई है। सामूहिक सौदेबाजी के अर्थ एवं परिभाषाओं की भी जानकारी इस इकाई में दी गई है। सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं, लाभ एवं नुकसानों पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है, ताकि विद्यार्थी आसानी से सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं को समझकर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकें।

सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया विभिन्न चरणों पर आधारित होती है। साधारणत: सामूहिक सौदेबाजी के साथ नियोक्ताओं के प्रतिनिधि जुड़े होते हैं। परन्तु जटिल परिस्थितियों में, सामूहिक सौदेबाजी में एक तीसरे पक्ष की भागेदारी का अनुभव किया जा सकता है। इन सब मुद्दों एवं सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियाओं को इस इकाई में विद्यार्थियों की सहायता के लिए प्रस्तुत किया गया है। अंत में विद्यार्थियों के ज्ञान की परीक्षा हेतु लघु उत्तरीय एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का समावेश इस इकाई में किया गया है।

8.11 पारिभाषिक शब्दावली

सामूहिक सौदेबाजी- सामूहिक सौदेबाजी दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला सामूहिक और दूसरा सौदेबाजी। सामूहिक शब्द का तात्पर्य किन्हीं सम्बन्धित व्यक्तियों के विशेष समूह से होता है। सामूहिक सौदेबाजी में इनका आशय श्रमिक एवं नियोक्ता वर्ग से है।

द्विपक्षीय व्यवस्था- सामूहिक सौदेबाजी में दो पक्ष होते हैं। एक नियोक्ता पक्ष एवं दूसरा श्रमिक संघ।

8.12 लघु उत्तरीय प्रश्नावली

1. सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियाओं को स्पष्ट कीजिए।
4. सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
5. सामूहिक सौदेबाजी के क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामूहिक सौदेबाजी क्या है? सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
2. सामूहिक सौदेबाजी की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं के बारे में बताइये।
3. सामूहिक सौदेबाजी की परिभाषा दीजिए तथा सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियाओं को स्पष्ट कीजिए।
4. सामूहिक सौदेबाजी की प्रकृति पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
5. सामूहिक सौदेबाजी के क्षेत्र के विषय में एक निबन्ध लिखिए।

8.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध-1 अधीक्षकों, प्रबंधकों और नियोक्ता के नामांकन के माध्यम से नियोजित व्यक्तियों को छोड़कर सभी कर्मचारियों को सामूहिक सौदेबाजी और किसी अन्य संघ की वैध गतिविधियों से संबंधित मामलों में भाग लेने का अधिकार है।

बोध-2 सिडनी और बीट्रिस वेब

बोध-3 सैमुअल गोम्पर्स

बोध-4 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO)

8.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *विश्वनाथ, झा, औद्योगिक समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर*
2. *उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर*
3. *J.H., Richardson, An Introduction to the Study of Industrial relation, encyclopaedia of Social Sciences.*
4. *https://en.wikipedia.org/wiki/Industrial_Democracy*
5. *https://www.economicsdiscussion.net/collective-bargaining/collective-bargaining-definition-types-features-and-importance/31375*
6. *https://www.toppr.com/guides/legal-aptitude/labour-laws/collective-bargaining/*
7. *S.N., Dhyani, Trade Union and the Right to Strike, S. Chandra - Co. (Pvt.) Ltd., New dehli*
8. *Harold Stewart, Kirkaldy, The Spirit of Industrial Relation, Oxford University Press, 1947*
9. *पी.आर. एन. सिन्हा एवं इन्दुबाला, श्रम और समाजशास्त्र, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना*
10. *सिडनी और बीट्रिस वेब, इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी, 1897, न्यूयार्क*

इकाई-9 सामूहिक सौदेबाजी: आवश्यकता एवं महत्व
(Collective bargaining: Needs & Significance)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सामूहिक सौदेबाजी के आधार

9.3 सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता

9.4 सामूहिक सौदेबाजी का महत्व

9.5 सारांश

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

9.8 निबंधात्मक प्रश्न

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे कि-

1. सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता को समझ सकें

2. सामूहिक सौदेबाजी के आधार क्या हैं, यह जानें और वर्णन कर सकें
3. सामूहिक सौदेबाजी के महत्व को समझ सकें और स्पष्ट कर सकें
4. सामूहिक सौदेबाजी से श्रमिकों और नियोक्ता को होने वाले लाभों को जान सकें

9.1 प्रस्तावना

सामूहिक सौदेबाजी वर्तमान समय के औद्योगिक एवं आधुनिक समाज में अति आवश्यक है। इसके माध्यम से औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों में काम करने वाले लोगों को सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा मिल जाती है, बल्कि उनको भविष्य में होने वाली आकस्मिक दुर्घटनाओं से भी सुरक्षा मिलती है। इस व्यवस्था द्वारा नियोक्ता एवं कामगार, दोनों ही चिंतामुक्त होकर अपने-अपने कार्य करते हैं एवं भविष्य में होने वाले लाभ-हानि से पहले ही परिचित होते हैं। इस प्रकार अचानक कोई भी समस्या आती है, तो पहले ही वे तैयार होते हैं। उन्हें पता होता है कि हमें नियोक्ता से क्या लाभ लेना है और नियोक्ता को भी पता होता है कि कामगार हमारे लिए क्या कार्य करेगा एवं कामगार को क्या सुविधाएं देनी हैं। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी में नियोक्ता एवं कामगार दोनों के बीच एक अनुबंध हो जाता है और इसी अनुबंध के आधार पर दोनों शांतिपूर्वक व्यवस्था को बनाये रखते हैं। इससे न सिर्फ शांति स्थापित होती है, बल्कि औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन भी बढ़ता है एवं संस्थाओं के कार्य क्षेत्र में भी गुणवत्ता आती है। औद्योगिक क्रांति के बाद जिस प्रकार आरंभिक दौर में नियोक्ताओं द्वारा कामगारों का शोषण किया गया, वह मानव इतिहास में सबसे काला समय रहा। जब कामगारों से 24 घंटे में 17 से18 घंटे तक काम लिया गया। यहां तक कि बच्चों एवं महिलाओं को भी शोषण का शिकार होना पड़ा। कामगारों में आई जागरूकता एवं लोकतंत्र की स्थापना एवं कानून के शासन ने मानव को गरिमामयी जीवन प्रदान किया। नये-नये नियम कानून, श्रम संगठनों की स्थापना एवं उनको मान्यता तथा श्रमिकों की जागरूकता/चेतना ने सामूहिक सौदेबाजी को जन्म दिया। इसके माध्यम से कामगारों ने अपने हक एवं अस्तित्व की लड़ाई लड़ी एवं उसमें सफल भी रहे। वर्तमान समय में इस सामूहिक सौदेबाजी के कारण ही कामगारों को आवास, स्वास्थ्य, कामगारों के बच्चों को शिक्षा एवं आकस्मिक दुर्घटनाओं से

सुरक्षा प्राप्त हुई है। अत: सामूहिक सौदेबाजी के कारण ही कामगारों को बेहतर जीवन प्राप्त हुआ है। दूसरी ओर, इससे नियोक्ताओं को भी लाभ हुआ है। उद्योगों में शांति एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन में वृद्धि हुई है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी ने औद्योगिक क्षेत्रों में शांति स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सामूहिक सौदेबाजी का उद्देश्य औद्योगिक शांति बनाए रखना है। इसके माध्यम से नियोक्ता एवं कामगार दोनों को अपनी-अपनी सीमा एवं कार्य का निर्धारण कर दिया जाता है। जिससे भविष्य में दोनों के बीच कोई विवाद और औद्योगिक क्षेत्रों में अशांति का माहौल उत्पन्न न हो। सामूहिक सौदेबाजी का उद्देश्य कामगारों के हितों की रक्षा करना है, जिससे उन्हें नियोक्ता के शोषण से बचाया जा सके।

9.2 सामूहिक सौदेबाजी का आधार

सामूहिक सौदेबाजी में नियोक्ता एवं कर्मचारी के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है जिन जिन बिंदुओं के आधार पर सामूहिक सौदेबाजी की जाती है। वह निम्नवत हैं-

- शोषण
- कार्य की अमानवीय दशा
- आर्थिक असुरक्षा
- कर्मचारियों द्वारा हड़ताल, तालाबंदी आदि की चेतावनी देना।

9.3 सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता

औद्योगिक क्रांति के बाद जब उत्पादन अधिकाधिक लाभ के लिए किया जाने लगा, तो उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति में गिरावट आने लगी। श्रमिक निम्नतम स्थिति पर जा पहुंचे। औद्योगिक क्रांति एवं औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखानों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों का उदय हुआ और यह क्रम आज भी

चल रहा है। औद्योगिकीकरण के कारण बड़ी संख्या में लोगों को औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कारखानों o अन्य स्थानों पर रोजगार के अवसर प्राप्त हुए। औद्योगिकीकरण के कारण ही दो वर्गों का उदय हुआ। एक तरफ पूंजीपति वर्ग ने ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के लिए काम किया, वहीं श्रमिक वर्ग को कार्य की समान दशाओं, एक स्थान पर एकत्रीकरण के कारण उत्पन्न हुयी चेतना के फलीभूत एकजुट होकर अपनी मांग उठाने की प्रेरणा मिली। श्रमिक वर्ग ने अपना एक संगठन बनाकर पूंजीपतियों से अपनी समस्याओं के समाधान की मांग उठाना आरंभ किया। अपने संगठन के माध्यम से नियोक्ता से सामूहिक मांग करने लगे। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी का मुख्य उद्देश्य नियोक्ता एवं श्रमिक संघों के बीच वार्तालाप से है। इस वार्तालाप द्वारा जहां कामगार अपनी मांगों को नियोक्ता वर्ग से मनवाता है, वहीं नियोक्ता वर्ग भी अपने कुछ हितों को ध्यान में रखते हुए श्रमिक वर्ग की मांग को स्वीकार करता है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी के कारण औद्योगिक शांति स्थापित होती है और नियोक्ता वर्ग तथा कामगार के बीच सामंजस्य भी स्थापित हो जाता है। सामूहिक सौदेबाजी का मुख्य उद्देश्य नियोक्ता एवं कामगारों के बीच कार्य की दशाओं से संबंधित समझौता है। इसका उद्देश्य कामगारों को लोकतांत्रिक अधिकार प्रदान करना भी है, क्योंकि कामगार नौकरी करते हैं, मजदूरी करते हैं, किसी की गुलामी नहीं। मानवीय अधिकार इन्हें भी प्राप्त है। अत: सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत कामगारों के अधिकार, सम्मान, तथा उनके स्वाभिमान को स्थापित करने की दिशा में प्रयास करने की दिशा में प्रयास किये जाते हैं। उनके लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा की जाती है। अत: सामूहिक सौदेबाजी की महत्वपूर्ण आवश्यकताएं, निम्न प्रकार है-

- श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए,
- स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त करने के लिए,
- सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए,
- समानता का अधिकार प्राप्त करने के लिए,

- कामगारों की शोषण से रक्षा करने के लिए,
- औद्योगिक विवादों का समाधान प्राप्त करने के लिए,
- औद्योगिक शांति की स्थापना के लिए,
- श्रमिक वर्ग तथा नियोक्ता वर्ग के बीच समझौते हेतु,
- नियोक्ता/प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच सौहार्दपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण संबंधों को बढ़ावा और बनाये रखने के लिए,
- नियोक्ता और कर्मचारियों दोनों के हितों की रक्षा करना,
- औद्योगिक लोकतंत्र को बढ़ावा,

औद्योगिक संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए सामूहिक सौदेबाजी आवश्यक है। अधिकतर मामलों में नियोक्ता श्रमिक संघों को मान्यता देने के संबंध में हमेशा विलंब करता है। साथ ही विषयों यथासंभव विवादग्रस्त बनाये रखने का भी प्रयास करता है। अत: सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत श्रमिक संघों की मान्यता का प्रश्न उठाया जाता है। श्रम कानूनों के तहत निर्धारित कानून/नियम के अनुसार श्रमिक संघों की मान्यता के संबंध में फैसला लिया जाता है।

श्रमिक अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्रता चाहते हैं। 1789 की फ्रांस की क्रांति ने स्वतंत्रता के क्षेत्र में जन-मानस को नई चेतना जागृत की। विश्व के कई देशों के संविधान में भी स्वतंत्रता की बात कही गई है। अत: सामूहिक सौदेबाजी की एक प्रमुख आवश्यकता औद्योगिक क्षेत्र में कार्य कर रहे श्रमिकों की स्वतंत्रता के संरक्षण से थी, जिसके तहत इनको कई प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

श्रमिकों को सामूहिक न्याय प्राप्त करने के लिए सामूहिक सौदेबाजी आवश्यक है। सामाजिक न्याय के अन्तर्गत श्रमिकों को दुर्घटना होने पर अथवा उनके बीमार होने पर नियोक्ता से चिकित्सा सहायता, आर्थिक सहायता, श्रमिकों को गौरवपूर्ण जीवन जीने में मदद, महिला कामगारों की सुरक्षा, समान कार्य समान वेतन, श्रमिकों के आवास, मनोरंजन, सेवानिवृत्ति तथा उनके बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के विषयों को सामूहिक सौदेबाजी द्वारा हल करने का प्रयास

किया जाता है। वर्तमान समय में सामूहिक सौदेबाजी के परिणामस्वरूप ही कई औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों को यह सभी सुविधाएं, प्राप्त हो सकी हैं।

सामूहिक सौदेबाजी सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। समानता के अधिकार का प्रश्न अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम एवं फ्रांस की क्रांति में देखने को मिलता है। फ्रांस की क्रांति का नारा था स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व। समानता के अधिकार के तहत एक ही कार्य के लिए सभी को समान वेतन, पदोन्नत्ति, समान बोनस तथा भत्ता एवं सभी को एक समान दृष्टि से देखना एवं उनके साथ समान व्यवहार करने से है। इसके अन्तर्गत नियोक्ता अपने कामगारों से किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करेगा और सभी कामगारों को एकसमान दृष्टि से देखेगा। अत: सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत समानता का प्रश्न रखा जाता है एवं सामूहिक समझौते की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता कामगारों के समानता के नियमों की रक्षा से संबंधित होती है।

कामगारों की शोषण से रक्षा के लिए सामूहिक सौदेबाजी आवश्यक है।नियोक्ता एवं कामगारों के बीच कई मुद्दों को लेकर विवाद, तनाव एवं टकराहट की स्थिति बनी रहती है। नियोक्ता वर्ग अपना हित देखता है और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के बारे में सोचता है, जिसका परिणाम यह होता है कि कामगारों का उचित वेतन, भत्ता तथा अन्य सुविधाएं प्राप्त नहीं होती है। ऐसी स्थिति में जब श्रमिक अपनी मांगों को मनवाने की कोशिश करते हैं, तो दोनों के आपसी हित टकराते हैं। दोनों के हित एक दूसरे के विपरीत होने से नियोक्ता वर्ग एवं कामगार वर्ग के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण औद्योगिक विवाद उत्पन्न होते हैं। इन विवादों का समाधान सामूहिक सौदेबाजी के द्वारा ही संभव है। सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए निर्णायक तौर पर पहल किया जाता है एवं दोनों के बीच उत्पन्न विवादों को कम या समाप्त करने का प्रयास किया जाता है। सामूहिक सौदेबाजी एक ऐसा मंच है, जहां नियोक्ता एवं कामगार वर्ग मिलकर आपसी सहमति से समस्या का समाधान निकालते हैं और आपसी विवादों को समाप्त कर एक दूसरे के सहयोग से काम को जारी रखते हैं।

औद्योगिक शांति के लिए सामूहिक सौदेबाजी आवश्यक है। जब श्रमिक संगठन एवं नियोक्ता के बीच विवाद उत्पन्न हो जाता है, तब औद्योगिक शांति भंग हो जाती है। इससे उद्योगों में तालाबंदी, हड़ताल, उत्पादन ठप

पड़ जाना आदि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे उत्पादन की प्रक्रिया, उत्पादन के संबंध, उत्पादकता तथा उत्पादन समेत नियोक्ता तथा कामगार वर्ग दोनों ही प्रभावित होते हैं। इससे दोनों को नुकसान हो सकता है। अत: दोनों पक्ष अपने-अपने हित के आधार पर अपने गिले-शिकवों को दूर कर आपस में सम्मानजनक समझौता करते हैं। इससे औद्योगिक शांति स्थापित होती है और फिर उत्पादन संबंध एवं उत्पादन सामान्य हो जाता है।

श्रमिक वर्ग तथा नियोजन वर्ग के बीच समझौते के लिये सामूहिक सौदेबाजी आवश्यक है। इसके अन्तर्गत नियोजक एवं नियोजकों के प्रतिनिधि एवं श्रमिक संघ तथा उनके प्रतिनिधि के बीच परस्पर विचार विमर्श के द्वारा दोनों पक्षों के हितों के अनुरूप समझौता करते हैं। इस समझौते को सामूहिक सौदेबाजी करार (Collective Bargaining Agreement: CBA) कहा जाता है। समझौता होने के साथ यह बात खत्म नहीं होती, बल्कि इस समझौते के सुनिश्चित क्रियान्वयन के लिए एक सुनिश्चित कार्ययोजना को भी निर्धारित किया जाता है तथा समझौता के क्रियान्वयन के लिए एक समय सीमा भी निर्धारित होती है।

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामूहिक सौदेबाजी कामगार वर्ग के लिए कितनी आवश्यक है। इसके आधार पर ही जहां कामगार वर्ग एवं नियोक्ता वर्ग के बीच सामंजस्य बना रहता है, वहीं इसके कारण औद्योगिक शांति स्थापित होती है एवं उत्पादन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है।

बोध प्रश्न- 1

CBA का विस्तरित रूप लिखिए।

.....

बोध प्रश्न- 2

कामगारों को सामूहिक सौदेबाजी ने किस प्रकार सामाजिक न्याय दिलाया है।

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न- 3

सामूहिक सौदेबाजी और औद्योगिक क्रांति के संबंध में विस्तार से लिखिये।

.....
.....
.....
.....

9.4 सामूहिक सौदेबाजी का महत्व

आधुनिक औद्योगिक समाज में सामूहिक सौदेबाजी का महत्वूपर्ण स्थान है। इसके माध्यम से श्रमिकों को न केवल मजदूरी, कार्य की अच्छी दशाएं एवं अन्य सुख सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं, बल्कि इसने देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। यदि हम कामगार तथा कामगार संघों के दृष्टिकोण से देखें तो इसके महत्व की कोई सीमा नहीं है। कामगारों तथा नियोक्ताओं के लिए सामूहिक सौदेबाजी का महत्वपूर्ण महत्व निम्न प्रकार हैं-

- ❖ सामूहिक सौदेबाजी कामगारों/श्रमिकों की दशाओं के सुधार में सहायक है।
- ❖ यह उद्योगों में स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण रखता है।
- ❖ यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों के स्तर पर समस्याओं के समाधान में अधिक सहायक है।
- ❖ सामूहिक सौदेबाजी स्थाई औद्योगिक शांति बनाए रखने में सहायक है।
- ❖ यह एक लचीली प्रक्रिया है।
- ❖ यह काम करने के मानक की स्थापना में सहायक है।

सामूहिक सौदेबाजी श्रमिक संघों की प्रस्थिति सुधार में सहायक है-

सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से श्रमिक संघ के प्रतिनिधि नियोक्ताओं से श्रमिकों के लिए अधिक मजदूरी, काम के घंटों में कमी, काम की अच्छी दशाएं तथा विभिन्न प्रकार के सुख-सुविधाएं, आर्थिक सुरक्षा आदि की मांग करते हैं। श्रमिक संघ नियोक्ता से इन विषयों पर मोल-तोल करता है और अपनी मांगों को मनवाने में सफल भी हो जाता है। श्रमिक संघ नियोजन की अच्छी शर्तों और दशाओं के लिए नियोक्ता से मांग करता है और आवश्यकता होने पर दबाव भी डालता है। नियोक्ता द्वारा श्रमिक संघ की मांग को ठुकराने की स्थिति में संघ हड़ताल या अन्य प्रकार की औद्योगिक कार्रवाइयों की धमकी देते हैं। ऐसी स्थिति में नियोक्ता द्वारा इनकी मांगों को ठुकराना कठिन होता है। अत: श्रमिक संघ की मांग माननी पड़ती है। सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से श्रमिकों को कई प्रकार के आर्थिक, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त हुए हैं। विश्व के कई देशों के श्रमिक सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से लाभान्वित हुए हैं। जिस देश में श्रमिक जितने संगठित हैं, उनके जीवन स्तर में महत्वपूर्ण ढंग से सुधार हुआ है।

औद्योगिक क्रांति के पश्चात् जब औद्योगिकीकरण शुरू हुआ तो प्रारंभ में नियोक्ताओं ने श्रमिकों का जमकर शोषण किया। वे अपनी इच्छानुसार किसी को नौकरी देते या हटा देते थे। श्रमिक वर्ग रोजगार तथा रोजगार के शर्त के लिए पूर्ण रूप से नियोक्ता पर निर्भर रहता था। नियोक्ता नियोजन की शर्तों एवं दशाओं को स्वयं ही निर्धारित करता था और स्वयं ही अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करता था। एक प्रकार से उद्योग एवं उसके नियम शर्त पर नियोक्ता का पूर्ण अधिकार था, लेकिन सामूहिक सौदेबाजी के विकास से नियोक्ताओं की इस स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण हो गया और उनके एकाधिकार के क्षेत्र संकुचित हो गए। आरंभ में श्रमिक वर्ग केवल मजदूरी, कार्य की भौतिक दशाओं जैसे कुछ विषयों पर ही नियोक्ताओं से सामूहिक सौदेबाजी करते थे, लेकिन जैसे-जैसे श्रमिक संघ की शक्ति बढ़ती गई और उन्हें अनुभव होता गया, वैसे-वैसे सामूहिक सौदेबाजी कई ऐसे नये विषयों पर होने लगी, जिसका अनुमान पहले नहीं लगाया गया था। वर्तमान समय में सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत कई विषय आते हैं। इन विषयों के विस्तार से नियोक्ताओं की स्वेच्छाचारिता बहुत कम हो गई और औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना हुई है।

सामूहिक सौदेबाजी प्रतिष्ठान के स्तर पर समस्याओं के समाधान में सहायक है।

श्रमिकों की कई ऐसी समस्याएं होती हैं, जिन्हें प्रतिष्ठान के स्तर पर ही हल किया जा सकता है। ऐसी समस्याओं का समाधान श्रम कानूनों या कोई या कोई तीसरे अभिकरण के निर्णय द्वारा निकालना कठिन होता है। इनका प्रभावी समाधान तभी संभव है, जब पक्षकार आपके सामने बैठकर विचार विमर्श द्वारा उनका निदान निकालें। पक्षकार अपनी समस्याओं का जिस तरह संवाद के माध्यम से समाधान कर लेते हैं। बाहरी हस्तक्षेप से उनका उस तरह समाधान निकालना संभव नहीं है।

जब श्रमिक वर्ग एवं नियोक्ता के बीच तनाव बढ़ता है, ऐसी स्थिति में औद्योगिक अशांति बढ़ जाती है। औद्योगिक शांति तभी संभव है, जब श्रमिक संघ एवं नियोक्ता अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करें। सामूहिक सौदेबाजी से श्रमिक संघ एवं नियोक्ता को अपनी समस्याओं का समाधान संयुक्त रूप से निकालने का अवसर मिलता है। जहां विवादों का निपटारा किसी तीसरे पक्ष या अभिकरण द्वारा होता है, वहां औद्योगिक शांति स्थायी रूप से नहीं स्थापित की जा सकती। कभी-कभी सामूहिक सौदेबाजी में हड़ताल, तालाबंदी आदि आवश्यक हो जाती है। लेकिन समझौता हो जाने के बाद सामान्य वातावरण स्थापित हो जाता है।

यह एक लचीली प्रक्रिया है- उद्योगों में स्थितियां हमेशा एक जैसी नहीं होती, क्योंकि बाजार व्यवस्था होने के कारण उद्योगों में उत्पादन, वितरण, आयात-निर्यात, श्रमिकों के नियोजन, लाभ-हानि, प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों के साथ-साथ नियोजन, संबंध, श्रमिक संघों कि भूमिका एवं नियोजन की दशाओं में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से परिवर्तन की इन दशाओं का ध्यान में रखते हुए श्रम की दशाओं में परिवर्तन आसानी से लाया जा सकता है। औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए समय-समय पर आवश्यकतानुसार सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से नियम-कानून बनाए जाते हैं एवं उनमें परिवर्तन भी किया जाता है।

सामूहिक सौदेबाजी श्रम मानकों की स्थापना में सहायक हैं। सामूहिक सौदेबाजी में श्रमिक वर्ग तथा नियोक्ता नियोजन की विभिन्न शर्तों एवं दशाओं के बारे में मोल-तोल करते हैं और आपसी सहमति हो जाने पर उन्हें लिखित

समझौते के रूप में स्वीकार करते हैं इस समझौते पर दोनों पक्षों की सहमति और हस्ताक्षर होते हैं। कई देशों में इस सहमति को कानूनी रूप भी दिया जाता है। जिन देशों में यह कानूनी रूप नहीं ले पाता, वहां भी इन्हें उपबंधों के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार यह समझौता उद्योगों में नियोजन की शर्त एवं दशाओं से संबद्ध मानक स्थापित करता है और उसका स्तर ऊँचा उठा रहता है। एक स्थान विशेष में किया गया यह समझौता, दूसरे स्थान के लिए भी अभिलेख का काम करता है। इस प्रकार श्रम के नियोजन की शर्त एवं दशाओं से संबद्ध मानकों में एकरूपता आ जाती है।

सामूहिक सौदेबाजी श्रमिकों की प्रस्थिति में सुधार में सहायक है-

इसके माध्यम से न सिर्फ श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार आता है, बल्कि उनके स्वास्थ्य, उनके बच्चों को शिक्षा, उनके आवास की समस्या का भी समाधान होता है, जिससे उनकी प्रस्थिति में सुधार हो जाता है। सामूहिक सौदेबाजी की सफलता से श्रमिकों के उत्साह में वृद्धि होती है और उनको अपने संगठन पर भरोसा होने लगता है। इस स्थिति में श्रमिक संघ और मजबूत हो जाता है एवं श्रम संघ शक्तिशाली होता जाता है।

9.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता कामगार वर्ग को ज्यादा होती है। इससे कामगारों को आर्थिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य संबंधी सुरक्षा प्राप्त हो जाता है। इससे न केवल कामगारों की प्रस्थिति में सुधार होता है, बल्कि उनकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति में भी सुधार होता है। सामूहिक सौदेबाजी से औद्योगिक क्षेत्र में शांति का वातावरण भी बनता है, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है। नियोक्ता भी बिना किसी संकोच के औद्योगिक क्षेत्रों में निवेश करता है, जिससे कामगारों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, जो किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है। किसी भी देश में निवेश एवं आर्थिक विकास तभी संभव होता है, जब उस देश में नियोक्ता एवं कामगारों के बीच शांति का माहौल हो और ऐसा माहौल सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से ही संभव है।

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

समानता: सामान्य तौर से समानता के चार रूपों की चर्चा की जाती है, जैसे- 1- सत्तामूलक समानता, अर्थात् व्यक्तियों की समानता का सिद्धांत, 2- अवसर की समानता, 3- दशाओं की समानता, जिसमें जीवन की दशाओं को विधि विधानों द्वारा समान बनाया जाता है, तथा 4- परिणामों में समानतसत्तामूलक समानता सामान्यत: धार्मिक विश्वास से संबंधित है, जैसे- ईश्वर मानवता के पिता हैं, अत: सभी मानव समान है। अवसर की समानता का विचार फ्रांसीसी क्रांति से संबंधित है। इस विचार के अनुसार यह माना जाता है कि समाज के सभी पदों को व्यक्तिगत प्रतिभा के आधार पर शैक्षिक योग्यता के माध्यम से खुली प्रतियोगिता द्वारा भरा जाना चाहिए। इसी प्रकार समानता हेतु व्यक्तियों के चयन हेतु सार्वभौमिक कसौटियों की आवश्यकता पड़ती है। यह समानता समाज में उपलब्धिपरक प्रेरणा को भी महत्व देती है। दशाओं में समानता परिवर्तन का एक ऐसा रूप है जिसका लक्ष्य विद्यमान असमानताओं की व्यवस्था को खत्म करने की अपेक्षा उसमें सुधार करना है।

2- **सामूहिक सौदेबाजी-** सामूहिक सौदेबाजी ऐसी विधि या व्यवस्था है, जिसके द्वारा नियोक्ताओं और सामूहिक रूप में संगठित कर्मचारियों के प्रतिनिधियों के बीच समझौते के द्वारा वेतन, काम करने की दशाओं तथा रोजगार के अन्य पहलुओं को निश्चित किया जाता है। सामान्यत: इस व्यवस्था की शुरूआता औद्योगिकीकरण से हुई मानी जाती है। सामूहिक सौदेबाजी विशेषत: नियोक्ता अथवा नियोक्ताओं के संगठन और श्रमिक संगठन के बीच होती है।

3- **सामाजिक न्याय-** एक सावयविक रूप में संगठित समाज के निर्माण के लिए व्यक्तियों का तर्कसंगत सहयोग, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार फलने फूलने तथा जीवन को सही ढ़ंग से जीने की कला सीखने के समान तथा वास्तविक अवसर प्राप्त हो सकें, सामाजिक न्याय कहलाता है। सामाजिक न्याय प्रजातंत्र की एक आवश्यक शर्त है।

4- **वर्ग-** एक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जिनकी किसी समाज में समान प्रस्थिति पद स्तर और समान जीवन शैली होती है। मार्क्सवादियों के अनुसार वर्ग ऐसे लोगों का समूह है, जिनकी उत्पादन की प्रणाली के आधार पर समान प्रस्थिति होती है और जो राजनीतिक शक्ति संरचना के साथ समान रूप से जुड़े होते हैं। मार्क्स ने उत्पादन की प्रणाली के आधार पर समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है। पहला बुर्जुआ वर्ग और दूसरा सर्वहारा वर्ग। वर्ग निर्माण के लिए मार्क्स ने वर्ग चेतना और वर्ग संगठन के दो आवश्यक तत्व बताए हैं। मैक्स वेबर ने वर्ग का आधार बाजार की स्थिति में वर्ग प्रस्थिति को बताया है।

5- **शोषण-** शोषण शब्द का प्रयोग बहुधा व्यक्तियों के संबंधों अथवा व्यक्तियों के समूह के ऐसे संबंधों को इंगित करने के लिए किया जाता है, जिसमें एक व्यक्ति अथवा एक समूह संरचनात्मक रूप से एक ऐसी स्थिति में होता है कि वह दूसरों से लाभ या सुविधा प्राप्त कर सके। सामान्य अर्थ में शोषण से तात्पर्य 'सुविधा प्राप्त करना' या अनौचित्य रूप में लाभ अर्जित करना अथवा अपने स्वार्थहित हेतु किसी व्यक्ति के गलत रूप में प्रयोग करने आदि से है। शोषण में हर समय अनौचित्य अथवा गलत कार्य का थोड़ा बहुत भाव छुपा होता है। इस अवधारणा का प्रयोग केवल संसाधनों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसका प्रयोग राजनीतिक शोषण, नैतिक शोषण, यौन शोषण, सामाजिक या मानसिक शोषण के अर्थ में भी किया जाता है।

6- **सामूहिक**- एक ऐसा शब्द है, जो एक साथ काम करने वाले लोगों के समूह का वर्णन करता है। सामूहिक शब्द एक समूह को इंगित करता है। अक्सर इसका उपयोग किसी व्यक्ति के प्रयासों या इच्छा के विरोध में किया जाता है।

7- **कामगार-** किसी भी श्रमसाध्य कार्य को करने वाला मनुष्य जैसे-भवन निर्माण कामगार, श्रमिक मजदूर आदि। कामगार वह है जो अपने श्रम के बदले भुगतान पाता है।

8- **नियोक्ता-** नियोक्ता वह व्यक्ति या कम्पनी है, जो कार्य करने के लिए कामगारों या कर्मचारी को काम पर रखता है। नियोक्ता कर्मचारियों को उनके काम के लिए मुआवजा देता है। आम भाषा में इसे मालिक भी कहते हैं।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1- Collective Bargaining Agreement

बोध प्रश्न 2- के उत्तर हेतु इकाई का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

बोध प्रश्न 3- के उत्तर हेतु इकाई का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

विश्वनाथ, झा, औद्योगिक समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

पी.आर- एन- सिन्हा एवं इन्दुबाला, श्रम और समाजशास्त्र, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), पटना

उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

J.H., Richardson, ln Introduction to the Study of Industrial relation, encyclopedia of Social Sciences.

S.N., Dhyani, Trlde Union and the Right to Strike, S. Chandra - Co. (Pvt.) Ltd., New Delhi

Kirkaldy, The Spirit of Industrial Relation, Oxford University Press, 1947

सिडनी और बीट्रिस वेब, इंडस्ट्रियल डेमोक्रेसी, 1897, न्यूयार्क

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में सामूहिक सौदेबाजी का क्या महत्व है\ व्याख्या करें।

आर्थिक विकास हेतु सामूहिक सौदेबाजी का क्या महत्व है\

आज के आधुनिक औद्योगिक समाज में सामूहिक सौदेबाजी की क्या आवश्यकता है\

सामूहिक सौदेबाजी ने किस प्रकार कामगारों की प्रस्थिति में सुधार किया है\ व्याख्या करें।

इकाई–10 सामाजिक सुरक्षाः अवधारणा, उद्देश्य एवं भारत में सामाजिक सुरक्षा

(Social Security: Concept, Objective and Social Security in India)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा का स्पष्टीकरणः अर्थ एवं परिभाषाएं

10.3 सामाजिक सुरक्षा की विशेषताएं

10.4 सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य

10.5 सामाजिक सुरक्षा के आवश्यक तत्व

10.6 सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र

10.7 सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता

10.8 भारत में सामाजिक सुरक्षा

10.9 सारांश

10.10 शब्दावली

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही इसकी विशेषताओं, उद्देश्य, आवश्यकता को स्पष्ट करना भी इस इकाई का उद्देश्य है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा, इसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्यों एवं आवश्यकता को स्पष्टतया समझ सकेंगे,
- सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र को स्पष्टतया समझ सकेंगे,
- सामाजिक सुरक्षा के आवश्यक तत्वों की चर्चा करने में सक्षम होंगे,
- भारत में सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

मनुष्य समाज का एक आवश्यक अंग है। समाज में रहते हुए व्यक्ति पर कभी–कभी आकस्मिक विपत्तियां, जैसे–दुर्घटना, बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था, प्रसूतावस्था आदि, आ जाती हैं। कई बार व्यक्ति इन आकस्मिक विपत्तियों से निपटने के लिये आवश्यक साधन नहीं जुटा पाता है। यदि ऐसे समय में समाज व्यक्ति की सहायता न करे, तो उसका शारीरिक, मानसिक व नैतिक पतन होने की आशंका बनी रहती है। इसी कारण यदि समाज अपने साधनों को संगठित करके, अपने सदस्यों के ऊपर आने वाली विपत्तियों से उसकी रक्षा करने की व्यवस्था करे, तो वह सामाजिक सुरक्षा कहलाती है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत व्यक्ति को यह विश्वास होता है कि आवश्यकता पड़ने पर उसे सुरक्षा प्राप्त हो जायेगी। सामाजिक सुरक्षा के दो प्रमुख तत्व हैं, प्रथम– सुरक्षित होने का अनुभव, द्वितीय– आपत्ति काल में सहायता का पर्याप्त निश्चित मात्रा में उपलब्ध होना। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में सामाजिक बीमा, सामाजिक सहायता, सामाजिक सेवा सम्मिलित हैं।

10.2 सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा का स्पष्टीकरण : अर्थ एवं परिभाषाएं

सामान्य शब्दों में सामाजिक सुरक्षा वह है, जिसमें व्यक्ति को जीवन की आकस्मिक घटनाओं तथा जोखिमों (जिसमें जन–धन की हानि होती है) से सुरक्षा प्राप्त होती है। आकस्मिक घटनाओं के समय व्यक्ति जिस भार का स्वयं निर्वहन नहीं कर पाता है, उसका निर्वहन सामाजिक सुरक्षा के माध्यमों से करता है।

सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा आदिकाल से ही समाज में विद्यमान है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु संसाधनों के रूप में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता रहा है। ''सामाजिक सुरक्षा'' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1933 में अब्राहम इप्सटीन द्वारा किया गया था। सन् 1935 में इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग तब किया गया, जब संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अपना सामाजिक सुरक्षा अधिनियम बनाया गया। 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकार अधिनियम की घोषणा के उपरान्त विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा को स्वीकृति प्रदान की गई। सामाजिक सुरक्षा की परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं:–

अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, ''सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है, जो समाज की ओर से उचित संगठनों के माध्यम से अपने सदस्यों के साथ घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं और जोखिमों से बचाव के लिए प्रदान की जाती है। इन जोखिमों में बीमारी, गर्भावस्था, अयोग्यता, मृत्यु अथवा वृद्धावस्था शामिल हैं। सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होने का अर्थ यह है कि व्यक्ति को यह विश्वास हो जाये कि आकस्मिक विपत्ति (जोखिम) के समय आवश्यकता होने पर उसे सुरक्षा प्रदान की जाएगी।''

विलियम बेवरिज के अनुसार, ''सामाजिक सुरक्षा योजना एक ऐसी सामाजिक बीमा योजना है, जो संकट के समय व्यक्ति अथवा उस समय जब उसकी कमाई कम हो जाए तथा दुर्घटना, बीमारी, मृत्यु, अयोग्यता में होने वाले अतिरिक्त व्यय की पूर्ति के लिए लाभान्वित करती है।''

मॉरिस स्टेक के अनुसार, ''सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय समाज द्वारा दी जाने वाली उस सुरक्षा से है, जो आधुनिक जीवन में घटित होने वाली आकस्मिक विपत्तियों यथा– दुर्घटना, विकलांगता, बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था के लिए प्रदान की जाती है।

ब्लूम के अनुसार, ''सामाजिक सुरक्षा का अर्थ है कि सरकार, जो कि समाज की प्रतिनिधि है, अपने सभी नागरिकों के लिए न्यूनतम जीवनस्तर के मानक तय करने के लिए जिम्मेदार है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि ''सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है, जो समाज द्वारा एक उपयुक्त संगठन के माध्यम से अपने सदस्यों को आकस्मिक दुर्घटनाओं तथा जोखिमों से बचाती है। सामाजिक सुरक्षा में व्यक्ति इस बात के लिए आश्वस्त होता है कि जोखिम के समय वह सुरक्षित है तथा विपरीत परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसे पर्याप्त मात्रा में सहायता प्राप्त होगी, जिससे स्वयं वह तथा उस पर आश्रित व्यक्ति लाभान्वित होंगे।

सामाजिक बीमाः सामाजिक बीमा सामाजिक सुरक्षा का एक अंग है एवं इसका प्रमुख उद्देश्य आय सुरक्षा प्रदान करना है। यह श्रमिक वर्ग को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का सर्वोच्च एवं प्रभावपूर्ण माध्यम है।सामाजिक बीमा वह व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत बीमारी, दुर्घटना, अपंगता, मातृत्व की आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय बीमा कराने वाले श्रमिकों व उनके परिवारों (आश्रितों) को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

सामाजिक बीमा की विशेषताएं–

1. सामाजिक बीमा अनिवार्य रूप से प्रदान किया जाता है।

2. सामाजिक बीमा में, व्यक्ति तथा उसके आश्रितों को आर्थिक सहायता प्राप्त होती है।

3. हित लाभ व्यक्ति द्वारा अधिकार के रूप में प्राप्त किया जाता है।

4. हित लाभ की सेवा शर्तें तथा सीमाएं निश्चित होती है।

5. सामाजिक बीमा में दुर्घटनाओं/जोखिमों की पूर्णतया रोकथाम तो नहीं होती, किन्तु यह श्रमिकों को जोखिमों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है।

सामाजिक सहायताः सामाजिक सहायता वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा राज्य सेवा शर्तें पूरी करने वाले श्रमिकों को अपने साधनों से कानूनी अधिकार के रूप में हित लाभ देता है। यह सहायता व्यक्ति को

उसकी आय के साधनों पर विचार किये बिना प्रदान की जाती है। सामाजिक सहायता अभावग्रस्त व्यक्तियों के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व को दर्शाती है एवं मानवीय दृष्टिकोण की प्रतीक है।

सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में अंतर :

1–सामाजिक बीमा पारस्परिक अंशदान पर आधारित योजना है।	1–सामाजिक सहायता आय के साधनों पर विचार किये बिना आवश्यकतानुसार प्रदान की जाती है।
2–यह जोखिम (दुर्घटना) को सामूहिक रूप से वहन करने का माध्यम है।	2–सामाजिक सहायता अभावग्रस्त व्यक्तियों के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व को दर्शाती है
3–सामाजिक बीमा कार्यक्रम वहां लागू होता है, जहां श्रमिक संगठित और जागरूक हैं।	3–यह वहां लागू होती है, जहां श्रमिक असंगठित, अशिक्षित तथा अंशदान देने में असमर्थ हों।
4– सामाजिक बीमा में जोखिम तथा अंशदान में एक उचित अनुपात रखा जाता है।	4–इसके अन्तर्गत जोखिम व अंशदान में सम्बन्ध आवश्यक नहीं है।
5–सामाजिक बीमा के अन्तर्गत सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने आपको किसी प्रकार से हीन दृष्टि से नहीं देखता।	5–सामाजिक सहायता में सरकार अथवा नियोक्ता द्वारा धन दिया जाता है, जिससे व्यक्ति में हीनभावना उत्पन्न होती है।
6–सामाजिक बीमा अधिकारके रूप में श्रमिक को प्रदान किया जाता है।	6–सामाजिक सहायता प्राप्त करने के लिए साधन तथा स्रोतों का ध्यान रखा जाता है।

10.3 सामाजिक सुरक्षा की विषेशताएं

सामाजिक सुरक्षा की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1–सामाजिक सुरक्षा, आकस्मिक दुर्घटनाओं तथा जोखिमों के समय विभिन्न संगठनों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा है।

2–सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों की व्यवस्था अधिकांशतः कानून बनाकर की जाती है।

3–सामाजिक सुरक्षा में सामाजिक बीमा एवं सामाजिक सहायता दो प्रमुख तत्व सम्मिलित हैं।

4–व्यक्ति तथा उस पर आश्रित परिवार को दिये जाने वाले भत्ते, आदि भी सामाजिक सुरक्षा में ही समाहित हैं।

5–सामाजिक सुरक्षा में लाभ अधिकार स्वरूप प्राप्त होता है, किन्तु लाभ प्राप्त करने की शर्तें निर्धारित होती हैं।

6–स्वयं व्यक्ति तथा उस पर आश्रित परिवार की चिकित्सा पर होने वाला व्यय भी सामाजिक सुरक्षा में सम्मिलित है।

7–सामाजिक सुरक्षा व्यक्ति को यह विश्वास दिलाती है कि आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय उसे आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा तथा सहायता प्राप्त होगी।

8–सामाजिक सुरक्षा विपत्ति काल में व्यक्ति को सुरक्षित होने का अनुभव कराती है।

10.4 सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसकी विभिन्न आवश्यकताएं होती हैं। व्यक्ति कभी दूसरों की सहायता (मदद) करता है, और कभी उसे स्वयं सहायता की आवश्यकता होती है। आधुनिक प्रौद्योगिक युग में वह कई प्रकार की आकस्मिक दुर्घटनाओं का शिकार हो जाता है, इन आकस्मिक दुर्घटनाओं से निजात (छुटकारा) पाने के लिए व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता होती है, जिसके लिए उसे सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नवत हैं:

1. क्षतिग्रस्त व्यक्ति को क्षतिपूर्ति तथा उस पर आश्रित परिवार को आवश्यक सहायता प्रदान करना।

2. क्षतिग्रस्त व्यक्ति के पुनरुत्थान का प्रयास करना।

3. खतरों की रोकथाम के लिए आवश्यक व्यवस्था करना ।

4. आकस्मिक विपत्ति के समय सुरक्षा नगद प्रकार की सेवाओं या सुविधाओं में ही करना।

10.5 सामाजिक सुरक्षा के आवश्यक तत्व

सामाजिक सुरक्षा के कुछ प्रमुख आवश्यक तत्व निम्नवत हैं:

1. सामाजिक सुरक्षा योजना का उद्देश्य आकस्मिक होने वाली हानि से सुरक्षा प्रदान करने के लिए आय की गारण्टी देना है, जिससे उस व्यक्ति पर निर्भर व्यक्ति लाभान्वित हो सकें।
2. सामाजिक सुरक्षा प्रणाली सरकारी, अनुदानित तथा गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा प्रशासित की जानी चाहिए।
3. सामाजिक सुरक्षा प्रणाली एक निश्चित विधान के अन्तर्गत लागू की जानी चाहिए, जो व्यक्ति के अधिकारों के लिए सरकारी, गैर सरकारी, अनुदानित एवं अर्द्ध–सरकारी संगठनों (संस्थाओं) को सामाजिक–सुरक्षा सुविधाएं प्रदान करने के लिए बाध्य कर सके।
4. सामाजिक सुरक्षा प्रणाली को नियोजित रूप से क्रियान्वित करने के लिए, उपलब्ध सुविधाओं के प्रति कर्मचारियों का विश्वास होना आवश्यक है, तभी योजना का पूर्णरूपेण क्रियान्वयन संभव है।

10.6 सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र

सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित हैं:

1. ऐच्छिक (वैकल्पिक) सामाजिक बीमा के कुछ प्रारूप।
2. अनिवार्य सामाजिक बीमा।
3. सरकारी कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि योजना, पेंशन, बोनस।
4. पारिवारिक भत्ता।
5. सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं।
6. सामाजिक सहायता।

10.7 सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता

मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज का एक आवश्यक अंग है। समाज में रहते हुए मानव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न व्यक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता है। मानव जीवन की दो प्रमुख अवस्थाएं हैं–बाल्यावस्था एवं वृद्धावस्था। ये दोनों ही अवस्थाएं ऐसी हैं, जब उसे दूसरों पर सबसे अधिक निर्भर रहना पड़ता है तथा उसे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इन दो अवस्थाओं के अतिरिक्त भी व्यक्ति कई बार अनेकों समस्याओं जैसे–आकस्मिक दुर्घटनाओं, विकलांगता, बेरोजगारी, बीमारी, गर्भावस्था/मातृत्वकाल से ग्रसित हो जाता है। इन सभी समस्याओं से निजात पाने के लिए भी उसे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होने पर व्यक्ति को निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. सामाजिक सुरक्षा, जनशक्ति की रक्षा करती है।

2. सामाजिक सुरक्षा द्वारा बेरोजगारी की स्थिति में जीवन स्थिर रहता है।

3. सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक सहायता तथा सामाजिक बीमा द्वारा कल्याण एवं प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है।

4. सामाजिक सुरक्षा द्वारा अनाथ बच्चे अपनी शिक्षा से वंचित नहीं रहते।

5. सामाजिक सुरक्षा द्वारा प्राप्त चिकित्सा लाभ सुविधा से स्वास्थ्य उत्तम रहता है तथा कार्यदक्षता में वृद्धि होती है।

6. सामाजिक सुरक्षा, राष्ट्रीय एवं सामाजिक दृष्टिकोण से भी अनिवार्य है। इसके द्वारा मानवीय मूल्यों, नैतिकता तथा अधिकारों की सुरक्षा की जा सकती है।

7. सामाजिक सुरक्षा राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय समृद्धि को बढ़ाती है।

10.8 भारत में सामाजिक सुरक्षा

भारत में सामाजिक सुरक्षा की परम्परा बहुत प्राचीन है। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु विभिन्न अधिनियमों का निर्माण किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं–

1. श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम, 1923:

उद्देश्य: उस परिस्थिति में श्रमिकों को क्षतिपूर्ति प्रदान करना, जब कार्य करते समय दुर्घटना से उत्पन्न बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है या वे असमर्थ हो जाते हैं।

क्षेत्र एवं पात्रता: कारखानों, खदानों, बागानों, रेलवे तथा अन्य, जिनका अधिनियम की सूची 11 से उल्लेख किया गया है।

पात्रता: ईएसआई (कर्मचारी राज्य बीमा: Employees states Insurance Act) अधिनियम में शामिल श्रमिकों पर यह अधिनियम लागू नहीं होता है।

क्षतिपूर्ति:

(1) मृत्यु पर: न्यूनतम 80,000 रुपये अधिकतम 4,56000 रुपये ।

(2) स्थायी असमर्थता: न्यूनतम 90,000 रुपये अधिकतम 5,48000 रुपये ।

(3) अस्थायी असमर्थता: अधिकतम 5 वर्षों की मजदूरी का 50 प्रतिशत |

2. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961:

उद्देश्य: शिशु के जन्म के पहले और बाद में मातृत्व की रक्षा का प्रावधान किया गया है।

क्षेत्र: सभी कारखानों, खदानों, बागानों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर (जिन पर राज्य सरकारें लागू करें)।

पात्रताः उन पर लागू नहीं जो ईएसआई **(Employees states Insurance Act)** अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं।

क्षतिपूर्तिः

(1). वास्तविक अनुपस्थिति के 12 सप्ताह तक औसत दैनिक मजदूरी अथवा 10 रुपये न्यूनतम मजदूरी का भुगतान।

(2). दाई आदि का निःशुल्क प्रबन्ध नहीं होने पर 250 रुपये चिकित्सा बोनस की व्यवस्था।

3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 ESI (Employees states Insurance Act)

उद्देश्यः कर्मचारी राज्य बीमा के अन्तर्गत मुख्यतः पांच लाभ प्रदान किये जाते हैं, जिनके लिये पंचदीप शब्द का उपयोग किया जाता है। इनमें से चार हैं– बीमारी हित लाभ, मातृत्व हित लाभ, असमर्थतता हितलाभ और आश्रित हितलाभ। ये चारों मौद्रिक रूप में प्रदान किये जाते हैं। पांचवां लाभ चिकित्सा हितलाभ है, जो गैर–मौद्रिक रूप में प्रदान किया जाता है।

क्षेत्रः वे व्यवसाय/कारखाने, जिन पर राज्य सरकारें इस अधिनियम को लागू करें।

पात्रताः उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी 01/04/2007 से 7500 रुपये से अधिक नहीं है।

क्षतिपूर्तिः (1). मृत्यु/पूर्ण स्थायी असमर्थता पर मजदूरी का 70 प्रतिशत मासिक पेंशन के रूप में।

(2). अस्थायी असमर्थताः असमर्थता अवधि के लिए मजदूरी का 70 प्रतिशत |

4. कर्मचारी भविष्य निधि और विविध उपबन्ध अधिनियम, 1952

उद्देश्यः इन उपबंधों में निम्न को लागू किया गया है–

(1) कर्मचारी भविष्य निधि योजना 1952।

(2) कर्मचारी पेंशन योजना 1995।

(3) जमा राशि से जुड़ी कर्मचारी बीमा योजना 1976।

क्षेत्रः उन अनुसूचित उद्योगों पर, जहां कारखानों, प्रतिष्ठानों में 20 या इससे अधिक मजदूर श्रम करते हैं, इनके अलावा केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित अन्य प्रतिष्ठान।

पात्रताः वे कर्मचारी, जिनका मासिक वेतन 6500 रू0 से अधिक नहीं।

क्षतिपूर्ति–

(1) कर्मचारी भविष्य निधि योजना 1952 में–

(अ). अंशदान की दर वार्षिक भुगतान का 12 प्रतिशत।

(ब). जीवन बीमा पॉलिसी, भवन निर्माण, स्वास्थ्य चिकित्सा, शादी तथा उच्च शिक्षा के लिए वापस किए जाने वाले ऋण।

2. कर्मचारी पेंशन योजना 1995 के अंतर्गत–

(अ). 450 से लेकर 2500 रुपये की पारिवारिक पेंशन।

(ब). अवकाश प्राप्त होने पर 110 रुपये से लेकर 48,825 रुपये का लाभ,

(3) जमा राशि से जुड़ी कर्मचारी बीमा योजना 1976 के तहत–

मृतक के भविष्य निधि खाते में जमा रकम के बराबर रकम, लेकिन 60,000 रुपये से अधिक नहीं।

5. आनुतोषिक भुगतान अधिनियम 1972

उद्देश्यः अवकाश ग्रहण करने (सेवा समाप्ति) पर आनुतोषिक या उपादान के भुगतान का प्रावधान।

क्षेत्रः कारखाने, खदान, तेल क्षेत्र, बागान, बन्दरगाह, रेलवे, दुकान तथा वाणिज्य प्रतिष्ठान एवं अन्य ऐसे प्रतिष्ठान, जिन पर सरकार लागू करे।

पात्रताः आनुतोषिक की हकदारी के लिए पांच वर्षों की लगातार सेवा अपेक्षित है।

क्षतिपूर्तिः न्यूनतम 6 महीने से अधिक पर प्रत्येक एक वर्ष की सेवा पर 15 दिनों की मजदूरी, लेकिन कुल मिलाकर 3,50,000 रुपये से अधिक नही।

अन्य योजनाएंः

खेतिहर मजदूरों के लिए कल्याण की योजनाएं–

1. गरीबी रेखा से नीचे और सीमांत स्तर के व्यक्तियों के लिए जनश्री बीमा योजना।
2. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना और राष्ट्रीय प्रसूति लाभ योजना को शामिल किया गया है।
3. ग्रामीण विकास मंत्रालय के अन्तर्गत सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, बीमा योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, ग्रामीण आवास–जलापूर्ति कार्यक्रम तथा अकालग्रस्त क्षेत्र, मरूभूमि विकास कार्यक्रम आदि प्रमुख हैं।

केन्द्र द्वारा वित्तपोषित सहायता कार्यक्रमः

केन्द्र द्वारा वित्तपोषित सहायता कार्यक्रमों में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एन.एस.पी.) के अन्तर्गत ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों के लिए योजनाएं शामिल की गयी हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना शामिल हैं। ये कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय और शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन मंत्रालय के द्वारा संचालित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्र मंत्रालय हथकरघा (पावरलूम) क्षेत्र के श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना लागू करता है।

सामाजिक बीमा योजनाः

असंगठित क्षेत्र के लिए उपलब्ध सामाजिक बीमा योजनाएं भारतीय जीवन बीमा निगम के माध्यम से लागू की जाती हैं। इनमें अनेक समूह बीमा योजनाएं हैं, जिनमें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर.डी.पी.) के अन्तर्गत दुकानों और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों आदि को शामिल किया जाता है। हाल ही में शुरू की गई सबसे महत्वपूर्ण और सबसे व्यापक योजना जनश्री बीमा योजना है, जिसके अन्तर्गत असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को निम्नांकित लाभ उपलब्ध हैं–

– मृत्यु होने पर रुपये 20000/– को नकद भुगतान।

– पूर्ण विकलांग कर देने वाली दुर्घटना के मामले में रुपये 50000/– का नकद भुगतान।

– आंशिक विकलांगता के मामले में रुपये 25000/– का नकद भुगतान

उपर्युक्त लाभों के लिए प्रति लाभार्थी प्रीमियम रुपये 200/– है और इसमें से 50 प्रतिशत यानी रुपये 100/– का भुगतान सामाजिक सुरक्षा कोष से किया जाता है। जनश्री बीमा योजना 16 से 60 वर्ष की आयु के उन व्यक्तियों के लिए है, जो गरीबी रेखा से नीचे अथवा सीमांत से थोड़ा ऊपर जीवन बसर कर रहे हैं। योजना का लाभ 25या उससे अधिक सदस्यों के समूहों को पहुंचाया जाता है।

असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को कुछ सामाजिक सुरक्षा लाभ पहुंचाने के लिये सरकार ने कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना 01 जुलाई 2001 से प्रारम्भ की है। इसे भारतीय बीमा निगम के माध्यम से पहले चरण में तीन वर्ष के लिए देश के 50 चुने हुए जिलों में चलाया गया है और प्रत्येक जिले में 10 लाख कृषि श्रमिकों को इसका लाभ पहुंचाया जा रहा है। योजना के अन्तर्गत दुर्घटना बीमा लाभ, धन वापसी, पेंशन और सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। 31 मार्च 2003 तक करीब 02 लाख कृषि श्रमिकों को इस योजना के तहत पंजीकृत किया जा चुका था।

कल्याण कोषः

केन्द्र सरकार श्रम मंत्रालय के माध्यम से वर्तमान में बीड़ी श्रमिकों, चूना पत्थर और डोलामाइट खनन श्रमिकों के लिए पांच कल्याण कोष संचालित कर रही है। इन कोषों का इस्तेमाल स्वास्थ्य देखभाल, आवास, बच्चों के लिए शैक्षिक सहायता, पेय जलापूर्ति आदि क्षेत्रों में श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की कल्याण सुविधाएं जुटाने के लिये किया जाता है। इसके अन्तर्गत लाभार्थियों की संख्या करीब 40 लाख है। केन्द्र सरकार के

अतिरिक्त अनेक राज्य सरकारों ने भी विभिन्न श्रेणियों के असंगठित श्रमिकों के लिए कल्याण कोष स्थापित किये हैं।

प्रयोगात्मक योजनाः

भारत सरकार की योजना के तौर पर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए असंगठित क्षेत्र श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना **(यू.एस.डब्ल्यू.एम.एस.एस.)** प्रारम्भ की गयी है। इस योजना को कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा लागू किया जा रहा है और इसके तीन घटक हैं– स्वास्थ्य बीमा, व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा और वृद्धावस्था पेंशन। इससे प्राप्त लाभों का विवरण निम्नवत् हैं–

(क) चिकित्सा बीमाः इसके अन्तर्गत सदस्य सहित पांच व्यक्तियों के परिवार को स्वास्थ्य बीमा योजना (यू.एच.आई.एस.) के तहत लाभ पहुंचाया जाता है। योजना में प्रतिवर्ष रुपये 30000/– तक अस्पताल उपचार खर्च की अदायगी की जाती है और अगर परिवार के श्रमिक (सदस्य) को दुर्घटना/बीमारी के कारण अस्पताल में उपचार कराना पड़ता है तो उसे रुपये 50/–प्रतिदिन का मुआवजा अधिकतम 15 दिन तक दिया जायेगा। इसके अतिक्ति दुर्घटना के कारण श्रमिक (सदस्य) की मृत्यु हो जाने की स्थिति मे उसके परिवार को बीमा लाभ एकमुश्त रुपये 25000/–दिया जायेगा।

(ख) व्यक्तिगत दुर्घटना बीमाः मृत्यु की स्थिति में या स्थायी अपंगता की स्थिति में रुपये 100000/–का बीमा लाभ प्रदान किया जायेगा।

(ग) पेंशन योजनाः 60 वर्ष आयु पूरी करने या पूर्ण स्थायी अपंग होने पर न्यूनतम पेंशन रुपये 500/–प्रतिमाह अदा की जायेगी। अगर श्रमिक की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में उसके परिवार को पेंशन मिलेगी, जो अंशदान के आधार पर बढ़ी हुई या कम करके अदा की जायेगी।

भावी नीतिः भविष्य के लिए निम्नलिखित कार्यसूची तैयार की गई है–

–देश में संगठित और असंगठित क्षेत्र के लिए व्यापक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम बनाना।

–विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिए धन जुटाने की प्रणाली का विकास, भावी योजना के लिए धन, सभी भागीदारों यानी नियोक्ताओं, कर्मचारियों के लिये धन केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों द्वारा जुटाया जायेगा। योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था के विषय में समुचित तौर तरीके विकसित किये जायेंगे।

–दूसरे श्रम आयोग की सिफारिशों को लागू करना और इन सिफारिशों की समय–समय पर समीक्षा करते हुये भविष्य में आयोगों का गठन।

–समाचारों के सम्प्रेषण, मीडिया नेटवर्किंग, बाहरी गतिविधियों और मीडिया निगरानी, 40 करोड़ श्रमिकों को पहुचाने की चुनौती को पूरा करने की दशा में कार्य करना।

–स्वास्थ्य देखभाल, प्रबन्ध ओर पेंशन योजनाओं का मूल्यांकन, भविष्य में बीमा उद्योग की भूमिका।

–विभिन्न सामाजिक योजनाओं को लागू करने में सार्वजनिक व निजी भागीदारी को बढ़ावा देना, सामाजिक सुरक्षा में इस भागीदारी हेतु समुचित सहयोग की पहचान करना।

असंगठित क्षेत्र श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008

अंसगठित क्षेत्र के कामगारों को सामाजिक सुरक्षा मुहैय्या कराने के लिए केन्द्र सरकार की कोशिशों से अंसगठित क्षेत्र सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 संसद में पारित हो चुका है। इसके तहत असंगठित क्षेत्र के कामगारों की नई परिभाषा तय करने व विकलांगता से जुड़े मामलों को हल करने की कोशिश की गई है। इसके साथ ही असंगठित क्षेत्र के कामगारों की स्वास्थ्य एवं मातृत्व लाभ देने, वृद्धावस्था की सुरक्षा के साथ ही केन्द्र सरकार से मिलने वाले फायदे का कानूनी हक देने की कोशिश की जा रही है। अब तक असंगठित क्षेत्र के मामलों को देखने के लिए स्वतंत्र रूप से कोई भी बोर्ड नहीं है। इस विधेयक में राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा सलाहकार बोर्ड और ऐसे ही बोर्ड राज्य स्तर पर बनाने का प्रावधान है। इस योजना के माध्यम से सरकार द्वारा सर्वप्रथम गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले 23 करोड़ भूमिहीन मजदूरों को लाभ दिया जायेगा। इस विधेयक में यह भी प्रावधान किया गया है कि मजदूर के परिवार के 5 सदस्य साल में तीस हजार रुपये तक का इलाज करवा सकेंगे। विधेयक के प्रमुख तथ्य निम्नवत हैं–

1. **कार्यक्षेत्रः** अधिनियम का कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष है।

2. **सामाजिक सुरक्षा लाभः** इस अधिनियम में प्रावधान है कि केन्द्र सरकार समय–समय पर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के कल्याण के लिए समुचित कल्याण योजना बनायेगी, जिसमें निम्न तथ्यों का समायोजन किया जायेगा–

–जीवन एवं अशक्तता

–स्वास्थ्य एवं मातृत्व लाभ

–वृद्धावस्था संरक्षण

–केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य किसी प्रकार का संरक्षण अथवा लाभ

–राज्य सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों हेतु विभिन्न उपाय एवं नियम समय–समय पर बना सकती है। इनमें प्रोविडेन्ट फंड कार्यस्थल पर चोट या दुर्घटना की स्थिति में क्षतिपूर्ति व्यवस्था श्रमिकों हेतु आवास व्यवस्था, श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि हेतु उपाय, अंत्येष्टि क्रिया, वृद्धावस्था लाभ, आवासीय व्यवस्था आदि प्रमुख हैं।

3. **फंड व्यवस्थाः** उपरोक्त कार्यों हेतु केन्द्र सरकार द्वारा बनाई गई किसी योजना हेतु फंड की व्यवस्था निम्नानुसार की जाती है–

– पूर्णतः केन्द्र सरकार द्वारा

–केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा निश्चित प्रतिशत में अंशदान

–केन्द्र एवं राज्य सरकार, लाभान्वित श्रमिक एवं सेवायोजकों के अंशदान द्वारा की जायेगी।

4. **सामाजिक सुरक्षा सलाहकार बोर्डः** केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए पृथक–पृथक बोर्ड का गठन किया जायेगा।

(क) राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्डः इस बोर्ड का गठन केन्द्रीय स्तर पर किया जायेगा, जिसमें निम्न सदस्य होंगे–

केन्द्रीय श्रम एवं सेवायोजन मंन्त्रालय, अध्यक्ष

महानिदेशक (श्रम कल्याण विभाग), सदस्य, सचिव।

केन्द्र सरकार द्वारा मनोनीत उप–सदस्य, जिनमें 07–07 असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों एवं उनके सेवायोजकों के प्रतिनिधि, 07 राज्य के गणमान्य मनोनीत व्यक्ति, 02 लोकसभा सदस्य, 01 राज्यसभा सदस्य,

05 केन्द्र सरकार एवं 05 राज्य सरकार के सम्बन्धित विभागों एवं मंत्रालयों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। बोर्ड का कार्यकाल 03 वर्ष का होगा तथा एक वर्ष में कम से कम तीन बार बैठक होगी।

(ख) राज्य स्तरीय सामाजिक सुरक्षा बोर्डः इस बोर्ड का गठन राज्य सरकारों द्वारा अपने राज्य में किया जायेगा, जिसमें निम्न सदस्य होंगे–

राज्य के श्रम एवं सेवायोजन मंत्री, अध्यक्ष,

प्रधान सचिव या सचिव (श्रम) सदस्य सचिव,

राज्य सरकार द्वारा मनोनीत 28 सदस्य, जिनमें 07–07 असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों एवं उनके सेवायोजकों के प्रतिनिधि, 05 राज्य के गणमान्य मनोनीत व्यक्ति, 02 राज्य विधानसभा सदस्य, 07 राज्य सरकार के सम्बन्धित विभागों एवं मंत्रालयों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। बोर्ड का कार्यकाल 03 वर्ष का होगा।

5. **पंजीकरणः** इस योजना के तहत किसी भी असंगठित श्रमिक के पंजीकरण हेतु निम्न प्रावधान किये गये हैं–

(क) प्रत्येक असंगठित क्षेत्र का श्रमिक पंजीकरण हेतु योग्य होगा, यदि वह निम्न शर्तों को पूर्ण करता हो–

– उसकी आयु 14 वर्ष पूर्ण हो चुकी हो,

– उसे असंगठित श्रमिक होने का स्व–प्रमाण देना होगा।

(ख) प्रत्येक असंगठित श्रमिक, जो पंजीकरण चाहता है, वह जिला प्रशासन कार्यालय में उक्त हेतु अपील करेगा।

(ग) प्रत्येक पंजीकरण श्रमिक को एक स्मार्ट कार्ड प्रदान किया जायेगा, जिसमें उसकी पहचान संख्या अंकित होगी।

(घ) यदि श्रमिक किसी ऐसी योजना में लाभार्थी है, जिसमें उसके अंशदान का प्रावधान है, तो उसे अंशदान करने के बाद ही वह सुविधा प्राप्त होगी।

(ड़) जिस योजना में केन्द्र/राज्य सरकार का अंशदान होगा, वहां उनके द्वारा निरंतर योगदान किया जायेगा।

6. **अन्यः** केन्द्र सरकार, केन्द्र एवं राज्य स्तरीय बोर्ड को समय–समय पर निर्देशित कर सकती हैं।

श्रम संघ (संशोधन) अधिनियम 2001:

औद्योगिक संस्थानों में श्रमिक संघो की बहुलता को नियंत्रित करने, औद्योगिक प्रजातंत्र को बढ़ावा देने तथा श्रम संघों के सुव्यवस्थित विस्तार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1926 के श्रम संघ अधिनियम को संशोधित करते हुए नये श्रम संघ (संशोधन) विधेयक 2001 को अपनी स्वीकृति प्रदान की गयी। रामानुजम समिति की संस्तुति के आधार पर लागू किये गये श्रम संघ (संशोधन) अधिनियम 2001 में किसी प्रतिष्ठान में श्रम संघ के गठन के लिए कम से कम 10 प्रतिशत अथवा 100 कर्मचारियों (इनमें से जो भी कम हो) की सदस्यता को अनिवार्य किया गया है। विधेयक के अनुसार किसी भी दशा में सदस्यों की संख्या 07 से कम नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यूनियन के एक तिहाई अथवा 5 (जो भी कम हो) सदस्यों को प्रतिष्ठान का कर्मचारी होना चाहिए। विधेयक के प्राविधानानुसार श्रम संघ का वार्षिक सदस्यता शुल्क कम से कम 12 रुपये` प्रतिवर्ष देना आवश्यक है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948:

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 में केन्द्र और राज्य सरकारों के अन्तर्गत अनुसूचित रोजगारों में नियोजित श्रमिकों की मजदूरी के निर्धारण, समीक्षा, संशोधन और क्रियान्वयन की व्यवस्था की गयी है। केन्द्र के अधीन अनुसूचित रोजगारों की संख्या 46 है, जबकि राज्य क्षेत्र में यह संख्या 1542 है। मजदूरों को मुद्रास्फीति के प्रभाव से बचाए रखने के लिए केन्द्र सरकार ने परिवर्तनीय मंहगाई भत्ता की योजना लागू की है, जो उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से जुड़ा हुआ ह। यह मंहगाई भत्ता हर छह महीने बाद 01 अप्रैल और 01 अक्टूबर से बढ़ा दिया जाता हैं। अभी तक 26 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों ने न्यूनतम मजदूरी के घटक के रूप में परिवर्तनीय मंहगाई भत्ते की व्यवस्था अपनायी है।

समान न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था के होने के कारण केन्द्र ने 1996 में न्यूनतम मजदूरी को न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करने की घोषणा की है और राष्ट्रीय ग्रामीण श्रमिक आयोग की 1991 में की गई सिफारिश पर शुरू में न्यूनतम मजदूरी 35 रुपये प्रतिदिन निर्धारित की, जो बाद में बढ़े हुए मूल्य स्तर के आधार पर बढ़ायी जानी थी। चूंकि राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अपनाने की व्यवस्था संविधान में नहीं है। इसलिए सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों से यह सुनिश्चित करने का आग्रह किया गया कि 01 फरवरी 2004 से किसी भी अनुसूचित रोजगार में 66 रुपये` प्रतिदिन की राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी नहीं दी जाए।

मजदूरी भुगतान (संशोधन) विधेयक, 2005: श्रमिकों के वेतन भुगतान में होने वाली विसंगतियों के लिए जिम्मेदारी तय करने वाले मजदूरी भुगतान (संशोधन) विधेयक 2005 की संसद के दोनों संसदों ने पारित कर लागू करवाया है। विधेयक के तहत वेतन की सीमा को 16000 रुपये` प्रतिमाह से बढ़ाकर 65000 रुपये` किया गया है। इसके प्रभावी होने से श्रमिकों के वेतन भुगतान में होने वाली विसंगतियों को रोकने में मदद मिलेगी।

असंगठित श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा पायलट योजनाः

असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए एक नईसामाजिक सुरक्षा पायलट योजना का शुभारम्भ सरकार ने 23 जनवरी 2004 को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जयंती पर किया। पायलट योजना को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 07 जनवरी 2003 को मंजूरी प्रदान की थी। पायलट योजना को 50 चुनिंदा जिलों में कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड संगठन (ई.पी.एफ.ओ.) के माध्यम से लागू किया गया। इस योजना से इन कामगारों को पारिवारिक पेंशन, बीमा व चिकित्सा जैसी सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

इस योजना से असंगठित क्षेत्र के लगभग 57 करोड़ कामगार लाभान्वित होंगे। योजना के तहत उपलब्ध सामाजिक वर्ग के श्रमिकों को 50 रुपये` प्रतिमाह का योगदान करना होगा, जबकि 100 रुपये` प्रतिमाह का योगदान नियोक्ता का होगा। 36–50 वर्ष आयु वर्ग के श्रमिकों के मामले में ये राशियां क्रमशः 100 रुपये` व 200 रुपये होंगी। सरकार का योगदान श्रमिक के वेतन (वर्तमान में 100 रुपये प्रतिमाह) का 1.16 प्रतिशत होगा।

10.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप जान चुके हैं कि सामाजिक सुरक्षा विभिन्न संगठनों के माध्यम से, अपने सदस्यों के लिए कुछ आकस्मिक घटनाओं एवं जोखिमों से बचाव के लिए सुरक्षा प्रदान करती है, जिसे सामाजिक सुरक्षा कहा जाता है। इन घटनाओं में जोखिम अयोग्यता, वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता, गर्भावस्था (मातृत्व) तथा मृत्यु शामिल हैं। समाज के संगठनों द्वारा व्यक्ति तथा उसके परिवार के भरण पोषण करने की सुरक्षा प्रदान की जाती है।

सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए सामाजिक बीमा तथा अनिवार्य व ऐच्छिक बीमा, सरकारी कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि योजना, बोनस, पारिवारिक भत्ता तथा जन स्वास्थ्य सेवाएं लाभदायक हैं। सामाजिक सुरक्षा सामाजिक प्रगति व कल्याण के लिए उपयोगी है। सामाजिक सुरक्षा मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता का विकास कर राष्ट्रीय समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में सामाजिक सुरक्षा के लिए बनाये गये अधिनियमों का भी इसमे महत्वपूर्ण योगदान है।

10.10 शब्दावली

सामाजिक सुरक्षा: सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है, जो समाज द्वारा एक उपयुक्त संगठन के माध्यम से अपने सदस्यों को आकस्मिक दुर्घटनाओं तथा जोखिमों से बचाती है।

सामाजिक बीमा: सामाजिक बीमा सामाजिक सुरक्षा का एक अंग है, इसका मुख्य उद्देश्य आय सुरक्षा प्रदान करना है। यह श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का सबसे प्रभावी तरीका है।

सामाजिक सुरक्षा अधिनियमः सामाजिक सुरक्षा अधिनियम में व्यक्ति को उल्लिखित नियमों व शर्तों के अधीन सुविधा प्रदान की जाती है।

सामाजिक सहायताः सामाजिक सहायता वह सहायता है, जो व्यक्ति के आय के साधनों पर विचार किये बिना आवश्यकतानुसार प्रदान की जाती है। इसमें मानवीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये। सामाजिक सुरक्षा की विशेषताओं के बारे में भी बताइये।

2. सामाजिक सुरक्षा की परिभाषा दीजिये और इसके उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिये।

3. सामाजिक बीमा का अर्थ स्पष्ट कीजिये। सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में अन्तर बताइये।

4. सामाजिक सुरक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके तत्वों के बारे में बताइये।

5. सामाजिक सुरक्षा किसे कहते हैं? सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिये।

6. भारत में सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों का वर्णन कीजिये।

10.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1–''असंगठित महिला श्रमिकों की आय–व्यय बचत व रोजगार की प्रवृत्तियां'' पृष्ठ–377–378

2–कटारिया, राजपाल, 2011, ''श्रमिक विधियां'', द्वितीय संस्करण, ओरिएन्ट पब्लिशिंग कम्पनी पृष्ठ–43, 57

3–प्रतियोगिता दर्पण, 2011, भारतीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ–126

4–भगोलीवाल, टी0 एन0, ''श्रम अर्थशास्त्र एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', पृष्ठ–376

5–मामोरिया चतुर्भुज, 2000, सेविवर्ग प्रबन्ध एवं औद्योगिक सम्बन्ध'', साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ–577

6.–सेविवर्ग एवं औद्योगिक सम्बन्ध, पृष्ठ– 577–578

7–सिन्हा, वी0सी0, सिन्हा, जया, ''औद्योगिक समाज विज्ञान'' साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ –440

8–I.L.O Approaches to social secarity, 1942, पृष्ठ–80

इकाई-11 श्रम कल्याण: अवधारणा, सिद्धांत एवं दृष्टिकोण

(Labour Welfare: Concept, Theories and Approaches)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 श्रमिक कल्याण: लक्ष्य और उद्देश्य

11.3 श्रमिक कल्याण**:** अर्थ

11.4 श्रमिक कल्याण**:** परिभाषाएं

11.5 श्रमिक कल्याण**:** भारत में विकास

11.6 श्रमिक कल्याण के प्रमुख पहलू

11.7 श्रम कल्याण के कुछ प्रमुख सिद्धांत

11.8 बोध प्रश्न

11.9 सारांश

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे कि-

श्रम कल्याण की अवधारणा को समझ सकें,

श्रम कल्याण के सिद्धांतों को समझ सकें,

श्रम कल्याण के दृष्टिकोण के विषय में विस्तार से जान सकें,

11.1 प्रस्तावना

श्रम कल्याण का तात्पर्य श्रमिकों और उनके परिवारों की भलाई, जीवन की समग्र गुणवत्ता और सामाजिक सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए नियोक्ताओं, सरकार और अन्य हितधारकों द्वारा किए गए प्रयासों और पहलों से है। यह एक व्यापक अवधारणा है, जो केवल कानूनी आवश्यकताओं के अनुपालन से आगे बढ़कर कार्यबल के समग्र विकास और उत्थान तक फैली हुई है। इसके मूल में, श्रम कल्याण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि श्रमिकों को केवल उत्पादन के कारकों के रूप में नहीं, बल्कि मूल्यवान व्यक्तियों के रूप में माना जाए, जो कार्यस्थल में सम्मान, प्रतिष्ठा और उचित उपचार के पात्र हैं। यह मानता है कि एक सामंजस्यपूर्ण और उत्पादक कार्य वातावरण के लिए एक सुशनुमा और संतुष्टिदायक कार्यबल महत्वपूर्ण है।

श्रम कल्याण में श्रमिकों की शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेष रूप से सुझाये गये उपायों और लाभों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। इनमें सुरक्षित और स्वस्थ कामकाजी स्थितियां, उचित वेतन, उचित काम के घंटे, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच, सामाजिक सुरक्षा लाभ, आवास सुविधाएं, शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर और अवकाश और मनोरंजन के प्रावधान शामिल हो सकते हैं। इन कल्याणकारी उपायों की पेशकश के जरिये, नियोक्ता और सरकार श्रमिकों की उत्पादकता से परे उनकी भलाई की देखभाल के महत्व को स्वीकार करते हैं। जब कर्मचारी मूल्यवान और समर्थित महसूस करते हैं, तो उनके अपने संगठनों के प्रति अधिक प्रेरित, उत्पादक और वफादार होने की संभावना बढ़ जाती है।

श्रम कल्याण का विस्तार लैंगिक समानता को बढ़ावा देने और कार्यस्थल में किसी भी प्रकार के भेदभाव या शोषण को रोकने तक भी है। यह महिलाओं, बच्चों और हाशिए पर रहने वाले समुदायों जैसे कमजोर समूहों के समावेश और सुरक्षा पर जोर देता है। यह सुनिश्चित करता है कि उनके साथ निष्पक्षता और समानता के साथ व्यवहार किया जाए। इसके अलावा, श्रम कल्याण एक आकार-सभी के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण नहीं है। यह कार्यबल की विविध

आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखता है, यह पहचानते हुए कि विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों को अनुरूप हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। श्रम कल्याण केवल एक कानूनी दायित्व नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक जिम्मेदारी है। नियोक्ताओं और नीति निर्माताओं को सक्रिय रूप से श्रमिकों की भलाई को उनकी कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी और राष्ट्र-निर्माण प्रयासों का एक अनिवार्य हिस्सा मानना चाहिए।

श्रम कल्याण एक बहुआयामी अवधारणा है, जो श्रमिकों की देखभाल और उन्हें सशक्त बनाने की प्रतिबद्धता को दर्शाती है। यह सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और कार्य की दुनिया में समावेशिता को बढ़ावा देने का एक अनिवार्य पहलू है। श्रम कल्याण में निवेश करके संगठन और सरकारें सभी के लिए अधिक न्यायसंगत, मानवीय और संपन्न समाज बनाने में योगदान देती हैं।

भारत में श्रम कल्याण से तात्पर्य देशभर में श्रमिकों की भलाई, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा में सुधार के लिए भारत सरकार और नियोक्ताओं द्वारा लागू किए गए उपायों और पहलों से है। यह एक व्यापक दृष्टिकोण है, जिसका उद्देश्य श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करना, उनकी कार्य स्थितियों को बढ़ाना और उनके जीवन की समग्र गुणवत्ता को बढ़ावा देना है।

भारत में श्रमिक कल्याण की प्राथमिक नींव में से एक श्रम कानूनों और विनियमों का व्यापक समूह है, जो श्रमिकों के अधिकारों और कल्याण के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करता है। ये कानून न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटे, व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा लाभ और बाल श्रम और जबरन श्रम के खिलाफ सुरक्षा जैसे क्षेत्रों को संबद्ध करते हैं। सरकार श्रम बाजार की बदलती गतिशीलता के अनुकूल होने और श्रमिकों की भलाई सुनिश्चित करने के लिए इन कानूनों को नियमित रूप से अद्यतन और संशोधित करती है।

सामाजिक सुरक्षा उपाय श्रमिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कर्मचारी भविष्य निधि (ई.पी.एफ और योजनाएं सामाजिक सुरक्षा के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जो श्रमिकों और उनके परिवारों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान

करती हैं। ई.पी.एफ. यह सुनिश्चित करता है कि कर्मचारी अपने वेतन का एक हिस्सा भविष्य निधि में योगदान करें, जो बचत और सेवानिवृत्ति लाभ के रूप में कार्य करता है। ईएसआई योजना बीमित श्रमिकों और उनके आश्रितों को चिकित्सा और नकद लाभ प्रदान करती है, जिससे उन्हें आपात स्थिति के दौरान स्वास्थ्य देखभाल और वित्तीय सहायता मिल जाती है।

भारत सरकार श्रमिकों के लिए कामकाजी परिस्थितियों और सुरक्षा में सुधार पर भी ध्यान केंद्रित करती है। फैक्ट्री अधिनियम और अन्य श्रम कानून कार्यस्थल की स्वच्छता, सुरक्षा उपायों और कल्याणकारी सुविधाओं के लिए मानक निर्धारित करते हैं। नियोक्ताओं को अपने कार्यबल की भलाई सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कार्य वातावरण, सुरक्षित उपकरण और प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है।

श्रम कल्याण पहल का विस्तार सिर्फ कार्य संबंधी लाभों से परे है। सरकार ने मातृत्व लाभ की शुरुआत की है, जिससे महिला श्रमिकों को गर्भावस्था और प्रसव के दौरान सवैतनिक मातृत्व अवकाश और अन्य लाभ प्राप्त करने की सुविधा मिल गई है। श्रमिकों की रोजगार क्षमता बढ़ाने और उन्हें बेहतर नौकरी के अवसरों तक पहुंचने में सक्षम बनाने के लिए कौशल विकास और शिक्षा कार्यक्रमों को भी बढ़ावा दिया जाता है। बाल श्रम उन्मूलन भारत में श्रमिक कल्याण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है। सरकार ने बाल श्रम उन्मूलन और बच्चों की शिक्षा और शोषण से सुरक्षा का अधिकार सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

श्रम कल्याण उपायों के कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाने और श्रमिकों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, भारत में कुछ राज्यों ने श्रम कल्याण बोर्ड स्थापित किए हैं। ये बोर्ड कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन की निगरानी करते हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में श्रमिकों को सहायता प्रदान करते हैं।

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सी.एस.आर.) भी भारत में श्रमिक कल्याण का एक महत्वपूर्ण घटक बन गया है। एक निश्चित आकार और लाभप्रदता वाली कंपनियों को अपने मुनाफे का एक हिस्सा सीएसआर गतिविधियों के लिए आवंटित करना अनिवार्य है, जिसमें अक्सर श्रम कल्याण से संबंधित पहल शामिल होती हैं।

श्रम कल्याण को बढ़ावा देने के प्रयासों के बावजूद, विशेषकर अनौपचारिक क्षेत्र में चुनौतियां बनी हुई हैं। सार्वभौमिक कवरेज सुनिश्चित करने और विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में श्रमिकों की विविध आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए सरकार, नियोक्ताओं और अन्य हितधारकों से निरंतर समर्पण और सहयोगात्मक प्रयासों की आवश्यकता होती है। निष्कर्षतः भारत में श्रम कल्याण अपने कार्यबल की सुरक्षा और सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और एक अधिक समावेशी और न्यायसंगत समाज बनाने के प्रति देश की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। श्रम कल्याण को बढ़ाने के निरंतर प्रयास एक संपन्न और संतुष्ट कार्यबल को बढ़ावा देने में योगदान करते हैं, जो अंततः भारत के सामाजिक और आर्थिक विकास को आगे बढ़ाता है।

भारत की श्रमशक्ति में बड़ी संख्या में अशिक्षित श्रमिकों से लेकर उच्च शिक्षित और कुशल पेशेवरों का एक बड़ा समूह शामिल है। भारत में श्रमिक कल्याण गतिविधियों की शुरुआत 1837 में हुई। आगामी वर्षों के दौरान इनमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। यह इकाई इन परिवर्तनों और इस अवधि में शामिल किए गए परिवर्धन का विवरण है। कुल मिलाकर, यह भारतीय श्रम कल्याण परिदृश्य की एक तस्वीर पेश करता है। भारत की 10 पंचवर्षीय योजनाओं का भी श्रम परिदृश्य पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, भारतीय योजना आयोग ने बाल श्रम, बंधुआ मजदूरी, महिला श्रम और व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य जैसे विभिन्न क्षेत्रों में श्रमिकों के कल्याण को बढ़ाने के लिए उपाय किए हैं।

भारत में कल्याण कार्य (मोटे तौर पर परिभाषित) विभिन्न सरकारी और गैरसरकारी संगठनों द्वारा किया जाता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं राष्ट्रीय सरकार, राज्य सरकार, ट्रेड यूनियन, सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के गैरसरकारी

संगठन। इस क्षेत्र की गतिविधियों में आवास सुविधाओं, शिक्षा, व्यावसायिक सुरक्षा और स्वास्थ्य, बाल और बंधुआ मजदूरी की रोकथाम और कामकाजी महिलाओं के कल्याण में वृद्धि के प्रावधान शामिल हैं। निजी क्षेत्र के कल्याण उपाय समान प्रकृति के हैं। इस संबंध में पहल करने वाली उल्लेखनीय कंपनियां टाटा और लार्सन एंड टुब्रो हैं। इकाई में आप जान सकेंगे कि एक कल्याणकारी राज्य की संरचना उसके सामाजिक सुरक्षा ढांचे पर टिकी होती है। सरकार, नियोक्ताओं और ट्रेड यूनियनों ने श्रमिकों की स्थिति में सुधार को बढ़ावा देने के लिए बहुत कुछ किया है। हालांकि, अब भी बहुत कुछ करने की जरूरत है।

"कल्याण" शब्द का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के शारीरिक, सामाजिक और मानसिक वातावरण के संदर्भ में उसके जीवन यापन से है। श्रमिक कल्याण की अवधारणा में काफी बदलाव आया है। देश का सामाजिक और आर्थिक विकास श्रम कल्याण और श्रम सुरक्षात्मक कानूनों के अधिनियमन की ओर होना चाहिए। औद्योगिक जगत में अपने अस्तित्व के लिए किसी व्यक्ति का अपने पर्यावरण के साथ समायोजन आवश्यक है।

एक श्रमिक को उसकी सेवाओं के प्रकार के लिए भुगतान किया जाता है, लेकिन भुगतान कार्य की प्रकृति, उसकी दक्षता, उद्योग की भुगतान करने की क्षमता और उस विशेष उद्योग में उसके काम के महत्व पर निर्भर करता है।

एक कार्यकर्ता को कार्यस्थल पर संतुलन बनाए रखना होता है। उसे शारीरिक कामकाजी परिस्थितियों के साथ-साथ पर्यवेक्षण के प्रकार, सहकर्मियों आदि के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। एक कार्यकर्ता को उसके कार्य समूह, समुदाय, परिवार और पड़ोस से जो स्वीकृति, सम्मान, सद्भावना, ध्यान और मान्यता मिलती है, वह श्रम कल्याण की आधुनिक अवधारणा का एक अभिन्न अंग है। श्रमिक की अपने वेतन से भोजन, कपड़े और आश्रय जैसी शारीरिक जरूरतों को पूरा करने की क्षमता श्रम कल्याण की भौतिक अवधारणा को दर्शाती है।

लेकिन आधुनिक समाज में आर्थिक स्थिति उसकी सामाजिक स्थिति को नियंत्रित करती है; भोजन का वह प्रकार, जिसे वह वहन कर सकता है, उसके और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा पहने जाने वाले परिधानों के प्रकार और

गुणवत्ता तथा घर की प्रकृति और प्रकार की सुख-सुविधाएं उसकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती हैं। इस प्रकार कल्याण एक भौतिक अवधारणा के साथ-साथ एक सामाजिक अवधारणा भी है।

प्रत्येक समाज की अपनी नैतिक संहिताएं और आचरण होते हैं। एक कार्यकर्ता को अपने नैतिक मूल्यों का पालन करना होता है। यह भी ध्यान रखना होता है कि यह भी ध्यान रखना होता है कि उसे समाज के लिए क्या करना है और क्या नहीं करना है\ उदाहरण के लिए, निषेध एक राज्य कानून हो सकता है, लेकिन कुछ सामाजिक अवसरों जैसे विवाह समारोह, मृत्यु समारोह आदि पर मेहमानों को पेय उपलब्ध कराना एक पारंपरिक प्रथा हो सकती है।

श्रमिक कल्याण की भौतिक, सामाजिक एवं नैतिक ये सभीअवधारणाएँ एक दूसरे से संबंधित हैं। धन-मजदूरी की क्रय शक्तियाँ एक श्रमिक की सामाजिक स्थिति निर्धारित करती हैं और समाज की नैतिकता उसके दिन-प्रतिदिन के व्यवहार को नियंत्रित करती है। इस प्रकार कल्याण एक समग्र अवधारणा है। दूसरी ओर अधिनायकवादी अवधारणा, श्रम कल्याण की अवधारणा समाज-दर-समाज, देश-दर-देश भिन्न होती है और यह बदलते समय के साथ बदलती भी है।

अतः श्रमिक कल्याण की न्यूनतम एवं अधिकतम शर्तें तय करना कठिन है। पश्चिमी श्रमिकों के लिए जो भी न्यूनतम आवश्यकताएं हैं, वे विकासशील देश के श्रमिकों के लिए अधिकतम हो सकती हैं। इसी तरह, अधिकारियों के लिए जो न्यूनतम है वह निचले कैडर के कर्मचारियों के लिए अधिकतम हो सकता है। युवा श्रमिकों की जरूरतें पुराने श्रमिकों से भिन्न होती हैं, यहां तक कि समान श्रमिकों के लिए भी उनके जीवन के विभिन्न चरणों में कल्याण की जरूरतें अलग-अलग होती हैं। इस प्रकार कल्याण एक सापेक्ष अवधारणा है, इसका संबंध समय, आयु और संस्कृति, सामाजिक और नैतिक मूल्यों आदि से है।

11.2 श्रमिक कल्याण: लक्ष्य और उद्देश्य

श्रम कल्याण का उद्देश्य मानवीय आधार पर श्रमिकों के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करना है। इसका उद्देश्य जरूरतमंदों, गरीबों और सबसे योग्य समुदाय की मदद करना है। श्रमिक कल्याण का प्रमुख उद्देश्य श्रमिकों का शोषण कम करना है। प्रबंधन कुशल, उत्पादक, मेहनती, ईमानदार और कानून का पालन करने वाले कर्मचारी चाहता है, जिन्हें उदार कल्याणकारी उपाय प्रदान करके आकर्षित किया जा सकता है। ऐसे उपायों से उद्योग में औद्योगिक संबंधों में भी सुधार होता है।

विभिन्न अध्ययनों के अधार पर श्रमिक कल्याण के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

क) कर्मचारियों को सामाजिक सुविधा प्रदान करना।

ख) कर्मचारियों के समग्र सुधार का समर्थन करना।

ग) कर्मचारियों को अप्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करना।

घ) कर्मचारियों में जिम्मेदारी और अपनेपन की भावना विकसित करने में योगदान देना।

ङ) कर्मचारियों के लिए कार्यस्थल पर काम करने की स्थिति में सुधार करना।

च) मौजूदा कार्यबल को बनाए रखना।

छ) काम से अनुपस्थिति की दर और नौकरी से श्रम कारोबार को कम करना।

ज) कर्मचारियों के जीवन को आरामदायक और खुशहाल बनाना।

झ) कार्यस्थल पर कर्मचारियों की उत्पादकता और दक्षता में सुधार करना।

ञ) स्वस्थ और उचित कामकाजी परिस्थितियां प्रदान करना।

ट) कर्मचारियों, परिवारों और समग्र रूप से समाज की बेहतरी सुनिश्चित करना।

11.3 श्रमिक कल्याण: अर्थ

श्रम कल्याण नियोक्ताओं, ट्रेड यूनियनों, सरकारी और गैरसरकारी संस्थानों और एजेंसियों द्वारा श्रमिकों की भलाई की देखभाल करने से संबंधित है। कल्याण में वह सब कुछ शामिल है, जो कर्मचारियों के आराम और सुधार के लिए किया जाता है और वेतन के अतिरिक्त प्रदान किया जाता है। कल्याण कर्मचारियों के मनोबल और प्रेरणा को ऊंचा रखने में मदद करता है, ताकि कर्मचारियों को लंबे समय तक बनाए रखा जा सके। कर्मचारी कल्याण में काम करने की स्थिति की निगरानी, स्वास्थ्य के लिए बुनियादी ढांचे के माध्यम से औद्योगिक सद्भाव का निर्माण, औद्योगिक संबंध और श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए बीमारी, दुर्घटना और बेरोजगारी के खिलाफ बीमा जैसे बिंदु शामिल हैं।

ILO के अनुसार, श्रम कल्याण को एक शब्द के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें ऐसी सेवाओं, सुविधाओं और सुख-सुविधाओं को शामिल किया जाता है, जो उपक्रमों में या उनके आसपास स्थापित की जा सकती हैं, ताकि उनमें कार्यरत व्यक्तियों को स्वस्थ, अनुकूल वातावरण में अपना काम करने में सक्षम बनाया जा सके और उन्हें अच्छे स्वास्थ्य और उच्च मनोबल के लिए अनुकूल सुविधाएं प्रदान की जा सकें।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अुनसार: 'श्रम कल्याण श्रमिकों के जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास है।' ऐसी सेवाएं और सुविधाएं प्रदान करने की आवश्यकता उद्योगों की सामाजिक जिम्मेदारी, लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने की इच्छा और कर्मचारियों के लिए चिंता से उत्पन्न होती है। कल्याण में वह सब कुछ शामिल है, जो कर्मचारियों के आराम और सुधार के लिए किया जाता है और वेतन के अलावा प्रदान किया जाता है।

कल्याण कर्मचारियों के मनोबल और प्रेरणा को ऊंचा रखने में मदद करता है, ताकि कर्मचारियों को लंबे समय तक बनाए रखा जा सके। कल्याणकारी उपाय केवल मौद्रिक संदर्भ में नहीं, बल्कि किसी भी प्रकार या रूप में होने चाहिए। कर्मचारी कल्याण में काम करने की स्थिति की निगरानी, स्वास्थ्य के लिए बुनियादी ढांचे के माध्यम से

औद्योगिक सद्भाव का निर्माण, औद्योगिक संबंध और श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए बीमारी, दुर्घटना और बेरोजगारी के खिलाफ बीमा शामिल हैं।

श्रम कल्याण में नियोक्ता की वे सभी गतिविधियाँ शामिल हैं, जो कर्मचारियों को वेतन या वेतन के अलावा कुछ सुविधाएं और सेवाएं प्रदान करने के लिए निर्देशित होती हैं। श्रम कल्याण का तात्पर्य बेहतर कार्य परिस्थितियाँ प्रदान करना है, उदाहरण के लिए- उचित प्रकाश व्यवस्था, सफाई, कम शोर, आदि और सुविधाएं, मनोरंजन, आवास, शिक्षा आदि। आर्थर जेम्स टॉड के अनुसार, 'श्रम कल्याण का अर्थ है, कर्मचारियों के आराम और सुधार, बौद्धिक और सामाजिक सुधार के लिए किया गया वेतन, जो कि उद्योग की आवश्यकता नहीं है।'

11.4 श्रमिक कल्याण: परिभाषाएं

श्रम कल्याण को अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया है, लेकिन हर परिभाषा का अपना महत्व है।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी श्रम कल्याण को श्रमिकों के जीवन को सार्थक बनाने के प्रयासों के रूप में बताती है।

चैंबर का शब्दकोष कल्याण को आगे बढ़ने या अच्छा प्रदर्शन करने की स्थिति के रूप में समझाता है, जैसे - विपत्ति से मुक्ति, स्वास्थ्य का आनंद, समृद्धि आदि।

औद्योगिक श्रम संगठन, ILO) के अनुसार, "श्रम कल्याण में ऐसी सेवाएं और सुविधाएं शामिल हैं, जो स्वस्थ और अनुकूल वातावरण में अपना काम करने और उन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए उपक्रम के आसपास स्थापित की जा सकती हैं, जो उनके स्वास्थ्य में सुधार करती हैं और उच्च मनोबल लाती हैं।"

इसके अलावा, **ILO की रिपोर्ट** श्रमिक कल्याण के बारे में ऐसी सेवाओं, सुविधाओं और सुख-सुविधाओं की बात करती है, जो उपक्रमों के बाहर या आसपास स्थापित की जा सकती हैं, ताकि उनमें कार्यरत व्यक्तियों को

स्वस्थ और अनुकूल वातावरण में अपना काम करने में सक्षम बनाया जा सके और उन्हें अच्छे स्वास्थ्य और उच्च मनोबल के लिए अनुकूल सुविधाएं प्रदान की जा सकें। (आईएलओ, एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन रिपोर्ट 1947)।

सामाजिक विज्ञान के विश्वकोश में कल्याण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है- - "मौजूदा औद्योगिक प्रणाली के भीतर काम करने वाले और कभी-कभी रहने वाले कर्मचारियों के लिए कानून, उद्योग के रीति-रिवाजों और डाई मार्केट की स्थितियों से परे एक सांस्कृतिक स्थिति स्थापित करने के लिए नियोक्ताओं के स्वैच्छिक प्रयास ही कल्याण हैं।"

आर्थर जेम्स टॉड के अनुसार, "श्रम कल्याण का अर्थ कर्मचारियों के आराम और सुधार, बौद्धिक और सामाजिक सुधार के लिए भुगतान की गई मजदूरी से अधिक है, जो उद्योग की आवश्यकता नहीं है।"

एडवर्ड्स (1953) के अनुसार - "कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का समय, किसी विशेष स्थान पर उसकी शारीरिक उपस्थिति, श्रम की गतिविधियों को भी खरीद सकता है, लेकिन उत्साह, पहल, निष्ठा और कर्तव्य के प्रति समर्पण को नहीं खरीदा जा सकता है। उन्हें सही नियोक्ता-कर्मचारी संबंधों, मानव कार्रवाई की प्रमुख प्रेरक इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए रचनात्मक अवसरों के प्रावधान के माध्यम से ही स्थापित करना होता है।

1931 में रॉयल कमीशन ऑन लेबर ने मुख्य रूप से श्रमिकों के साथ होने वाले कठोर व्यवहार के कारण श्रमिक कल्याण की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रकार श्रम कल्याण की परिभाषा का सार श्रमिकों के बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक कल्याण में सुधार पर जोर देता है। ऊपर उल्लिखित परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रम कल्याण का उद्देश्य बेहतर जीवन और कामकाजी परिस्थितियां प्रदान करना है। यह या तो नियोक्ता द्वारा स्वैच्छिक प्रयास होना चाहिए या कुछ मामलों में, सरकार को श्रमिकों के कल्याण की जिम्मेदारी लेनी चाहिए या श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए कानूनी उपाय लागू करने चाहिए।

11.5 श्रमिक कल्याण: भारत में विकास

भारत में श्रमिक कल्याण कार्यक्रम परोपकारी, धार्मिक नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से विकसित किए जाते हैं। औद्योगिक क्रांति की शुरुआत के साथ, बड़े शहरों में बड़े पैमाने पर उद्योग स्थापित किए गए। मजदूरों का गांवों से शहरों की ओर पलायन हुआ। वे उच्च वेतन, आराम और शहरी जीवन के मनोरंजन से आकर्षित थे, लेकिन उन्हें खराब कामकाजी परिस्थितियों, काम के लंबे घंटों, कम वेतन, स्वास्थ्य संबंधी खतरों और सुरक्षा उपायों के अभाव और असंतोषजनक कामकाजी और रहने की स्थितियों का सामना करना पड़ा।

पहला कारखाना अधिनियम 1981 में पारित किया गया था। उस समय यह बिजली का उपयोग करने वाले कम से कम **100** श्रमिकों को रोजगार देने वाले कारखानों पर लागू था। आज, यह अधिनियम बिजली की सहायता से **10** या अधिक श्रमिकों और बिजली के उपयोग के बिना **20** या अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाले कारखानों में लागू किया जाता है।

भारत सरकार ने 1907 में औद्योगिक श्रम की स्थितियों की समीक्षा के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति की सिफारिशों के आधार पर सभी मौसमी कारखानों के लिए एक अधिक व्यापक अधिनियम, **1910** का भारतीय कारखाना अधिनियम लागू किया गया। वयस्क पुरुष श्रमिकों के लिए काम के घंटे प्रति दिन **12** निर्धारित किये गये, जो अब प्रतिदिन आठ घंटे हो चुके हैं। भारत और बर्मा के रेलवे कर्मचारियों के सम्मिलित समाज द्वारा श्रमिकों के कल्याण के हित में कुछ स्वैच्छिक प्रयास किए गए थे। प्रिंटर्स यूनियन, कलकत्ता (1905) और बॉम्बे पोस्टल यूनियन **(1907)** ने पारस्परिक बीमा योजनाएं, रात्रि विद्यालय, शैक्षिक वजीफे, अंतिम संस्कार भत्ते आदि की शुरुआत की।

प्रथम विश्व युद्ध 1914 ने नए विकास को जन्म दिया। कारखानों की संख्या और उनमें कार्यरत व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हुई। बढ़ती कीमतों और मुनाफे के साथ मजदूरी में कोई तालमेल नहीं रहा। 1919 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना श्रमिक आंदोलन के इतिहास में एक मील का पत्थर थी। **ILO** ने श्रमिकों के बीच एकता पैदा की।

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एआईटीयूसी) की स्थापना **1920** में हुई थी। इसके दो साल बाद 1922 में भारतीय कारखाना संशोधन अधिनियम पारित किया गया। यह कम से कम **20** व्यक्तियों को रोजगार देने वाली सभी फैक्ट्रियों पर लागू था। इसके अनुसार 12 और 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को प्रतिदिन **6** घंटे से अधिक काम करने की अनुमति नहीं थी। शाम 7:00 बजे से सुबह 05:30 के बीच बच्चों और महिलाओं को काम पर नहीं रखा जाता था। रॉयल कमीशन की नियुक्ति 1929 में की गयी। इसने श्रमिकों की स्थितियों का विस्तृत सर्वेक्षण किया, जिसके बाद वेतन भुगतान अधिनियम, न्यूनतम वेतन अधिनियम आदि जैसे कई कानून बनाये गये। 1949 में श्रम जांच समिति (रेगे समिति) की नियुक्ति की गयी। समिति ने काम करने की स्थिति, आवास, मलिन बस्ती, श्रमिकों की शिक्षा आदि का विस्तृत सर्वेक्षण किया। इसी बीच द्वितीय विश्वयुद्ध का भी गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न केंद्रीय ट्रेड यूनियनों: **AITUC (1949), HMS (1948), INTUC (1994), BMS (1995), CITU (1990)** और **NLO** की स्थापना की गई।

रेगे समिति की सिफारिशों के आधार पर भारत की सरकारों ने वर्तमान फैक्ट्री अधिनियम, **1948** को अधिनियमित किया। भारत के संविधान की राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत में यह भी कहा गया है कि, "राज्य एक सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और बढ़ावा देकर लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा जिसमें न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा।"

सभी पंचवर्षीय योजनाओं ने श्रमिकों के हितों की रक्षा की है। श्रम पर राष्ट्रीय आयोग **1960-69** में शुरू किया गया था। इसने श्रमिक समस्याओं को सबसे व्यापक रूप से निपटाया है।

श्रमिक कल्याण की अवधारणा श्रमिकों और उनके परिवारों की भलाई, स्वास्थ्य, सुरक्षा और जीवन की समग्र गुणवत्ता को बढ़ावा देने के लिए नियोक्ताओं और सरकार द्वारा किए गए प्रयासों और पहलों को संदर्भित करती है। श्रम

कल्याण उपायों का उद्देश्य सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करना और उनके काम करने और रहने की स्थिति में सुधार करना है।

11.6 श्रमिक कल्याण के प्रमुख पहलू

निम्नलिखित बिंदु श्रमिक कल्याण के प्रमुख पहलुओं में शामिल हैं:

1- स्वास्थ्य और सुरक्षा: कर्मचारियों के लिए सुरक्षित और स्वस्थ कार्य वातावरण सुनिश्चित करना श्रम कल्याण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। नियोक्ताओं को कार्यस्थल पर दुर्घटनाओं को रोकने के लिए उपाय करने चाहिए। कर्मचारियों को उचित सुरक्षा उपकरण प्रदान करने चाहिए और श्रमिकों की शारीरिक भलाई की रक्षा के लिए नियमित स्वास्थ्य जांच करानी चाहिए।

2- काम करने की स्थितियाँ: श्रम कल्याण कार्य स्थितियों में सुधार पर जोर देता है, जिसमें उचित वेतन, उचित काम के घंटे और पर्याप्त आराम अवधि शामिल हैं। यह बाल श्रम और जबरन श्रम प्रथाओं के उन्मूलन की भी वकालत करता है।

3- सामाजिक सुरक्षा: श्रमिक अपनी आर्थिक सुरक्षा की रक्षा करने और आपात स्थिति, सेवानिवृत्ति या विकलांगता के दौरान वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भविष्य निधि, ग्रेच्युटी, पेंशन और बीमा जैसे विभिन्न सामाजिक सुरक्षा लाभों के हकदार हैं।

4- आवास सुविधा: श्रम कल्याण पहल में श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए किफायती और स्वच्छ आवास सुविधाएं प्रदान करना शामिल हो सकता है, खासकर औद्योगिक या निर्माण क्षेत्रों में जहां प्रवासी श्रमिक रहते हैं।

5- शिक्षा और प्रशिक्षण: श्रमिकों की शिक्षा और कौशल विकास को प्रोत्साहित करना और समर्थन करना श्रम कल्याण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है। नियोक्ता श्रमिकों के कौशल और कैरियर की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम पेश कर सकते हैं।

6- चिकित्सा सुविधाएं: स्वास्थ्य देखभाल केंद्रों और अस्पतालों सहित चिकित्सा सुविधाओं तक पहुंच प्रदान करना यह सुनिश्चित करता है कि आवश्यकता पड़ने पर श्रमिकों को समय पर चिकित्सा सुविधा और उपचार मिले।

7- मनोरंजन और सुविधाएं: श्रम कल्याण उपायों में स्वस्थ कार्यजीवन संतुलन को बढ़ावा देने और मनोबल बढ़ाने के लिए खेल परिसरों, पुस्तकालयों और सामुदायिक केंद्रों जैसी मनोरंजक सुविधाएं प्रदान करना शामिल हो सकता है।

8- महिला एवं बाल कल्याण: महिला एवं बाल श्रमिकों के कल्याण की सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान लागू किए जा सकते हैं, जिनमें मातृत्व लाभ, बाल देखभाल सुविधाएं और भेदभाव के खिलाफ सुरक्षा शामिल है।

9- कर्मचारी सहायता कार्यक्रम: नियोक्ता परामर्श और मानसिक स्वास्थ्य सहायता सहित व्यक्तिगत या काम से संबंधित चुनौतियों से निपटने वाले श्रमिकों का समर्थन करने के लिए कर्मचारी सहायता कार्यक्रम शुरू कर सकते हैं।

श्रम कल्याण उपायों का उद्देश्य सामंजस्यपूर्ण और उत्पादक कार्य वातावरण बनाना, कर्मचारियों के मनोबल और प्रेरणा में सुधार करना और श्रमिकों के बीच वफादारी और प्रतिबद्धता की भावना को बढ़ावा देना है। इस तरह की पहल कार्यबल और समाज के समग्र विकास में योगदान करती है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यस्थल अधिक न्यायसंगत और सामाजिक रूप से जिम्मेदार होता है।

11.7 श्रम कल्याण के कुछ प्रमुख सिद्धांत

श्रम कल्याण की अवधारणा कई सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होती है, जो इसके कार्यान्वयन और प्रभावशीलता को रेखांकित करती है। ये सिद्धांत सुनिश्चित करते हैं कि श्रमिकों की भलाई और अधिकारों को प्राथमिकता दी जाए, जिससे निष्पक्ष और मानवीय कार्य वातावरण तैयार हो सके। श्रम कल्याण के कुछ प्रमुख सिद्धांतों में शामिल हैं:

1- सामाजिक न्याय: श्रम कल्याण सामाजिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित है, जिसका लक्ष्य श्रमिकों की जरूरतों और चिंताओं को संबोधित करके एक अधिक न्यायसंगत समाज बनाना है। इसका उद्देश्य कार्यबल के विभिन्न वर्गों के बीच असमानताओं को कम करना और सभी के लिए समान अवसरों को बढ़ावा देना है।

2- मानवीय गरिमा: मानवीय गरिमा का सिद्धांत श्रमिकों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करने और व्यक्तियों के रूप में उनके अंतर्निहित मूल्य को पहचानने पर जोर देता है। श्रम कल्याण उपायों से श्रमिकों की गरिमा बरकरार रहनी चाहिए और उन्हें शोषण या अपमानजनक व्यवहार से बचाया जाना चाहिए।

3- स्वैच्छिक सहयोग: श्रम कल्याण पहल तब सबसे प्रभावी होती हैं, जब उनमें नियोक्ताओं, श्रमिकों और सरकार के बीच स्वैच्छिक सहयोग शामिल होता है। सहयोग और संवाद यह सुनिश्चित करते हैं कि कल्याणकारी उपाय कार्यबल की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हों।

4- निवारक दृष्टिकोण: श्रम कल्याण श्रमिकों की भलाई की सुरक्षा के लिए निवारक दृष्टिकोण पर जोर देता है। इसमें कार्यस्थल पर संभावित जोखिमों और खतरों की पहचान करना और दुर्घटनाओं और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को रोकने के लिए सक्रिय उपाय करना शामिल है।

5- निरंतर सुधार: निरंतर सुधार का सिद्धांत श्रम कल्याण उपायों के निरंतर मूल्यांकन और वृद्धि की वकालत करता है। यह नियोक्ताओं और नीति निर्माताओं को बदलती जरूरतों और चुनौतियों का सामना करने के लिए पहलों की नियमित समीक्षा और अद्यतन करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

6- सामूहिक सौदेबाजी: सामूहिक सौदेबाजी श्रम कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे श्रमिकों को बेहतर कामकाजी परिस्थितियों, वेतन और लाभों के लिए बातचीत करने की अनुमति मिलती है। यह सिद्धांत श्रमिकों को अपने कल्याण को आकार देने में आवाज उठाने के लिए सशक्त बनाने के महत्व को पहचानता है।

7- सामर्थ्य और स्थिरता: श्रम कल्याण उपायों को इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए, जो नियोक्ताओं और सरकार के लिए किफायती और टिकाऊ हो। इसे अनुचित वित्तीय बोझ नहीं डालना चाहिए, जो आर्थिक विकास या रोजगार सृजन में बाधा बन सकता है।

8- कानूनों और विनियमों का अनुपालन: श्रम कल्याण पहलों को प्रासंगिक श्रम कानूनों और विनियमों का अनुपालन करना चाहिए। कानूनी अनुपालन सुनिश्चित करना यह गारंटी देता है कि श्रमिकों के अधिकार सुरक्षित हैं और शोषण को रोकता है।

9- समावेशिता और विविधता: श्रम कल्याण उपाय समावेशी होने चाहिए और लिंग, आयु, जातीयता और अन्य कारकों सहित कार्यबल की विविध आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिए। समावेशी नीतियां समान अवसरों को बढ़ावा देती हैं और भेदभाव को रोकती हैं।

10- पारदर्शिता और जवाबदेही: श्रम कल्याण में पारदर्शिता और जवाबदेही आवश्यक सिद्धांत हैं। नियोक्ताओं और नीति निर्माताओं को कल्याणकारी उपायों के कार्यान्वयन और प्रभाव के बारे में पारदर्शी होना चाहिए और अपनी प्रतिबद्धताओं के लिए जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए।

इन सिद्धांतों का पालन यह सुनिश्चित करता है कि श्रम कल्याण उपाय प्रभावी, टिकाऊ और कार्यबल की बढ़ती जरूरतों के प्रति उत्तरदायी हैं। सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और सहयोग को बढ़ावा देकर, श्रम कल्याण एक उत्पादक और संतुष्ट कार्यबल को बढ़ावा देते हुए अधिक न्यायसंगत समाज के विकास में योगदान देता है।

11.8 सारांश

श्रम कल्याण में श्रमिकों की शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार किए गए उपायों और लाभों की एक विस्तृत श्रृंखला, शामिल है। इनमें सुरक्षित और स्वस्थ कामकाजी स्थितियां, उचित वेतन, उचित काम के घंटे, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच, सामाजिक सुरक्षा लाभ, आवास सुविधाएं, शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर और अवकाश और मनोरंजन के प्रावधान शामिल हो सकते हैं। इन कल्याणकारी उपायों की पेशकश करके, नियोक्ता और सरकार श्रमिकों की उत्पादकता से परे उनकी भलाई की देखभाल के महत्व को स्वीकार करते हैं। जब कर्मचारी मूल्यवान और समर्थित महसूस करते हैं, तो उनके अपने संगठनों के प्रति अधिक प्रेरित, उत्पादक और वफादार होने की संभावना बढ़ जाती है।

11.9 बोध प्रश्न

1. श्रमिक कल्याण क्या है।

2. श्रमिक कल्याण की दो परिभाषाएं लिखिए।

3. श्रमिक कल्याण के उद्देश्य लिखिए।

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रमिक कल्याण की अवधारणा बताएं।

2. श्रमिक कल्याण सिद्धांत एवं दृष्टिकोण समझाइये।

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रम कल्याण और श्रम संबंधित विधियाँ, लेखक: श्री डी.पी. बहल

2. श्रम कल्याण के सिद्धांत, लेखक: सुभाष चन्द्र बोस

3. श्रम कल्याण: सिद्धांत और प्रयोग, लेखक: श्री एस.एन. मिश्रा

4. श्रम कल्याण और कानून, लेखक: डॉ. आचार्य राममूर्ति

5. श्रम कल्याण की व्यवस्था, लेखक: श्री वी. आर. द्विवेदी

इकाई- 12 श्रम कल्याण की वैधानिक और संवैधानिक योजनाएं
(Statutory and Constitutional Schemes of Labour Welfare)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 श्रम कल्याण के उद्देश्य

12.3 श्रम कल्याण की वैधानिकता का अर्थ एवं परिभाषा

12.3.1 श्रम कल्याण की वैधानिकता की विशेषता

12.3.2 श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य

12.3.3 श्रम कल्याण की प्रमुख वैधानिक योजनाएं

12.3.4 श्रम कल्याण की वैधानिकता का महत्व

12.4 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का अर्थ एवम परिभाषा

12.4.1 श्रम कल्याण की संवैधानिकता की विशेषता

12.4.2 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का उद्देश्य

12.5 श्रम कल्याण के प्रमुख संवैधानिक कानून

12.5.1 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का महत्व

12.6 सारांश

12.7 पारिभाषिक शब्दावली

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे कि-

1. श्रम कल्याण के महत्व को समझ सकें,
2. श्रम कल्याण के संदर्भ में विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं के बारे में जानें,
3. श्रम कल्याण संबंधित योजनाओं के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकें,
4. श्रम कल्याण के वैधानिक महत्व को समझ सकें,

12.1 प्रस्तावना

श्रम कल्याण को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने कई वैधानिक और संवैधानिक योजनाएं शुरू की हैं। ये योजनाएं मजदूरों, कामगारों, श्रमिकों और अन्य श्रम क्षेत्र के लोगों के हित में कई लाभ प्रदान करती हैं। श्रम कल्याण की योजनाएं भारत सरकार के द्वारा श्रमिकों के हित में कई विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्रदान करती हैं और उन्हें सामाजिक और आर्थिक सुरक्षित बनाने में मदद करती हैं। ये योजनाएं श्रमिकों के जीवन को सुखद और समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

12.2 श्रम कल्याण के उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन यानी आई.एल.ओ. ने अपने एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन में श्रम कल्याण को एक ऐसे शब्द के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें ऐसी सेवाओं, सुविधाओं और सुख-सुविधाओं को शामिल किया गया है, जो उपक्रमों में या उनके आसपास स्थापित की जा सकती हैं, ताकि उनमें कार्यरत व्यक्तियों को अपना कार्य करने में

सक्षम बनाया जा सके। वे स्वस्थ, अनुकूल परिवेश में काम करें और उन्हें अच्छे स्वास्थ्य और उच्च मनोबल के लिए अनुकूल सुविधाएं प्रदान की जा सकें।

कल्याण में वह सब कुछ शामिल है, जो कर्मचारियों के आराम और सुधार के लिए किया जाता है और वेतन के अतिरिक्त प्रदान किया जाता है। कल्याण कर्मचारियों के मनोबल और प्रेरणा को ऊंचा रखने में मदद करता है, ताकि कर्मचारियों को लंबे समय तक संस्थान या उद्योग में बनाए रखा जा सके। कल्याणकारी उपाय केवल मौद्रिक संदर्भ में नहीं, बल्कि किसी भी प्रकार-रूप में होने चाहिए। कर्मचारी कल्याण में काम करने की स्थिति की निगरानी, स्वास्थ्य के लिए बुनियादी ढांचे के माध्यम से औद्योगिक सद्भाव का निर्माण, औद्योगिक संबंध और श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए बीमारी, दुर्घटना और बेरोजगारी के खिलाफ बीमा जैसे पहलू शामिल हैं।

श्रम कल्याण में नियोक्ता की वे सभी गतिविधियां शामिल हैं, जो कर्मचारियों को वेतन या वेतन के अलावा कुछ सुवधिाएं और सेवाएं प्रदान करने के लिए निर्देशित होती हैं।

श्रमिक कल्याण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

श्रमिकों की सुरक्षा- इसका प्रमुख उद्देश्य श्रमिकों की सुरक्षा और स्वास्थ्य की रक्षा करना है। यह श्रमिकों को किसी भी काम के दौरान हानि से बचाने के उपायों को निर्धारित करता है, जैसे कि सुरक्षा सामग्री का प्रयोग करना, कार्यस्थलों का पर्यापन और खतरों से सुरक्षा की व्यवस्था की जाँच करना।

कार्यकारी न्याय- श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना है, जैसे कि उचित मजदूरी, काम की शर्तों का पालन, और कानूनी प्रावधानों के अनुसरण की दिशा में।

काम की शर्तें- यह उद्देश्य श्रमिकों को उनके काम की शर्तों के संदर्भ में स्पष्टता और न्याय की दिशा में सहायता प्रदान करना है। इसका मतलब है कि श्रमिकों को उनके काम के समय, छुट्टियों के समय, पेंशन, और अन्य लाभों के संबंध में स्पष्ट और न्यायपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

सामाजिक सुरक्षा- श्रम कल्याण की वैधानिकता के तहत कई सामाजिक सुरक्षा प्रावधान किये जाते हैं, जैसे कि असुरक्षित श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएं और पेंशन योजनाएं, जो उनके भविष्य को सुरक्षित बनाने का उद्देश्य रखती हैं।

न्याय और भरपूरी दिलासा- श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य श्रमिकों को कानूनी रूप से सही से उनके अधिकार का विचार करने और उन्हें उनके काम के परिणामस्वरूप उचित और न्यायिक रूप से दिलासा मिलने का सुनिश्चित करना है।

इसके अलावा, श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य सामाजिक समरसता, श्रमिकों के साथ उचित व्यवहार, और आरामदायक और न्यायिक काम को सुनिश्चित करना भी हो सकता है।

12.3 श्रम कल्याण की वैधानिकता का अर्थ एवं परिभाषा

"श्रम कल्याण की वैधानिकता" एक सामाजिक और कानूनी अवस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों और कर्मचारियों के हित की सुरक्षा, सुरक्षितताऔर न्याय को सुनिश्चित करना है। इसका मतलब है कि यह निर्माण कार्यों, उद्योग, सेवाओं और अन्य कामों में श्रमिकों की सुरक्षा और हित की रक्षा के लिए कई कानूनी और प्रशासकीय मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह श्रमिकों के अधिकारों की सुनिश्चितता, उनके लिए उचित मानदंडों का पालन, मिलकर काम करने की स्वतंत्रता, और काम की शर्तों के पालन की दिशा में कई विभिन्न नियमों और विधियों की वैधानिकता का हिस्सा होता है।

इसके अंतर्गत श्रमिकों के लिए मजदूरी, काम की शर्तें, स्वास्थ्य और सुरक्षा, काम के समय, अवकाश, पेंशन और अन्य मामलों पर कानूनी प्रावधान होते हैं। इसका उद्देश्य श्रमिकों के जीवन को बेहतर बनाना है और उन्हें उनके काम के प्रति सुरक्षित और स्वास्थ्यपूर्ण दृष्टिकोण के साथ दिलासा देना है।

12.3.1 श्रम कल्याण की वैधानिकता की विशेषता

"श्रम कल्याण की वैधानिकता" की विशेषताएं विभिन्न देशों और क्षेत्रों में भिन्न हो सकती हैं, लेकिन कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हो सकती हैं-

कानूनी प्रावधान- श्रम कल्याण की वैधानिकता का मुख्य विशेषता यह है कि इसमें श्रमिकों और कर्मचारियों के अधिकारों और जिम्मेदारियों के दर्जे को कानूनी रूप से निर्धारित किया जाता है। कानूनी प्रावधान श्रमिकों को सुरक्षितता और न्याय की गारंटी प्रदान करते हैं।

श्रमिकों के अधिकार- इसका महत्वपूर्ण हिस्सा श्रमिकों के अधिकार होते हैं, जैसे कि उचित मजदूरी, काम की शर्तें, और अन्य समर्थन मामले। यह श्रमिकों को उनके काम के परिणामस्वरूप उचित और न्यायिक रूप से लाभ प्राप्त करने में मदद करता है।

काम की शर्तें- श्रम कल्याण की वैधानिकता का एक और महत्वपूर्ण पहलू होता है काम की शर्तों का पालन करना और उन्हें स्पष्टता से प्रकट करना। यह श्रमिकों के लिए काम करने की सही और न्यायपूर्ण मानदंडों को सुनिश्चित करता है।

सुरक्षा और स्वास्थ्य- श्रम कल्याण की वैधानिकता का महत्वपूर्ण हिस्सा श्रमिकों की सुरक्षा और स्वास्थ्य की रक्षा करना है। इसका तात्पर्य श्रमिकों को काम करते समय खतरों से बचाने के उपायों को स्थापित करना और उनके स्वास्थ्य की देखभाल करने से है।

सामाजिक सुरक्षा- श्रम कल्याण की वैधानिकता के तहत सामाजिक सुरक्षा प्रावधान होते हैं, जैसे- पेंशन और अन्य समर्थन योजनाएं। ये योजनाएं श्रमिकों के भविष्य को सुरक्षित बनाने का उद्देश्य रखती हैं।

कानूनी उपाय- इसके तहत श्रमिकों या कर्मचारियों के लिए उस स्थिति में कानूनी उपाय और विचारात्मक समर्थन प्रावधान किए जा सकते हैं, जब उनके अधिकारों का उल्लंघन होता है।

निगरानी और प्रतिशोध- श्रम कल्याण की वैधानिकता का हिस्सा एक प्रणाली होता है, जिसमें काम करने वाले संगठनों और सरकारी अधिकारियों के बीच निगरानी और प्रतिशोध की प्रक्रिया होती है, ताकि अधिकारों का पालन किया जा सके।

काम की पर्यापन- श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य श्रमिकों के लिए उचित और न्यायिक काम की पर्यापन की सुनिश्चितिता करना भी हो सकता है, जिससे श्रमिकों को स्वतंत्रता और उचित विकल्पों का उपयोग करने का मौका मिले।

इन विशेषताओं के साथ, श्रम कल्याण की वैधानिकता अक्सर समाज में सामाजिक समरसता, न्याय, और समाज की सामाजिक और आरामदायक श्रम की पर्यापन के प्रति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

12.3.2 श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य

"श्रम कल्याण की वैधानिकता" का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों और कर्मचारियों के हित की सुरक्षा, सुरक्षितता और न्याय की सुनिश्चितता करना होता है। इसके प्रमुख उद्देश्यों में निम्नलिखित शामिल होते हैं-

श्रमिकों की सुरक्षा- श्रम कल्याण की वैधानिकता का प्रमुख उद्देश्य श्रमिकों की सुरक्षा की गारंटी देना होता है। यह श्रमिकों को काम करते समय खतरों से बचाने के उपायों को निर्धारित करता है, जैसे कि सुरक्षा सामग्री का प्रयोग करना और काम के स्थलों का पर्यापन (Adequation) करना।

कार्यकारी न्याय- श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना है, जैसे कि उचित मजदूरी, काम की शर्तों का पालन और कानूनी प्रावधानों के अनुसरण की दिशा में।

काम की शर्तें- श्रम कल्याण की वैधानिकता का महत्वपूर्ण हिस्सा श्रमिकों को उनके काम की शर्तों के संदर्भ में स्पष्टता और न्याय की दिशा में सहायता प्रदान करना है। इसका मतलब है कि श्रमिकों को उनके काम की समय, छुट्टियों, पेंशन और अन्य लाभों के संबंध में स्पष्ट और न्यायपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

सामाजिक सुरक्षा- श्रम कल्याण की वैधानिकता के तहत कई सामाजिक सुरक्षा प्रावधान होते हैं, जैसे कि असुरक्षित श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएं और पेंशन योजनाएं, जो उनके भविष्य को सुरक्षित बनाने का उद्देश्य रखती हैं।

न्याय और भरपूरी दिलासा- श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य श्रमिकों को कानूनी रूप से सही से उनके अधिकार का विचार करने और उन्हें उनके काम के परिणामस्वरूप उचित और न्यायिक रूप से दिलासा मिलने की सुनिश्चिति करना है।

इसके अलावा, श्रम कल्याण की वैधानिकता का उद्देश्य सामाजिक समरसता, श्रमिकों के साथ उचित व्यवहार, और आरामदायक और न्यायिक काम की पर्यापन का सुनिश्चित करना भी हो सकता है।

12.3.3 श्रम कल्याण की प्रमुख वैधानिक योजनाएं

स्वैच्छिक कल्याण गतिविधियां- इसके अन्तर्गत निम्न सुविधाओं, योजनाओं को लागू किया जाता है- व्यक्तिगत स्वास्थ्य देखभाल- नियमित चिकित्सा जांच, कुछ कंपनियां व्यापक स्वास्थ्य जांच की सुविधा प्रदान करती हैं।

फ्लेक्सी-टाइम- इस नीति का मुख्य उद्देश्य नियोक्ताओं को लचीले कार्य शेड्यूल के साथ काम करने का अवसर प्रदान करना है। लचीले कार्य शेड्यूल कर्मचारियों द्वारा शुरू किए जाते हैं और कर्मचारियों की व्यक्तिगत जीवन की जरूरतों का समर्थन करते हुए व्यावसायिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए प्रबंधन द्वारा अनुमोदित किए जाते हैं।

कर्मचारी सहायता कार्यक्रम- इसके अंतर्गत विभिन्न सहायता कार्यक्रमों और बाहरी परामर्श सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, ताकि कर्मचारियों या उनके तत्काल परिवार के सदस्यों को विभिन्न मामलों पर परामर्श मिल सके।

उत्पीड़न उन्मूलन नीति- किसी कर्मचारी को किसी भी प्रकार के उत्पीड़न से बचाने के लिए, उचित कार्रवाई के लिए और पीड़ित कर्मचारी की सुरक्षा के लिए इसके तहत दिशानिर्देश प्रदान किए जाते हैं।

मातृत्व और दत्तक ग्रहण अवकाश- कर्मचारी मातृत्व या दत्तक ग्रहण अवकाश का लाभ उठा सकते हैं। विभिन्न कंपनियों द्वारा पितृत्व अवकाश नीतियां भी पेश की गई हैं।

मेडिक्लेम बीमा योजना- यह बीमा योजना कर्मचारियों को बीमारी, चोट या गर्भावस्था के कारण अस्पताल में भर्ती होने से संबंधित खर्चों के लिए पर्याप्त बीमा कवरेज प्रदान करती है।

कर्मचारी रेफरल योजना- कई कंपनियों में, कर्मचारियों को संगठन में रोजगार के लिए दोस्तों और रिश्तेदारों को रेफर करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कर्मचारी रेफरल योजना लागू की जाती है।

विभिन्न वैधानिक कल्याण गतिविधियां: वैधानिक कल्याण उपायों में मुख्य रूप से किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के परिसर के भीतर प्रदान की जाने वाली कल्याणकारी सुविधाएं शामिल हैं। ये सुविधाएं नियोक्ता के वैधानिक दायित्वों का हिस्सा होती हैं। सभी कल्याणकारी राज्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और संरक्षित करके श्रमिकों को कल्याण प्रदान करते हैं।

श्रमिकों के कल्याण से संबंधित प्रावधान- इसके अंतर्गत निम्न सुविधाओं को शामिल किया जाता है-

धुलाई- प्रत्येक कारखाने में धुलाई के लिए पर्याप्त और उपयुक्त सुविधाएं प्रदान की जाएंगी और बनाए रखी जाएंगी। उन तक आसानी से पहुंचा जा सकेगा और उन्हें साफ रखा जाएगा। धारा ए 42 के अनुसार, पुरुष और महिला श्रमिकों के लिए अलग-अलग प्रावधान होने चाहिए। भण्डारण एवं सुखाना- धारा 43 के अनुसार राज्य सरकार कपड़ों के भंडारण और सुखाने के लिए उपयुक्त सुविधाओं के प्रावधान की आवश्यकता वाले नियम बना सकती है। जिन श्रमिकों को खड़े होकर काम करना पड़ता है, उनके लिए बैठने की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए, ताकि जब संभव हो

तो वे आराम कर सकें। जब बैठकर काम कुशलतापूर्वक किया जा सकता है तो मुख्य निरीक्षक बैठने की व्यवस्था के प्रावधान का निर्देश दे सकते हैं। (अनुच्छेद 44)

प्राथमिक चिकित्सा- प्रत्येक कारखाने में प्राथमिक चिकित्सा बक्से या अलमारियाँ उपलब्ध होनी चाहिये। इन बक्सों या अलमारियों में चिकित्सा से संबंधित निर्धारित सामग्री होनी चाहिए और प्राथमिक चिकित्सा उपचार में प्रशिक्षित व्यक्तियों को इनका प्रभारी बनाया जाना चाहिये। 500 से अधिक व्यक्तियों को रोजगार देने वाले कारखानों को निर्धारित उपकरणों से युक्त एक एम्बुलेंस, निर्धारित चिकित्सा और नर्सिंग स्टाफ सेक का प्रभारी होना चाहिए। (धारा-45)

कैंटीन- जहां 250 से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, वहां राज्य सरकार को श्रमिकों के लिए कैंटीन या कैंटीन खोलने की आवश्यकता हो सकती है। परोसे जाने वाले भोजन, उसके प्रबंधन आदि के संबंध में नियम बनाए जा सकते हैं। (धारा 46)

आश्रय- प्रत्येक फैक्ट्री, जहां 150 से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, वहां पर्याप्त और उपयुक्त आश्रय या आराम के लिए कमरे, भोजन कक्ष, पीने के पानी की आपूर्ति के साथ होना चाहिये, ताकि श्रमिक वहां अपने द्वारा लाया गया भोजन खा सकें। ऐसे कमरे पर्याप्त रोशनी वाले और हवादार, ठंडे और साफ स्थिति में होने चाहिए। इनके लिए अन्य आवश्यक मानक राज्य सरकार द्वारा तय किये जा सकते हैं। (धारा-47)

शिशु गृह- प्रत्येक कारखाने में, जहां 30 से अधिक महिलाएं कार्यरत हैं, ऐसी महिलाओं के बच्चों (जिनकी आयु 6 वर्ष से कम हो) के उपयोग के लिए एक कमरा उपलब्ध कराया जाएगा। कमरा पर्याप्त आकार का, अच्छी रोशनी वाला और हवादार, साफ-सुथरा और स्वच्छतापूर्ण स्थिति में होना चाहिए। बच्चों और शिशुओं की देखभाल में प्रशिक्षित महिला इसकी प्रभारी होगी। मानक राज्य सरकार की ओर से धारा 48 के अन्तर्गत निर्धारित किए जाएंगे।

कल्याण अधिकारी- प्रत्येक कारखाने में, जहां 500 या अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, वहां कल्याण अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए। राज्य सरकार धारा 49 के तहत ऐसे अधिकारियों के कर्तव्य, योग्यताएं आदि निर्धारित कर सकती है।

नियम- राज्य सरकार श्रमिकों के कल्याण के संबंध में धारा 50 के तहत नियम बना सकती है।

12.3.4 श्रम कल्याण की वैधानिकता का महत्व

श्रम कल्याण की आवश्यकता हमारे देश में सभी को अधिक महसूस होती है, क्योंकि भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है, जिसका लक्ष्य तीव्र आर्थिक और सामाजिक विकास है। 1931 में रॉयल कमीशन ऑन लेबर द्वारा श्रम कल्याण की आवश्यकता महसूस की गई थी। 1931 में अपने कराची अधिवेशन में मौलिक अधिकारों और आर्थिक कार्यक्रम पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा पारित एक प्रस्ताव में श्रम कल्याण के दर्शन और इसकी आवश्यकता का उल्लेख किया गया था।

प्रस्ताव में मांग की गई कि देश में आर्थिक जीवन के संगठन को न्याय के सिद्धांतों की पुष्टि करनी चाहिए और यह एक सभ्य जीवन स्तर को सुरक्षित कर सकता है। इसने इस बात पर भी जोर दिया कि राज्य को औद्योगिक श्रमिकों के हितों की रक्षा करनी चाहिए और उनके लिए उपयुक्त कानून बनाने चाहिए, ताकि वे जीवन यापन, काम की स्वस्थ स्थिति, काम के सीमित घंटे, बुढ़ापे में बीमारी और बेरोजगारी के विवादों के निपटारे के लिए उपयुक्त मशीनरी बना सकें।

निम्नलिखित उद्देश्यों और विचारों ने नियोक्ताओं को कल्याणकारी उपाय प्रदान करने के लिए बढ़ावा दिया है-

1. यह उनके कर्मचारियों की वफादारी पर जीत और व्यापार संघवाद का मुकाबला करने में सहायक है।
2. यह श्रम टर्नओवर और अनुपस्थिति को कम करके एक स्थिर श्रम शक्ति का निर्माण करता है।

3. इससे श्रमिकों का मनोबल बढ़ता है। श्रमिकों के बीच यह भावना विकसित की जाती है कि प्रबंधन द्वारा उनका ठीक ख्याल रखा जा रहा है।
4. कुछ नियोक्ताओं द्वारा हाल के दिनों में कल्याणकारी गतिविधियों के प्रावधान का एक कारण अधिशेष पर भारी करों से खुद को बचाना है।
5. कुछ कंपनियों द्वारा कल्याणकारी गतिविधियों के प्रावधान के पीछे का मकसद उनकी छवि को बेहतर करना और श्रम और प्रबंधन के बीच और प्रबंधन और जनता के बीच सद्भाव का माहौल बनाना है।
6. श्रम बल में प्रचलित सामाजिक बुराइयों, जैसे- जुआ, मद्यपान आदि को न्यूनतम कर दिया जाता है। यह श्रमिकों के स्वास्थ्य में सुधार लाता है और उन्हें खुश रखता है।

बोध प्रश्न-1

श्रम कल्याण की वैधानिकता का महत्व से क्या तात्पर्य है।

बोध प्रश्न- 2

श्रम कल्याण की वैधानिकता के प्रमुख उद्धेश क्या है।

12.4 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का अर्थ एवं परिभाषा

श्रम कल्याण की संवैधानिकता एक नैतिक और सामाजिक मूल्यांकन को दर्शाने वाला शब्द है, जिसका अर्थ और परिभाषा निम्नलिखित हो सकता है-

अर्थ- "श्रम कल्याण की संवैधानिकता" एक ऐसी संरचना या प्रणाली को सूचित करती है, जो श्रमिकों और कामकाजियों के सामाजिक, आर्थिक और कानूनी हितों की सुरक्षा और सुरक्षा की गारंटी प्रदान करने का मकसद रखती है। इसका उद्देश्य श्रमिकों के जीवन को बेहतर बनाना, उनके अधिकारों का संरक्षण और उन्हें काम करते समय और बाद में भी सुरक्षित रखना है।

परिभाषा- "श्रम कल्याण की संवैधानिकता" एक ऐसी समृद्धि योजना, कानूनी नियम और नीतियों का संयोजन होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों की रक्षा करना, उनके अधिकारों को सुनिश्चित करना और उनके सामाजिक और आर्थिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करना है। यह समाज में न्याय और समरसता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है, जिससे ऐसा आरामदायक और न्यायिक वातावरण बनता है, जिसमें श्रमिक और कामकाजी समाज के सदस्यों के लिए सफलता प्राप्त करने का मौका मिलता है।

इसका उद्देश्य श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना, उनके सामाजिक सुरक्षा को बनाए रखना, उनके आरामदायक काम की पर्यापन को सुनिश्चित करनाऔर उनके आर्थिक और नैतिक हित की रक्षा करना होता है।

12.4.1 श्रम कल्याण की संवैधानिकता की विशेषता

श्रम कल्याण की संवैधानिकता की विशेषताएं इसके उद्देश्य, प्रावधानऔर प्रयासों में निहित होती हैं। यह विशेषताएं देश की संवैधानिक प्रणालियों, कानूनों और नीतियों के आधार पर भिन्न हो सकती हैं, लेकिन कुछ मुख्य विशेषताओं को निम्नवत स्पष्ट किया जा सकता है:

अधिकारों की सुरक्षा- श्रम कल्याण की संवैधानिकता में श्रमिकों और कामकाजियों के अधिकारों की सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। यह उन्हें उचित मजदूरी, काम की शर्तें और समर्थन मामले में सुरक्षा देने का प्रावधान करती है।

काम की शर्तें और विशेषताएं- श्रम कल्याण की संवैधानिकता के तहत काम की शर्तों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है, ताकि श्रमिकों की सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित हो सके। इसमें काम के समय, मानक कार्यकाल, मिलनसार सुविधाएं, वेतन- अवकाश और अन्य प्रावधान शामिल होते हैं।

सुरक्षा और स्वास्थ्य- श्रमिकों की सुरक्षा और स्वास्थ्य की रक्षा श्रम कल्याण की संवैधानिकता का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। यह उन्हें काम करते समय खतरों से बचाने के उपायों को स्थापित करने का प्रावधान करती है, जैसे कि सुरक्षा सामग्री का प्रयोग करना और काम के स्थलों का पर्यापन करना।

आरामदायक काम की पर्यापन: श्रम कल्याण की संवैधानिकता में आरामदायक और न्यायिक काम की पर्यापन की सुनिश्चित की जाती है। यह श्रमिकों के लिए उचित विश्राम की व्यवस्था करने, काम के समय और समय की छुट्टियों को प्रबंधित करने और उन्हें उचित उपहार और प्रोत्साहन प्रदान करने में मदद करती है।

अधिकारी और प्राधिकृत संगठनों की भूमिका- श्रम कल्याण की संवैधानिकता में संघर्षों के प्रति श्रमिकों को सहायता प्राप्त करने के लिए अधिकारियों और प्राधिकृत संगठनों को महत्वपूर्ण भूमिका मिलती है। ये संगठन श्रमिकों की प्रतिनिधित्व करके उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं और संघर्षों में सहायता प्रदान करते हैं।

शिकायत और प्रतिबद्धता प्रणाली- श्रम कल्याण की संवैधानिकता में श्रमिकों या कर्मचारियों के लिए अपनी शिकायतों को प्रस्तुत करने और उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी प्रणालियों और प्रतिबद्धता प्रणाली होती है।

निगरानी और परिपालन- श्रम कल्याण की संवैधानिकता में श्रमिकों के सुरक्षा और अधिकारों के पालन की निगरानी और प्ररूपण की प्रक्रिया होती है, जिससे अधिकारों का पालन किया जा सकता है। ये विशेषताएं विभिन्न देशों और क्षेत्रों में भिन्न हो सकती हैं, लेकिन श्रम कल्याण की संवैधानिकता का मुख्य उद्देश्य हमेशा श्रमिकों और कामकाजियों के लिए न्याय, सुरक्षा और आरामदायक काम की पर्यापन सुनिश्चित करना होता है।

12.4.2 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का उद्देश्य

भारत में श्रम कानून ने निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया है-

1. न्याय की स्थापना- सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक
2. सभी श्रमिकों को, चाहे वे किसी भी जाति-पंथ-धर्म या विश्वास के हों, उनके व्यक्तित्व को विकसित करने के अवसर प्रदान करना।

3. समुदाय में कमजोर वर्गों की सुरक्षा।
4. औद्योगिक शांति बनाये रखना।
5. आर्थिक विकास के लिए परिस्थितियों का निर्माण।
6. श्रम मानकों का संरक्षण और सुधार।
7. श्रमिकों को शोषण से बचाना,
8. कामगारों को एकजुट होने और संघ या यूनियन बनाने के अधिकार की गारंटी देना।
9. श्रमिकों को उनकी सेवा शर्तों की बेहतरी के लिए सामूहिक रूप से सौदेबाजी करने का अधिकार सुनिश्चित करना।
10. राज्य को दर्शक बने रहने के बजाय सामाजिक कल्याण के रक्षक के रूप में हस्तक्षेप करना चाहिए।
11. मानवाधिकार और मानवीय गरिमा सुनिश्चित करें। कर्मचारी-नियोक्ता संबंधों का उचित विनियमन किसी भी समाज के नियोजित, प्रगतिशील और उद्देश्यपूर्ण विकास के लिए एक शर्त है।

श्रम कानून के उद्देश्य एक विकासशील अवधारणा हैं और उन्हें निरंतर आधार पर प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता होती है।

हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स बनाम द वर्कमैन (**ए.आई.आर. 1967ए, एस.सी 948; 1967, 1ए लै.एल.जे. 114)** मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की। न्यायालय ने कहा, औद्योगिक कानून का उद्देश्य औद्योगिक श्रमिकों को जीवन की मानक सुविधाएं प्रदान करके उनकी सेवा शर्तों में सुधार लाना है, जिससे औद्योगिक शांति होगी। इससे राष्ट्र की उत्पादक गतिविधियों में तेजी आएगी, सभी के लिए समृद्धि आएगी और श्रम की स्थितियों में और सुधार होगा।

12.5 श्रम कल्याण के प्रमुख संवैधानिक कानून

भारतीय संविधान श्रम अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई सुरक्षा उपाय प्रदान करता है। ये सुरक्षा उपाय मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के रूप में हैं।

अनुच्छेद 14ए, 19ए, 21 ए, 23 और 24 में संविधान के भाग III के तहत मौलिक अधिकारों का समावेश है। अनुच्छेद 38ए, 39 ए, 39एए, 41ए, 42ए, 43ए, और 47 संविधान के भाग IV के तहत राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों का हिस्सा हैं, लेकिन वे कानून की अदालत में लागू करने योग्य नहीं हैं। अनुच्छेद 39ए, 39ए, 41ए, 42ए, 43 और 43ए, को सामूहिक रूप से "भारत में श्रमिक वर्ग का मैग्नाकार्टा" कहा जा सकता है।

आइए इन अनुच्छेदों का संक्षिप्त अवलोकन करें-

अनुच्छेद 14 राज्य को किसी भी व्यक्ति के साथ कानून के समक्ष समान व्यवहार करने का आदेश देता है।

अनुच्छेद (19) (1) (सी) नागरिकों को संघ या यूनियन बनाने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा का वादा करता है।

अनुच्छेद 23 जबरन श्रम पर प्रतिबंध लगाता है।

अनुच्छेद 24 चौदह वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर रोक लगाता है।

अनुच्छेद 39 (ए) में प्रावधान है कि राज्य अपने नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का समान अधिकार सुरक्षित करेगा।

अनुच्छेद 39 ए में प्रावधान है कि राज्य अपने नागरिकों के लिए न्याय तक पहुंच के समान अवसर सुनिश्चित करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण ऐसे अवसरों से इनकार नहीं किया जाए।

अनुच्छेद 41 में प्रावधान है कि राज्य अपनी आर्थिक क्षमता की सीमा के भीतर काम और शिक्षा का अधिकार सुरक्षित रखेगा।

अनुच्छेद 42 राज्य को काम की उचित और मानवीय स्थितियां सुनिश्चित करने और मातृत्व राहत के लिए प्रावधान करने का निर्देश देता है।

अनुच्छेद 43 राज्य को कानून या आर्थिक संगठन के माध्यम से सभी श्रमिकों के लिए जीवित मजदूरी, काम की सभ्य स्थिति और सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर सुरक्षित करने का आदेश देता है। और-

अनुच्छेद 43 ए कानून के माध्यम से उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का प्रावधान करता है।

समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत और भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 39(डी) में निहित है। पहली बार, इस सिद्धांत पर 1962 में **किशोरी मोहनलाल बख्शी बनाम भारत संघ** [3] **में विचार किया गया था। तब सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि यह कानून की अदालत में लागू होने में सक्षम नहीं है।** शीर्ष अदालत ने 1982 में तब अपना मन बदल दिया जब **रणधीर सिंह बनाम भारत संघ** [4] में, तीन न्यायाधीशों की पीठ के माध्यम से, उसने कहा कि-

'समान काम के लिए समान वेतन' का सिद्धांत, जिसका अर्थ लिंग के बावजूद सभी के लिए समान वेतन था। संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 14ए, 16 और 39 (डी) से घटाया जा सकता था। समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत वर्गीकरण या अतार्किक वर्गीकरण के आधार पर असमान वेतनमान के मामलों पर लागू माना जाता था। हालांकि, कर्मचारियों के दोनों समूह (क्रमशः अस्थायी और नियमित आधार पर लगे) समान कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करते थे।

डीएस नकारा बनाम भारत संघ [5] (1983) में जहां विषय पेंशन से संबंधित था, वेतन से नहीं, **पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ के माध्यम से बोलते हुए** यह देखा गया कि-

अनुच्छेद 38(1) राज्य को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और संरक्षित करके लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करने का आदेश देता है, जिसमें न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक राष्ट्रीय जीवन के सभी संस्थानों को सूचित करेगा। विशेष रूप से, राज्य आय में असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और

स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को खत्म करने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 39 (डी) यह देखने का कर्तव्य देता है कि पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन हो और इस निर्देश को रणधीर सिंह बनाम भारत संघ (1982) मामले में इस अदालत के फैसले के आलोक में समझा और व्याख्या किया जाना चाहिए।

इन दो केस कानूनों के माध्यम से विकसित न्यायशास्त्र को हाल ही में पंजाब राज्य बनाम जगजीत सिंह[6] (2016) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा लागू किया गया था। यहां यह माना गया था कि अस्थायी रूप से नियुक्त कर्मचारी (दैनिक वेतन कर्मचारी, आकस्मिक आधार पर नियुक्त तदर्थ) संविदा कर्मचारी और उसके जैसे, अपने समान कर्तव्यों का पालन करने के कारण, स्वीकृत पदों के विरुद्ध नियमित आधार पर लगे लोगों द्वारा निर्वहन किए जाने पर, न्यूनतम नियमित वेतनमान के साथ-साथ महंगाई भत्ता (समय-समय पर संशोधित) के हकदार हैं।

12.5.1 श्रम कल्याण की संवैधानिकता का महत्व

1. **औद्योगिक संबंधों में सुधार-** श्रम कल्याण उपाय इतने व्यापक हैं कि यदि इन्हें ठीक से लागू किया जाए, तो वे श्रमिकों को संतुष्ट करते हैं। श्रमिकों की यह संतुष्टि औद्योगिक संबंधों में सुधार के लिए एक बड़ा प्रोत्साहन है। जब श्रमिकों को यह विश्वास हो जाता है कि उनके काम के माहौल और उनकी सेवा की शर्तों को बेहतर बनाने के लिए पर्याप्त उपाय किए गए हैं, तो वे स्वाभाविक रूप से प्रबंधन में विश्वास करते हैं और इस प्रकार यह औद्योगिक शांति बनाए रखने में मदद करता है।
2. **स्थायी श्रम बल का निर्माण-**अच्छी तरह से अपनाए गए श्रम कल्याण उपाय श्रम गतिशीलता को प्रतिबंधित करते हैं। श्रमिक आम तौर पर उस संगठन को छोड़ने में अनिच्छुक महसूस करते हैं, जहां उनके कल्याण की गंभीरता से देखभाल की जाती है। कल्याणकारी उपायों से पैदा होने वाला यह रवैया स्थायी श्रम शक्ति के निर्माण में मदद करता है, जो किसी संगठन के लिए योजनाओं और कार्यक्रमों को निरंतर आधार पर आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है।

3. **श्रमिकों की सामान्य दक्षता और आय में वृद्धि-** श्रमिकों को अच्छे आवास, उचित स्वास्थ्य देखभाल, उपयुक्त कार्य वातावरण का आश्वासन देने वाले व्यापक कल्याण उपाय श्रमिकों को संतुष्ट बनाते हैं। उनका संतोष उनके लिए और अधिक काम करने के लिए एक महान प्रेरणा है। वे अधिक कुशल हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की चिंता नहीं होती। चूंकि, उनकी उत्पादकता बढ़ती है, वे अधिक कमाते हैं, जिससे उनकी आय बढ़ती है।
4. **श्रमिकों का मनोबल बढ़ाना-** कल्याण उपाय श्रमिकों के मनोबल को बढ़ाने का काम करते हैं। जीवन की बेहतर सुविधाओं वाले श्रमिक अपनी कई बुराइयों को त्याग देते हैं और प्रबंधन को स्वेच्छा से सहयोग प्रदान करते हैं। यह संगठन के लिए बहुत बड़ा लाभ है।
5. **अपनेपन की भावना का विकास-** श्रम कल्याण उपाय श्रमिकों को यह महसूस कराते हैं कि वे संगठन के साथ एक हैं। प्रबंधन उनके लिए इतना सोचता है, उनके कल्याण के लिए इतना कुछ करता है कि वे खुद को संगठन से अलग नहीं कर सकते। वे संगठन के साथ एकता महसूस करते हैं। यह भावना कि संगठन में उनकी कुछ हिस्सेदारी है, औद्योगिक शांति बहाल करने में मदद करेगी। इससे काम के प्रति उनकी निष्ठा बढ़ेगी और इस तरह समग्र रूप से उद्यम को लाभ होगा।
6. **नियोक्ताओं के आउटलुक में बदलाव-** श्रम कल्याण उपायों की शुरूआत के परिणामस्वरूप श्रमिकों के व्यवहार में बदलाव से नियोक्ता उनसे संतुष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, श्रम के प्रति नियोक्ताओं के दृष्टिकोण में बदलाव आ रहा है। श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित होता है और कार्य वातावरण में काफी सुधार होता है। जब नियोक्ता पाते हैं कि कर्मचारी काम करने के इच्छुक हैं और खुद को संगठन के विकास के लिए समर्पित करते हैं, तो वे उन्हें प्रबंधन में भाग लेने की अनुमति देने में भी संकोच नहीं करते हैं।

7. **श्रमिकों के नैतिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार-** कल्याणकारी उपायों में ऐसे उपाय शामिल हैं जो श्रमिकों को शराब पीने, जुआ आदि जैसी बुराइयों में शामिल होने से रोकेंगे और इस प्रकार उनके नैतिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होगा और संगठन और समाज के स्वास्थ्य में समग्र सुधार होगा।
8. **समाज को लाभ-** श्रमिकों को आर्थिक लाभ प्रदान करने के अलावा, श्रम कल्याण उपाय श्रमिकों को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करते हैं, जिनका सीधा असर उनके बेहतर जीवन स्तर पर पड़ता है। उन्हें प्रदान किए गए चिकित्सा लाभों के कारण, श्रमिक बेहतर स्वास्थ्य का आनंद लेते हैं और श्रमिकों के बीच शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है।

श्रमिक अधिक खुश महसूस करते हैं और समग्र रूप से समाज लाभान्वित होता है, क्योंकि लोगों का जीवनस्तर बेहतर होता है और वे सामान्य रूप से देश और विशेष रूप से समाज के सामान्य कल्याण में योगदान करने के लिए अधिक क्रय शक्ति से सुसज्जित होते हैं।

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि श्रम कल्याण योजनाएं श्रमबल के स्वास्थ्य और सुरक्षा के विकास में योगदान करती हैं और अधिक उत्पादक कार्यबल बनाती हैं। इन योजनाओं के उचित निर्माण और कार्यान्वयन में श्रमबल की कामकाजी परिस्थितियों और जरूरतों को समझना शामिल है। कई विद्वानों की राय है कि श्रम कल्याण योजनाएं श्रमिकों को समृद्ध जीवन का आनंद लेने के साथ-साथ इन श्रमिकों की उत्पादकता और दक्षता में सुधार करने में सक्षम बनाती हैं। वे उन संगठनों की उत्पादकता बढ़ाते हैं, जो उन्हें रोजगार देते हैं और स्वस्थ औद्योगिक संबंधों को बढ़ावा देते हैं, जिससे श्रम-प्रबंधन शांति बनी रहती है। वे कामकाजी जीवन की गुणवत्ता को भी बेहतर बनाते हैं और श्रमबल के जीवन स्तर को ऊपर उठाते हैं। प्रभावी श्रम कल्याण उपायों के परिणामस्वरूप श्रमिक आम तौर पर अपनी नौकरियों में अधिक सक्रिय रुचि लेते हैं और भागीदारी की भावना के साथ काम करते हैं। भारतीय नियोक्ताओं द्वारा श्रम कल्याण योजनाओं को एक योग्य निवेश के रूप में माना जाना चाहिए, क्योंकि वे अपने संगठनों को एक स्वस्थ, स्थिर और उत्पादक श्रम शक्ति प्रदान करेंगे।

12.6 सारांश

''श्रम कल्याण की वैधानिक और संवैधानिक योजनाएं'' का मुद्दा तब बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है, जब हम समाज में श्रमिकों और कामकाजियों के कल्याण की चर्चा करते हैं। यह दो प्रमुख प्रकार के योजनाओं को संवीक्षा करता है: वैधानिक और संवैधानिक।

वैधानिक योजनाएं- ये योजनाएं अक्सर सरकारों द्वारा चलाई जाती हैं और श्रमिकों के लिए न्याय, सुरक्षा और कल्याण की सुनिश्चितता करती हैं। इनमें काम की शर्तें, मिलनसार सुविधाएं, वेतन स्वास्थ्य और सुरक्षा के नियम शामिल हो सकते हैं। वैधानिक योजनाएं नियमों और कानूनों के माध्यम से श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करने का काम करती हैं।

संवैधानिक योजनाएं: ये योजनाएं उच्चतम कानूनी प्राधिकृता जैसे संविधान, सुप्रीम कोर्ट के आदेश और संवैधानिक संकेतों के माध्यम से श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करने का काम करती हैं। यह समाज के मूल निर्वाचनीय दस्तावेज के रूप में काम करती हैं और श्रमिकों के अधिकारों की श्रेणी को महत्व देती हैं।

इस तरह, वैधानिक और संवैधानिक योजनाएं दोनों महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे श्रमिकों के लिए न्याय, सुरक्षा और आरामदायक काम की पर्यापन को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं। ये योजनाएं सामाजिक समरसता, न्याय और समृद्धि की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और समाज के सभी सदस्यों के लिए बेहतर जीवन की दिशा में सहायक होती हैं।

12.7 परिभाषिक शब्दावली

वैधनिकता: किसी नियम, कानून, विधि या प्रक्रिया के साथ सम्बंधित होना या उनका पालन करना। यह एक स्थापित कानूनी या नैतिक मानक के अनुसार कार्रवाई करने की क्षमता या योग्यता का सूचक हो सकता है। वैधनिकता का पालन करने से सामाजिक या कानूनी प्रतिष्ठा बनती है और नियमों और विधियों का समर्थन किया जाता है।

संवैधानिकता: एक देश या संगठन के बुनियादी नियमों और मूल विधियों का आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया या एक दस्तावेजी संग्रह, जिसमें विचारशीलता और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण नियम और प्रावधान होते हैं। संवैधानिकता विभिन्न स्तरों पर हो सकती है, जैसे कि एक देश की संविधानिकता, एक राज्य की संविधानिकता या एक संगठन की संविधानिकता।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-1 के लिए विद्यार्थी बिंदु 12-2-4 पर ध्यान दें।

प्रश्न-2 के उत्तर के लिए विद्यार्थी बिंदु 12-5 पर ध्यान दें।

12.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्रम कल्याण की वैधानिकता का क्या महत्व है? समझाइए।
2. श्रम कल्याण के प्रमुख संवैधानिक कानून समझाइए।

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जीएस डांग, ‘‘भारतीय श्रम कानून- समस्याएं और चुनौतियां’’
2. बीआर अम्बेडकर, ‘‘भारत का संविधान’’
3. एसएन मिश्रा, ‘‘श्रम और औद्योगिक कानून’’
4. पीएल मलिक, ‘‘श्रम और औद्योगिक कानून’’

इकाई–13 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनः उद्देश्य, संरचना, कार्य एवं भारतीय श्रमिक विधान एवं पर इसका प्रभाव

(International Labour Organization: Objectives, Structure, Funtions and Impact on Indian Labour Legislation)

इकाई की रुपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

13.3 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्य

13.4 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता और संरचना

13.5 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्य

13.5.1 वैधानिक या विधायी कार्य

13.5.2 शैक्षणिक कार्य

13.5.3 संचालकीय व तकनीकी कार्य

13.5.4 अनुसंधान कार्य

13.5.5 प्रशासकीय कार्य

13.6 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय संविधान पर प्रभाव

13.7 सारांश

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

13.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप सक्षम होंगे कि–

- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महत्व को समझ सकें,
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनके उद्देश्यों का वर्णन कर सकें,
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता और संरचना की व्याख्या कर सकें,
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का वर्णन कर सकें,
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के भारतीय संविधान पर प्रभाव का स्पष्ट कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अंतर्राष्ट्रीय आधारों पर मजदूरों तथा श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए नियम बनाता है। यह संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट संस्था है, जिसे 1969 में विश्व शांति के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित भी किया जा चुका है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों के अधिकारों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन का गठन किया गया।

13.2 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन **(International Labour Organization)** सन् 1919 में वर्सलीज की सन्धि के फलस्वरुप सीापित हुआ। इस संघ का प्राथमिक उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति बनाए रखना था, परंतु यह अनुभव किया गया कि शांति केवल उसी स्थिति में सीापित हो सकती है, जब वह सामाजिक न्याय पर आधारित हो। इसलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक था कि विश्व में कठिन परिश्रम का काम करने वाले अर्थात् श्रमिकों के साथ भी सामाजिक न्याय किया जाए। अतः जून 1919 की उच्चकोटि के

समझौते करने वाले दल श्रमिकों की दशा में सुधार करने के लिए अंतरराष्ट्रीय आधार पर एक स्थाई संगठन की सीापना करने पर सहमत हो गए। इसे अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कहा गया और लीग ऑफ नेशंस का एक अंग माना गया।

प्रारंभ में यह संगठन 'राष्ट्र संघ' के अंग के रूप में कार्य करता रहा, किंतु सन् 1946 से ही यह संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की एक विशेषज्ञ संस्थाके रूप में कार्य कर रहाहै। इस संगठन की स्थापना के समय इसके 45 राष्ट्र ही सदस्य थे, जबकि 1981 में इससे संबंद्ध देशों की संख्या 145 हो गयी थी।

13.3 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का उद्देश्य विश्व में कार्यरत जनसंख्या को सामाजिक न्याय दिलाना है। इसका उद्देश्य श्रमिकों को अच्छी कार्यदशाएं उपलब्ध कराना, उचित वेतन दिलाना, रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध कराना तथा उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाना है। विस्तृत रुप में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है–

1. कार्य करने योग्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना।
2. श्रमिकों को शिक्षा और उनके प्रशिक्षण का प्रबंध करना।
3. श्रमिकों के कार्य व आवास की परिस्थितियों में सुधार करना।
4. श्रमिकों की आय में वृद्धि करके उनके जीवनस्तर को ऊंचा उठाना।
5. श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबंध करना।
6. समूहिक सौदे के अधिकार को सम्मान व प्रोत्साहन देना।
7. प्रत्येक श्रमिक को उसके योग्य कार्य में लगाना।
8. श्रमिकों के लिए मनोरंजन आदि की व्यवस्था करना।
9. समान श्रम के लिए समान मजदूरी दिलाना।
10. बाल–कल्याण की व्यवस्था करना।
11. काम करने की दशाओं में आवश्यक सुधार करना।
12. बच्चों को काम में लगाने पर रोक लगवाना।
13. प्रस्तुति संरक्षण की व्यवस्था करना।

14. संगठन की स्वतंत्रता के सिद्धांत को मान्यता दिलाने तथा उसे कार्यान्वित करवाने के लिए प्रयास करना।
15. श्रमिकों की गतिशीलता को बढ़ाने के लिए प्रयास करना।
16. श्रमिकों के लिए अन्य आवश्यक कार्य करना, जिससे उन्हें सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके।
17. विश्व में शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण करने के लिए प्रयास करना।

13.4 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता और संरचना

1. **सदस्यता:** अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सदस्य वे राज्य होते हैं, जो संयुक्तराष्ट्र के सदस्य हैं। व्यक्ति या संगठन इसके सदस्य नहीं होते। भारत अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रारंभ से ही सदस्य रहाहै।
2. **संगठनात्मक संरचना:** अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के तीन मुख्य अवयव हैं–

(1) अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन: यह अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रथम अंग है। साधारण सभा और संगठन की सर्वोच्च शक्ति इसमें निहित है। इसमें प्रत्येक सदस्य देश अपने चार प्रतिनिधि भेजता है, जिनमें से दो सरकार के, एक सेवाआयोजकों का और एक कर्मचारियों का प्रतिनिधि होता है। इस प्रकार यह एक त्रिदलीय सभा होती है। इसका सम्मेलन वर्ष में एक बार होता है। प्रत्येक सदस्य अपना अलग–अलग मत दे सकता है।

श्रम सम्मेलन में राष्ट्रों का संविधान बनाने के लिए कुछ निर्देश दिए जाते हैं, जो दो प्रकार के प्रस्तावों के रूप में सामने आते हैं– (क) अभिसमय (Conventions) और (ख) अभिमत या अनुशंसा (Recommendations)। सम्मेलन में दो तिहाई बहुमत से निर्णय होता है। दोनों प्रस्तावों में अंतर यह होता है कि अभिसमय को स्वीकार करने का नैतिक उत्तरदायित्व अधिक होता है।

दोनों ही प्रस्तावों को सम्मेलन की समाप्ति के 18 माह के अंदर देश की विधायिका के सामने रखना आवश्यक होता है, परंतु सदस्य देश इन प्रस्तावों को मानने के लिये बाध्य नहीं हैं।

संक्षेप में इस सम्मेलन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम मानदंडों के निर्धारण के लिए अंतर्राष्ट्रीय मंच प्रदान करना।

2. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संहिता का निर्माण करना।
3. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की आधारभूत नीतियों का निर्धारण करना।
4. श्रम समस्याओं पर विचार–विमर्श करना।
5. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का द्विवार्षिक कार्यक्रम तथा बजट निर्धारित करना।
6. महानिदेशक के प्रतिवेदन पर विचार–विमर्श करना।
7. सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की श्रम संबंधी समस्याओं को संगठन के सम्मुख प्रस्तुत करना तथा उन पर विचार–विमर्श करने का अवसर प्रदान करना।
8. दस औद्योगिक राष्ट्रों में से कम–से–कम पांच सदस्यों को सम्मिलित करते हुए दो तिहाई बहुमत के आधार पर संगठन के संविधान में संशोधन करना।
9. विभिन्न मामलों के सफल संचालन के लिए समितियों का गठन करना।
10. संगठन के सुचारु संचालन एवं सदस्य राष्ट्रों को सहयोग देने हेतु तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति करना।

(2) प्रशासनिक मंडल: दो श्रम सम्मेलन के बीच की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का निर्देशन एक प्रशासनिक मंडल द्वारा किया जाता है। इस मंडलमें 28 सरकार के, 14 श्रमिकों के और 14 सेवायोजकों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। इस प्रकार इस मंडल में कुल 56 सदस्य होते हैं। यह मंडल अपनी सभाओं का आयोजन करता है, जिनमें संगठन के लिए कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाता है। संक्षेप में, इस मंडल के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं–

1. कार्यालय के महानिदेशक की नियुक्ति करना।
2. श्रम सम्मेलन आयोजित करने की तिथि निर्धारित करना तथा उसका कार्यक्रम तैयार करना।
3. संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का निरीक्षण करना।
4. क्षेत्रीय कार्यालय से प्राप्त प्रतिवेदनों पर आवश्यक कार्रवाई करना।
5. क्षेत्रीय कार्यालयों की क्षेत्रीय कार्यालयों की सभाओं की तिथियों, उनके कार्यक्रम तथा कार्यकाल निर्धारित करना।
6. सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्तावों एवं सिफारिशों का सदस्य राष्ट्रों में क्रियान्वयन तथा उनका अनुवर्तन करना।

7. संबंध सम्मेलन में प्रयुक्त किए जाने वाले द्विवार्षिक बजट एवं कार्यक्रम को प्रस्तुत करना।
8. विभिन्न प्रकार की परामर्शदात्री विशेषज्ञ समितियों की स्थापना करना।

प्रशासन मंडल अनेक समितियां गठित करता कर सकता है। ये समितियां विभिन्न कार्यों को ध्यान में रखकर गठित की जाती हैं। इन समितियों में औद्योगिक समितियां, विशेषज्ञों की समितियां प्रमुख हैं।

(3) अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालयः अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का सचिवालय अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के नाम से जाना जाता है। वर्तमानमें यह कार्यालय जेनेवा में स्थित है।

यह कार्यालय एक महानिदेशक के नियंत्रण में कार्य करता है, जिसकी नियुक्ति प्रशासनिक मंडल द्वारा की जाती है। महानिदेशक की नियुक्ति 10 वर्ष के लिए की जा सकती है, जिसे बाद में पांच वर्ष तक के लिए पुनर्नियुक्त भी किया जा सकता है। महानिदेशक इस कार्यालय के मुख्य प्रशासक या अधिशासी के रूप में कार्य करता है।

इस कार्यालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम मामलों से संबंधित आवश्यक सूचनाओं, अनुसंधान रिपोर्टों, श्रम सम्मेलनों के अभिसमय या समझौतों एवं उसकी सिफारिशों को प्रकाशित करना।
2. श्रम सम्मेलन की कार्यावली के अनुसार आवश्यक प्रलेख तैयार करना।
3. प्रशासनिक मंडल के सचिवालय के रूप में कार्य करना।
4. अंतर्राष्ट्रीय श्रम मामलों पर अनुसंधान करना।
5. श्रम सम्मेलनों में हुए समझौतों या अभिसमयों को क्रियान्वित करवाने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना।
6. श्रम सम्मेलन के निर्णय के अनुसार किसी अधिनियम के निर्माण में सदस्य राष्ट्रों की मदद करना।
7. विभिन्न अभिसमय या समझौतों का ऐसी भाषाओं में रूपांतरण करना, जिनकी सदस्य राष्ट्रों को आवश्यकता हो।
8. उन कार्यों को करना, जो श्रम सम्मेलनों तथा प्रशासनिक मंडलों के द्वारा सौंपा जाए।

उपर्युक्त तीनों निकायों के अतिरिक्त यह संगठन क्षेत्रीय सम्मेलन का भी आयोजन करता है।

क्षेत्रीय सम्मेलनः सन् 1936 से ही अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने क्षेत्रीय सम्मेलनों का व्यावहारिक महत्व समझना प्रारंभ कर दिया था। इस वर्ष ही इस संगठन द्वारा प्रथम क्षेत्रीय सम्मेलन चिली के नियागो शहर में आयोजित किया गया।

क्षेत्रीय सम्मेलन के आयोजन के पीछे मूलभूत कारण यह था कि सभी देशों की समस्याएं समान नहीं होती हैं, जबकि कुछ देशों की समस्याएं समान होती हैं। अतः समान समस्याओं वाले देशों को एक साथ मिलकर अपनी समस्याओं पर विचार कर उचित हल ढूंढना चाहिए। इसी धारणा को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन प्रारंभ किए गए। इन क्षेत्रीय सम्मेलनों में भी तीनों पक्षकारों के प्रतिनिधि होते हैं, जो अपने क्षेत्र विशेष से संबंधित समस्याओं की चर्चा कर समाधान तलाशते हैं।

क्षेत्रीय सम्मेलन द्वारा जो भी सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें वार्षिक श्रम सम्मेलन में रखा जाता है, जिन्हें अभिसमय अथवा सिफारिशों के रूप में स्वीकार किया जाता है।

13.5 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्य

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक कार्य करता है। इसकेप्रमुख कार्य निम्नानुसार हैं–

13.5.1 वैधानिक या विधायीकार्य

इस संगठन का प्रथम कार्य वैधानिक कार्यों से संबंधित है। इस कार्य को यह संगठन प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों के माध्यम से करता है। इन सम्मेलनों में अभिसमय (Conventions) तथा सिफारिशों (Recommendations) को पारित किया जाता है। ये अभिसमय एवं सिफारिशें इस संगठन द्वारा बनाये गए अधिनियम के समान माने जाते हैं। संगठन सदस्य देशों से यह अपेक्षा करता है कि वे अपने यहां श्रम सन्नियमों का निर्माण इन अभिसमयों तथा सिफारिशों को ध्यानमें रखकर ही करेंगे।

13.5.2 शैक्षणिक कार्य

यह संगठन अपने सदस्य देशों की कार्यशील जनसंख्या के लिए शैक्षणिक कार्य भी करता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है–

(क) श्रमिकों एवं प्रशासकीय अधिकारियों को उपयुक्त साहित्य उपलब्ध कराना।

(ख) श्रमिकों को शिक्षित करने के लिए कार्यक्रम तैयार करना।

(ग) प्रशासकीय अधिकारियों, जैसे– श्रम निरीक्षकों तथा नियोजन केंद्र अधिकारियों को प्रशिक्षण देना।

13.5.3 संचालकीय व तकनीकी कार्य

यह संगठन अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अनेक कार्यक्रमों का संचालन करता है और उनके लिए तकनीकी सहायता उपलब्ध करता है। यह संगठन अपने सदस्य राष्ट्रों को निम्न प्रकार से तकनीकी सहायता प्रदान करता है–

(क) तकनीकी सहयोग के लिए विशेषज्ञ सेवाएं प्रदान करना।

(ख) तकनीकी प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम आयोजित करना।

(ग) उच्च अध्ययन हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना।(घ) व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करने के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध करवाना। (ड) क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित करना और इनके लिये तकनीकी सहायता की आवश्यकता का निर्धारण करना।

13.5.4 अनुसंधान कार्य

यह संगठन श्रमिकों से संबंधित विभिन्न विषयों व तकनीकी परिवर्तनों से श्रमिकों पर होने वाले प्रभावों का मुद्रास्फीति व आय उत्पादकता आदि से संबंधित विषयों पर अनुसंधान करता है।

13.5.5 प्रशासनिक कार्य

यह संगठन अपने अभिसमय एवं सिफारिशों के प्रचार और कार्यशील जनसंख्या के संबंध में आवश्यक सूचनाओं का प्रकाशन भी करता है। इस हेतु यह संगठन 'International Labour Review' नामक मासिक पत्रिका तथा 'Industry and Labour' नाम पाक्षिक पत्रिका का भी प्रकाशन करता है।

13.6 अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय संविधान पर प्रभाव

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और हमारे देश भारत की व्यवस्था दोनों ही सामाजि कन्याय के सिद्धांत पर आधारित हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की त्रिदलीय सहयोग का सिद्धांत, जो संघर्ष के बिना ही सामाजिक न्याय में उद्देश्य की प्राप्ति पर छोड़ देता है, का प्रभाव हमारे देश में अत्यधिक पड़ा है।

ठन अधिनियमों के आधार पर भारत में अधिकांश श्रम अधिनियम बनाए गए हैं। समय–समय पर इसके आधार पर बागान, कारखाना आदि अधिनियम में संशोधन भी किए गए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के भारतीय श्रम विधान पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. अनुसमर्थित या प्रमाणित अभिसमय और भारतीय श्रम विधान (Ratified Conventions and India Labour Legislation)
2. अप्रमाणिक अभिसमयों का प्रभाव (Influence of Unratified Conventions)
3. सिफारिशों का प्रभाव (Influence of Recommendations)

अब हम उपर्युक्त तीनों शीर्षकों का पृथक–पृथक अध्ययन करेंगे:

1. अनुसमर्थित या प्रमाणिक अभिसमय और भारतीय श्रम विधानः अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसमर्थित अभिसमय का भारतीय श्रम विधान पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न सारणी की सहायता से समझा जा सकता है–

श्रम संगठन के अनुसमर्थित अभिसमय	भारत द्वारा स्वीकृति का विवरण
1. कार्य की दशाओं से संबंध कानूनों का प्रभाव **(क) कार्य के घंटे:** कार्य के घंटे (उद्योग) अभिसमय संख्या 1, 1919 के अनुसार औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्य के	भारत सरकार ने इसे अनुसमर्थित कर इसके उपबंधों को कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, बीड़ी और सिगार कर्मकार

घंटे दैनिक 8 और साप्ताहिक 48 से अधिक नहीं हो सकते।	(नियोजन की शर्तें) अधिनियम 1966 तथा कुछ अन्य अधिनियमों में सम्मिलित किया है।
(ख) सप्ताहिक विश्राम: साप्ताहिक विश्राम (उद्योग) अभिसमय संख्या 14, 1921 के अनुसार किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान में काम करने वाले सभी व्यक्तियों को प्रत्येक 7 दिनों में काम के लिए लगातार 24 घंटे के विश्राम की व्यवस्था करना आवश्यक है।	इसके उपबंधों को कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, मोटर परिवहन, कर्मकार अधिनियम 1961 तथा बीड़ी और सिगार कर्मकार (नियोजन की शर्तें) अधिनियम, 1966 में सम्मिलित किया गया है।
(ग) मजदूरी: न्यूनतम मजदूरी नियतन–संयंत्र अभिसमय, संख्या 26, 1928 के अंतर्गत कुछ अतिशोषक व्यवसायों या नियोजनों में मजदूरी–नियतन के लिए संयंत्र की सीपना को आवश्यक किया गया है।	इस संयंत्र में श्रमिकों और नियोजकों का प्रतिनिधित्व भी जरूरी है। इस अधिनियम के उपबंधों को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 में शामिल किया गया है।
(घ) श्रम प्रशासन और निरीक्षण: श्रम निरीक्षण अभिसमय, संख्या 81, 1947 के अंतर्गत कार्य की दशाओं, श्रमिकों की संरक्षा, तकनीकी सूचना की आपूर्ति, श्रम प्रशासन में त्रुटियां और दोषों के निवारण आदि से संबद्धता उपलब्ध है।	इस अभिसमय के उपंबंधों की कई संरक्षात्मक श्रम अधिनियमों, जैसे– कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम, मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम 1961, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 तथा मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936 द्वारा लागू किया गया है।
2. **बालकों और तरुणों के नियोजन से संबद्ध कानूनों पर प्रभाव**:	
(क) न्यूनतम उम्र: न्यूनतम उम्र (उद्योग) अभिसमय, संख्या 5, 1919 के अंतर्गत उद्योगों में नियोजन की न्यूनतम उम्र 14 वर्ष रखी गई है।	भारत में इसे अनुसमर्थित कर इसके अनुबंधों को कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनिमय) अधिनियम, 1986 तथा कुछ अन्य
(ख) चिकित्सकीय परीक्षा: अल्पवयों की चिकित्सकीय जांच (सामुद्रिक) अभिसमय, संख्या 16, 1921 के अनुसार	

सामुद्रिक कार्यों के लिए अल्पवयों के नियोजन से पहले उनकी शारीरिक क्षमता की चिकित्सकीय जांच आवश्यक है। **(ग) रात्रि कार्यः** अल्पवयों का रात्रि कार्य (उद्योग) अभिसमय, संख्या 6, 1919 तथा संख्या 90, 1948 के अंतर्गत अल्पवयों के रात्रि कार्य पर प्रतिबंध लगाया गया है। **3.स्त्रियों को रोजगारः** **(क) रात्रि कार्यः** रात्रि कार्य (महिलाएं) अभिसमय संख्या 4,1919 के अंतर्गत स्त्री श्रमिकों के रात्रि कार्य पर प्रतिबंध लगाया गया है। **(ख) भूमिगत कार्य में नियोजनः** भूमिगत कार्य (महिलाएं) अभिसमय संख्या 45,1935 के अनुसार किसी भी भूमिगत खनन में महिलाओं के रोजगार पर प्रतिबंध लगाया गया है। **(ग) समान कार्य के लिए समान वेतनः** समान पारिश्रमिक अभिसमय, संख्या 109,1951 द्वारा पुरुष और स्त्री श्रमिकों के लिए समान कार्य के लिए लिए समान वेतन के सिद्धांत को अपनाया गया है। **4.स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याणः** **(क) भार चिह्नांकनः** भार चिह्नांकन (जलयान द्वारा परिवहित पैकेज) अभिसमय संख्या 27,1929 के अंतर्गत जलयान द्वारा ले जान वाले एक या अधिक टन के	संरक्षात्मक अधिनियमों में सम्मिलित किया गया है। इस अभिसमय के उपबंधों को वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 द्वारा लागू किया गया है। इन अभिसमयों के उपबंधों को कारखाना अधिनियम, 1948 खान अधिनियम, 1952 बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनिमय) अधिनियम, 1986 तथा कुछ अन्य संरक्षात्मक अधिनियमों द्वारा लागू किया गया है। इसके उपबंधों को कारखाना अधिनियम, 1948, खान अधिनियम, 1952 तथा मोटर परिवहन, बीड़ी और सिगार तथा कुछ अन्य उद्योगों से सम्बद्ध संरक्षणात्मक श्रम अधिनियमों द्वारा लागू किया गया है। इसके उपबंध को खान अधिनियम 1952 में सम्मिलित किया गया है। इसके उपबंधों को समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (Equal Remuneration Act, 1976) द्वारा लागू किया गया है। इसके उपबंधों को भारी पैकेज चिह्नांकन अधिनियम, 1951 (Making of Heavy

पैकेज पर उनके भार का स्पष्ट चिह्न लगाना आवश्यक है।	Packages Act, 1951) में सम्मिलित किया गया है।
(ख) दुर्घटनाओं से संरक्षाः दुर्घटनाओं से संरक्षा (गोदी मजदूर) संशोधित अभिसमय, संख्या 32,1932 है।	
5. सामाजिक सुरक्षाः	इसे भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, 1934 (Indian Dock Labourers Act, 1934) द्वारा लागू किया गया है।
(क) कर्मकार क्षतिपूर्तिः कर्मकार क्षतिपूर्ति (व्यावसायिक रोग) अभिसमय संख्या 18, 1925 तथा संशोधित अभिसमय संख्या 42, 1934 के अनुसार कुछ विशेष प्रकार के नियोजनों में होने वाले व्यावसायिक रोगों के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना जरूरी है।	इसके उपबंधों को कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 में शामिल किया गया है।
(ख) सामाजिक सुरक्षा में व्यवहार की क्षमताः सामाजिक सुरक्षा में राष्ट्रीय और गैर राष्ट्रीयों के व्यवहार की क्षमता अभिसमय संख्या 118, 1962 के अंतर्गत सुरक्षा सुविधाओं के लिए देशवासियों और विदेशियों के बीच व्यवहार की क्षमता के निर्देश दिए गए हैं।	भारतीय सामाजिक सुरक्षा अधिनियमों, जैसे–कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अंतर्गत आदिवासियों, देशवासियों और विदेशियों के बीच भेदभाव नहीं किया जाता।
6. औद्योगिक संबंधः	इन्हें श्रम संघ अधिनियम, 1926 तथा भारतीय संविधान के उपबंध द्वारा लागू किया गया है।
(क) संगठन का अधिकारः संगठन का अधिकार (कृषि) अभिसमय संख्या 11, 1921 के अंतर्गत कृषि श्रमिकों को औद्योगिक श्रमिकों की तरह संगठन बनाने के अधिकार उपलब्ध कराने के लिए निर्देश दिए गए हैं। ग्रामीण श्रमिक संगठन अभिसमय संख्या 140, 1975 में ग्रामीण श्रमिकों के संगठन को प्रोत्साहित करने से सम्बद्ध उपबन्ध है।	इसको औद्योगिक संबंध कानून तथा प्रशासनिक आदेशों द्वारा लागू किया गया है।

(ख) त्रिदलीय परामर्शः त्रिदलीय परामर्श (अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानक) अभिसमय संख्या 144, 1975 **7. रोजगार एवं बेरोजगारीः** **(क) नियोजन सेवाः** नियोजन सेवा अभिसमय, संख्या 88, 1948 के अनुसार राष्ट्रीय क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर निःशुल्क सार्वजनिक रोजगार कार्यालयों की सीापना आवश्यक है। **(ख) बलात्–श्रमः** बलात्–श्रम, अभिसमय संख्या 39, 1930	इन उपबंध को रोजगार कार्यालय से संबद्ध कानूनों और नियमों में सम्मिलित किया गया है। इसके उपबंध भारतीय संविधान में सम्मिलित हैं।

भारत सरकार ने कुछ अन्य अभिसमयों को भी अनुसमर्थित किया है। इनमें मुख्य है– (क) प्रवासियों का निरीक्षण–अभिसमय, संख्या 21,1926 (ख) समुद्रिकों की समझौता नियमावली–अभिसमय, संख्या 22, 1926 (ग) स्वदेशी एवं जनजातीय जनसंख्या–अभिसमय, संख्या 107, 1957 (घ) नियोजन और व्यवसाय का भेदभाव–अभिसमय, संख्या 11, 1958 तथा (ड़) श्रम सांख्यिकी अभिसमय, संख्या 160, 1985।

इन सभी अभिसमय के उपबंधों को श्रम कानूनों, संविधान या प्रशासनिक आदेशों द्वारा लागू किया गया है।

2. अप्रमाणित अभिसमय का प्रभाव (Influence of Unratified Conventions) : भारत सभी अभिसमयों को स्वीकार नहीं कर सका है। इसके कई कारण हैं, जैसे– (क) अभिसमय का यह नियम है कि उसे पूरा ही स्वीकार करना होता है। भारत में बहुधा ऐसी परिस्थितियां रही है कि पूरी तरह से अभिसमयों को स्वीकार करना संभव नहीं था। भारत की आंतरिक परिस्थितियां इस प्रकार की है कि अनेक अभिसमयों को कुछ शर्तों के आधार पर ही अपनाया जा सकता है, परंतु अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के नियमों में इस प्रकार की कोई छूट नहीं है। (ब) भारत में सन् 1947 तक विदेशी सरकार थी, जो श्रम हित के संबंध में उदासीन थी। (स) भारतीय श्रम आंदोलन की शिथिलता के कारण भी सरकार पर जोर नहीं डाला जा सकता था कि वह आवश्यक विधान बनाये। (द) अनेक अभिसमय इस प्रकार के हैं, जिनके लागू होने से वर्तमान अवस्थाओं में उद्योगों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ेगा।

यद्यपि भारत सरकार ने कई अभिसमयों को औपचारिक रूप से अनुसमर्थित नहीं किया है, लेकिन उनके अनेक उपबंधों को अपने श्रम कानून में सम्मिलित किया है। इनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं–

(1) सवेतन छुट्टी (Holidays with Pay) : सवेतन छुट्टी अभिसमय, संख्या 52, 1936 के अनुसार औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों में श्रमिकों के प्रत्येक वर्ष के काम के लिए कम से कम छह दिनों की सवेतन छुट्टी की व्यवस्था करना आवश्यक है। इससे उच्च स्तर के मानक कारखाना अधिनियम, खान अधिनियम, दुकान और प्रतिष्ठान अधिनियमों, मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम, बीड़ी और सिगार कर्मकार (नियोजन की शर्तें) अधिनियम तथा कुछ अन्य अधिनियमों में उपलब्ध है।

(2) मजदूरी की संरक्षा (Protection of Wages) : मजदूरी संरक्षण अभिसमय संख्या, 95, 1949 के अनुसार श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी का भुगतान उन्हें नियमित रूप से वैध मुद्रा में करना आवश्यक है। मजदूरी से केवल कानूनों तथा सामूहिक समझौतों में निर्धारित शर्तों के अनुसार ही कटौतियां की जा सकती हैं। इन उपबंधों को मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 तथा कुछ अन्य संरक्षात्मक श्रम–अधिनियमों में सम्मिलित किया गया है।

(3) प्रसूति संरक्षा (Maternity Protection) : प्रसूति संरक्षा अभिसमय, संख्या 3, 1919 तथा प्रसूति संरक्षा (संशोधित) अभिसमय, संख्या 103, 1952 के अंतर्गत महिला–श्रमिकों को प्रसवावस्था में 12 सप्ताह की छुट्टी तथा नकद और चिकित्सकीय हितलाभ देना आवश्यक है। प्रसूति की छुट्टी की अवधि में महिला–श्रमिकों को नौकरी से नहीं हटाया जा सकता। यद्यपि भारत ने इन अभिसमयों को अनुसमर्थित नहीं किया है, इनके उपबंधों को प्रसूति हितलाभ अधिनियम, 1961 तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 में सम्मिलित किया गया है।

(4) कर्मकार क्षतिपूर्ति (Workmen's Relations) : .कर्मकार क्षतिपूर्ति (दुर्घटनाएं) अभिसमय, संख्या 17, 1925 के अंतर्गत औद्योगिक दुर्घटनाओं से उत्पन्न क्षति के लिए क्षतिपूर्ति देना आवश्यक है। मृत्यु और स्थायी अशक्तता के लिए क्षतिपूर्ति सर्वाधिक भुगतान के रूप में दी जाएगी। दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों को आवश्यक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। इन उपबंधों को कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 में सम्मिलित किया गया है।

(5) औद्योगिक संबंध (Industrial Relations) : . भारत के औद्योगिक संबंध कानूनों; जैसे– औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, श्रम संघ अधिनियम 1926 तथा औद्योगिक नियोजन (स्थाई आदेश) अधिनियम 1946 में कुछ अभिसमयों के उपबंधों को शामिल किया गया है। इनमें मुख्य हैं– संगठन की स्वतंत्रता एवं संगठन के अधिकार की संरक्षा–अभिसमय, संख्या 87, 1948 तथा सामूहिकसौदेबाजी–अभिसमय,संख्या 155, 1981।

(6) बीमारी बीमा (Sickness Insurance) : बीमारी बीमा (उद्योग) अभिसमय संख्या 24, 1927 के अंतर्गत औद्योगिक श्रमिकों के लिए अनिवार्य बीमारी बीमा की व्यवस्था तथा निर्धारित अवधि के लिए नकद हितलाभ आवश्यक है। भारत ने इस अभिसमय का अनुसमर्थन नहीं किया है, लेकिन इसके उपबंधों को कर्मचारीराज्य बीमा अधिनियम, 1948 में शामिल किया गया है।

(6) सिफारिश का प्रभाव (Influence of Recommendations) : भारत के श्रम कानूनों में निम्नलिखित सिफारिशों को सम्मिलित किया जा चुका है–

(क) कार्य की दशाएं (Working Conditions)

1. श्रम निरीक्षक संख्या 20, 1923
2. श्रम निरीक्षक (नाविक) संख्या 28, 1926
3. न्यूनतम मजदूरीनियतन संयन्त्र संख्या 30, 1928
4. श्रम निरीक्षक संख्या 81, 1947
5. श्रम निरीक्षक (खनन और यातायात) संख्या 82, 1947
6. न्यूनतम आयु (कोयला खान) संख्या 97, 1953
7. श्रम निरीक्षक (कृषि) संख्या 133, 1969
8. न्यूनतम मजदूरी नियतन संयन्त्र संख्या 135, 1970
9. श्रम प्रशासन संख्या 158, 1978
10. कार्य के घण्टे एवं विश्राम अन्तराल (मोटर परिवहन) संख्या 161, 1979
11. कार्य की दशाएं (होटल और रेस्तरां) संख्या 179, 1991
12. कार्य की दशाएं (गैर–होटल और रेस्तरां) संख्या 178, 1991

(ख) सामाजिक सुरक्षा (Social Security)

1. कर्मकार–क्षतिपूर्ति (व्यावसायिक रोग) संख्या 24, 1925
2. उपचार की समानता (दुर्घटना क्षतिपूर्ति) संख्या 25, 1926
3. दुर्घटनाओं से सुरक्षा (गोदी श्रमिक) संख्या 34, 1929
4. दुर्घटनाओं से पारस्परिक सुरक्षा (गोदी श्रमिक) संख्या 40, 1932
5. सामाजिक सुरक्षा (सशस्त्र सेना) संख्या 68, 1944

(ग) स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण (Health Security and Welfare)

1. सफेद फॉस्फोरस संख्या 6, 1919
2. पत्तनों पर नाविकों का कल्याण, संख्या 46, 1936
3. बिस्तर–चौका–बर्तन और विविध अवस्थाएं (नाविक दल) संख्या, 78, 1946
4. कल्याण–सुविधाएं संख्या, 102, 1956
5. समुद्र में चिकित्सा सेवा, संख्या 106, 1958
6. रसायनों के प्रयोग में सुरक्षा संख्या, 177, 1990
7. दीर्घ औद्योगिक निवारण, संख्या 181, 1993
8. खानों में सुरक्षा तथा स्वास्थ्य, संख्या ———— यहां संबंधित संख्या जोड़ दें

(घ) औद्योगिक सम्बन्ध (Indudtrial Relation)

1. स्वैच्छिक सुलह तथा विवाचन, संख्या 92, 1951
2. औद्योगिक संस्थान पर सहयोग संख्या 9, 1920
3. बलात श्रम (नियमन), संख्या 36, 1930
4. सार्वजनिक निर्माण (अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग) संख्या, 50, 1930
5. समान पारिश्रमिक संख्या 90, 1951
6. देशी तथा जनजातीय जनसंख्या, संख्या 104, 1958
7. भेदभाव (नियोजन तथा व्यवसाय) संख्या, 111, 1958

8. परामर्श (औद्योगिक तथा राष्ट्रीय स्तर) संख्या, 113, 1960
9. परिवेदनाओं की जांच संख्या 130, 1967

इनके अतिरिक्त कई अन्य सिफारिशों के उपबन्धों को भी पूर्णतः या आंशिक रूप से लागू करने के लिए व्यवस्था बनायी गयी है या विद्यमान कानूनों में संशोधन किए गये हैं। कईअन्य सिफारिशों के उपबन्धों को लागू करने के उद्देश्य से श्रम कानूनों में संशोधन के प्रयास किये जा रहे हैं।

13.7 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सामाजिक न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त मानव और श्रम अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। यह एक सार्वभौमिक श्रम गारंटी, जो श्रमिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है, आजीविका हेतु एक पर्याप्त पारिश्रमिक, कार्य का नियत समय तथा सुरक्षित कार्यस्थल सुनिश्चित करतीहै।

13.8 बोध प्रश्न एवं उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना कब हुई?
   (अ) 1919 (ब) 1921 (स) 1946 (द) 1951
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का कार्यालय है–
   (अ) पेरिस (ब) फ्रांस (स) जेनेवा (द) अमेरिका

उत्तर 1. (अ), 2. (स)**सत्य/असत्य कथन**

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ 1919 में स्थापित हुआ।
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का कार्यालय मास्को में है।
3. महानिदेशक की भर्ती 10 वर्ष के लिए की जाती है।

उत्तर– 1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य।

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. श्रमिकों को ..... और .....का प्रबन्ध करना।
2. सप्ताह में एक दिन का ..... होना आवश्यक है।
3. भारतीय श्रम संघ आन्दोलन के विकास के लिए .....सहायता भी प्राप्त हुई है।

उत्तर– 1. शिक्षा, प्रशिक्षण, 2. अवकाश, 3. आर्थिक।

13.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन क्या है?
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के क्या उद्देश्य हैं?
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के क्या कार्य हैं?
4. अभिसमय और सिफारिशों में क्या अन्तर है?

13.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के गठन के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं? वर्णन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय श्रम विधान को किस तरह प्रभावित किया है? व्याख्या कीजिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमयों और सिफारिशों से आप क्या समझते हैं? विवेचना कीजिए।
4. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता एवं संरचना का वर्णन कीजिए।

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **डॉ0 रविन्द्रनाथ मुखर्जी एवं डॉ0 भरत अग्रवाल, 'औद्योगिक समाजशास्त्र'–2023 एसबीपीडी पब्लिकेशन**
2. Gisbert Pascal, Fundamentals of Industrial Sociology, Tata Mc. Graw Hill Publishing Co. New Delhi, 1972.

3. Schneider Engenho, V. Industrial Sociology 2nd Edition, Mc. Graw Hill Publishing Co. New Delhi, 1979.
4. Memoria, C.B. and Memoria, S. Dynamics of Industrial Relations in India. Sinha, G.P. and P.R.N. Sinha, Industrial Relations and Labour Legislations, New Delhi, Oxford and IBH Publishing Co. 1977.
5. Tyagi, B.P. Labour Economics and Social Welfare, Jai Prakash Nath, and Co. Meerut, 1980. Mehrotra, S.N. Labour Problems in India, 3rd Revised Edition, S. Chand and Co. New Delhi, 1981. RM 72.

इकाई–14 ट्रेड यूनियन : विकास, कार्य एवं औद्योगिक संगठन में भूमिका

(Trade Union: Growth, Functions & Role in Industriral Organization)

इकाई की रुपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 श्रमिक संघ की परिभाषा

14.3 श्रमिक संघ का उद्भव एवं विकास

14.4 श्रम संघ के कार्य

14.1.1 आंतरिक अथवा संघर्षपूर्ण कार्य

14.1.2 बाह्य कार्य अथवा मित्रवत् कार्य

14.1.3 राजनीतिक कार्य

14.1.4 प्रतिनिधित्वात्मक कार्य

14.1.5 विकासात्मक कार्य

14.5 भारत में श्रम संघ के उद्देश्य एवं कार्य

14.6 श्रम संघ की औद्योगिक संगठन में भूमिका

14.7 सारांश

14.8 बोध प्रश्न एवं उत्तर

14.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

14.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- श्रमिक संघ की परिभाषा की अवधारणा एवं परिभाषा को समझ सकेंगे,
- श्रमिक संघ के विकास का वर्णन कर सकेंगे,
- श्रमिक संघ के कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे,
- श्रमिक संघ की औद्योगिक संगठन में भूमिका के बारे में जान सकेंगे।

14.0 प्रस्तावना

पूर्व राष्ट्रपति वी.वी. गिरी के अनुसार ,''व्यक्ति स्वयं अकेले में शक्तिहीन है, शक्ति और सत्ता एकता में निहित है। श्रम संघवाद संघ और सामूहिक क्रिया की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है। यह कथन उन्होंने अपनी कृति ''लेबर प्रॉब्लम इन इण्डियन इण्डस्ट्रीज'' में लिखा है। सभी समुदायों के प्रत्येक वर्ग में श्रमिक संघों का विकास हुआ है। श्रमिक संघों में विभिन्न विद्धानों की विचारधराओं का योगदान है। श्रमिक संघों की स्थापना के उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्धानों ने अपने–अपने मत दिये हैं। मार्क्स और एंजिल के अनुसार वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त के कारण श्रमिकों का एक विशेष वर्ग संगठित हुआ, जो पूंजीवादी वर्ग को हटाकर राज्य की सत्ता श्रमजीवियों को देकर वर्गविहीन समाज की स्थापना करना चाहता था। 'कम्युनिस्ट घोषणा–पत्र' में यह नारा दिया गया है– 'दुनिया के मजदूर एक हो जाओ'। वेल्स का मानना है कि प्रबन्ध तन्त्र की तानाशाही खत्म करने, श्रमिकों की शक्ति बढ़ाने तथा कार्य की अवस्थाओं में सुधार के लिए श्रमिक संघ अति आवश्यक है।

सी.डी.एच. कोल के मतानुसार श्रमिक संघ का उद्देश्य उद्योगों पर नियन्त्रण होना चाहिए। श्रमिक संघवाद न केवल श्रमिकों को उचित मजदूरी के लिए प्रयत्न करता है, वरन् औद्योगिक समूहों का नियन्त्रण भी अपने हाथ में लेना चाहता है। श्रमिक संघों की मांग है कि व्यक्ति को नागरिक या उपभोक्ता न समझकर, उत्पादक समझा जाए एवं उपभोक्ता के दृष्टिकोण की अपेक्षा श्रमिकों के हितों पर आधारित उद्योगों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। कोल के अनुसार श्रमिक संघों की स्थिति वर्ग–संघर्ष के लिए अनिवार्य है। उद्योगों पर नियन्त्रण करने तथा वर्ग–संघर्ष छेड़ने के लिए कोल श्रमिक संघों की संरचना का पुनर्गठन करने

के पक्ष में है। कोल के अनुसार इस लक्ष्य की प्राप्ति अविलम्ब सम्भव नहीं है। संघर्ष के द्वारा उचित मजदूरी और श्रमिकों की कार्य–स्थितियों में सुधार आवश्यक है। श्रमिकों का प्रमुख लक्ष्य उद्योगों पर नियन्त्रण होना चाहिए। नियोक्ता के शोषण से श्रमिकों की रक्षा करना, लाभ में श्रमिकों को उचित अंश (लाभांश) दिलाना, कार्य की दशाओं का निर्माण करना, जीवन–निर्वाह के लिए उचित स्तर प्रदान करना, श्रमिकों की स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए ही श्रमिक संघों का निर्माण हुआ है। श्रमिक संघ के आन्दोलन का प्रमुख लक्ष्य श्रमिकों के हितों की रक्षा एवं उनको विकास करना है।

14.2 श्रमिक संघ की परिभाषा

श्रमिक संघ मजदूरों, वेतनभोगी श्रमिकों का ऐच्छिक संगठन है, जो विशेष रूप से औद्योगिक शान्ति स्थापित करने तथा श्रमिकों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य श्रमिकों को अच्छी कार्य की दशाएं उपलब्ध करवाना तथा उनके जीवनस्तर में सुधार करना है।

श्रमिक संघों को विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न रूप से परिभाषित किया गया है। मोटे तौर पर श्रम संघों की परिभाषाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

I. **संकुचित परिभाषाएं (Narrow Definitions)**

1. सिडनी व वेब (Sidney and Webb) के अनुसार, ''एक श्रमिक संघ मजदूरी करने वालों का स्थायी संगठन है, जिसका उद्देश्य उनके कार्यों की दशाओं में सुधार करना अथवा उनको बिगड़ने से रोकना होता है।''

2. एस.डी. पुणेकर (S.D. Punekar) के अनुसार, ''श्रम संघ औद्योगिक कर्मचारियों का निरन्तर संगठन है, जो सेवायोजक अथवा श्रमिकों द्वारा स्वतन्त्र रूप से बनाया जाता है। इसका उद्देश्य अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करना है।

3. वी.वी. गिरी (V.V. Giri) के अनुसार, ''श्रम संघ श्रमिकों का ऐच्छिक संगठन है, जो सामूहिक कार्यों के द्वारा अपने हितों की वृद्धि एवं सुरक्षा के लिए बनाया जाता है।''

II. विस्तृत एवं आधुनिक परिभाषाएं (Broad and Modern Definitions)

1. आर.ए. लेस्टर (R.A. Lester) के अनुसार, ''श्रम संघ कर्मचारियों का एक संगठन है, जो श्रमिकों का स्तर तथा कार्य की दशाएं सुधारने का कार्य करता है।''

2. जी.डी.एच. कोल (G.D.H. Cole) के अनुसार, '' श्रम संघ से अर्थ एक या अधिक व्यवसायों, उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के संगठन से है। ये संगठन अपने सदस्यों के लिए दैनिक कार्य में आर्थिक हितों की रक्षा तथा उनमें वृद्धि करने की दृष्टि से अच्छे कार्य करते हैं।''

3. श्रम संघ संशोधित अधिनियम, 1982 के अनुसार, ''श्रम संघ एक स्थायी अथवा अस्थायी संगठन है, जिसकी स्थापना श्रमिक तथा नियोक्ता में, श्रमिक एवं श्रमिक में तथा सेवायोजक व सेवायोजक से सम्बन्ध बनाने हेतु एवं किसी व्यवसाय के आचरण को नियन्त्रित करने हेतु की जाती है। इसके अन्तर्गत दो या अधिक श्रम संघों के संगठन सम्मिलित किये जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम श्रम संघ की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– ''श्रम संघ वेतनभोगी श्रमिकों द्वारा बनाया गया, एक निरन्तर चलने वाला ऐसा ऐच्छिक संगठन है, जो अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करने, उनकी कार्य दशाओं को बनाये रखने तथा उनमें सुधार करने तथा सेवायोजकों के साथ उत्तम सम्बन्ध बनाने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है।'' दूसरे शब्दों में, श्रम संघ ऐसे उपकरण हैं, जो उद्योग में एक वर्ग (काम करने वाला) को दूसरे वर्ग (काम कराने वाला) से सौदेबाजी के अवसर उपलब्ध करते हैं।''

14.3 श्रमिक संघ का उद्‌भव एवं विकास

भारत में श्रमिक संघ का विकास 20वीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में प्रारम्भ हुआ। भारत में श्रमिक संघ तथा श्रम आन्दोलन इतिहास के कई चरणों से जुड़ा है। अतः विभिन्न चरणों के आधार पर श्रमिक संघ के उद्‌भव तथा विकास का विवरण निम्न प्रकार से है। प्रथम चरण 1857–1900 का कालखण्ड था। दूसरा चरण 1901 से प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व का था। तृतीय चरण प्रथम विश्व युद्ध के कालखण्ड 1929 तक फैला हुआ है। श्रमिक संघ तथा श्रम आन्दोलन का चतुर्थ चरण 1930 से 1947 तक का था। पंचम चरण 1947 अर्थात् स्वाधीन भारत के उपरान्त का रहा है।

प्रथम चरणः औद्योगीकरण के पश्चात् श्रमिक संघ एवं श्रम आन्दोलन का विकास प्रारम्भ हुआ। 1857 के जनविद्रोह में श्रमिकों की प्रमुख भूमिका रही। ब्रिटिश शासकों, जमींदारों तथा मिल मालिकों के शोषण एवं उत्पीड़न ने सर्वहारा मजदूर वर्ग में वर्ग चेतना की एक नई उत्तेजना प्रदान की। 1875 में मुम्बई में सरावजी

शाहपुर ने श्रमिकों की दयनीय स्थिति की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित कराया। 1875 में मुम्बई में कारखाना आयुक्त नियुक्त किया गया, जबकि 1881 में कारखाना अधिनियम बनाया गया। श्रमिक आन्दोलन में नारायण मेघाजी लोखंडे का नाम स्मरणीय है। उन्होंने बम्बई के मजदूरों का एक सम्मेलन आयोजित किया। साथ ही 1890 में बॉम्बे मिल हैण्ड एसोसिएशन की स्थापना की। उन्होंने दीनबंधु पत्रिका भी निकाली, जिसमें सर्वहारा मजदूरों की समस्याओं से संबंधित मांगपत्र प्रस्तुत किया गया। इसके जरिये देश के विभिन्न हिस्सों के मिल–कारखानों के मजदूरों में श्रमिक संगठन का बीजारोपण किया गया। इतिहासकार शेखर बंदोपाध्याय के अनुसार 19वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत में चाय बागान का विकास हुआ, लोहा इस्पात उद्योग प्रारंभ हुआ। 19वीं शताब्दी में मध्य में रेल निर्माण प्रारंभ हो गया। बंदोपाध्याय के अनुसार कोलकाता और उसके आसपास जूट उद्योग तथा मुंबई और अहमदाबाद में सूती वस्त्र उद्योग के विकास ने भारत में संगठित क्षेत्र में एक औद्योगिक मजदूर वर्ग को जन्म दिया।

द्वितीय चरणः बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजनीतिक चेतना तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ सिर्फ उत्तेजना प्रारंभ हुई 1901 से प्रथम विश्वयुद्ध तक निम्नलिखित श्रमिक संघ की स्थापना हुई–

1. 1903 प्रिंटर्स यूनियन कोलकाता
2. 1907 मुंबई प्रिंटर्स यूनियन
3. 1909 कामगार हितवर्धक सभा
4. 1910 सोशल सर्विस लीग

भारत में श्रमिकों द्वारा संघर्ष करने के उपरांत श्रमिक संघ का जन्म हुआ। इस समय मजदूरों में संगठन का अभाव था तथा कार्य की दशाएं एवं परिस्थितियां खराब थी। इसी समय इंग्लैंड में एक आंदोलन प्रारंभ हुआ, जिसका उद्देश्य भारत के कारखानों विशेषकर वस्त्र उद्योगों में मजदूरों के शोषण को बंद करना था। सन 1875 में मुंबई फैक्ट्री कमीशन ने कुछ सुधार करने की सिफारिश की। 1911 में पुनः कारखाना अधिनियम पारित किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय वस्तुओं की कीमतों में भारी वृद्धि हुई, किंतु मजदूरों की मजदूरी में कोई वृद्धि नहीं की गई। महंगाई के कारण श्रमिकों में आक्रोश था और वे संगठित हो रहे थे। देश के राजनीतिक पटल पर लोकमान्य तिलक, एनी बेसेंट तथा गोपाल कृष्ण गोखले का बड़ा प्रभाव था। इस समय मजदूर वर्ग के आकार में वृद्धि हो रही थी। सन् 1911 की जनसंख्या के अनुसार भारत की जनसंख्या 30.3 करोड़ थी, जिसमें संगठित उद्योग क्षेत्र में मजदूरों की संख्या लगभग 21 लाख थी। सन् 1911 से 1921 के मध्य 5.75 लाख मजदूरों की संख्या में और वृद्धि हुई। दीपेश चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक

''रिथिंकिंग वर्किंग क्लास हिस्ट्री बंगाल 1890–1940 में स्पष्ट किया है कि सर्वहारा मजदूर वर्ग अपनी गरीबी के बारे में पूर्ण जागरूक हो गया था। उद्योगों एवं फैक्ट्रियों के अंदर शक्ति संबंधों के प्रति वे जागरूक थे।

रोजगार में अपनी अधीनता के प्रति गरीब मजदूर असंतुष्ट थे। अधिकतर मजदूर ग्रामीण क्षेत्रों से थे। उनकी पहचान के साथ जातिगत संकीर्णता तथा संप्रदायिक विभेद भी जुड़ा हुआ था। ये मजदूर अधिकतर अनुसूचित जाति, पिछड़ी जातियों के या मिल मालिकों तथा उद्योगपतियों द्वारा फर्म तथा जातिगत चेतना की भावना को उठाकर इस आंदोलन को तुड़वाने का प्रयास किया गया। दीपेश चक्रवर्ती के अनुसार धार्मिक और जातिगत विभाजनों ने मजदूरों से नैतिक विभाजन बनाए रखा और मिल मालिकों ने आंदोलन को कमजोर करने के लिए इसका खूब प्रयोग किया। एनपी रमन ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिकल इंवॉल्वमेंट ऑफ इंडिया ट्रेड यूनियन' में स्पष्ट किया है कि इन श्रमिक संगठनों का उद्देश्य श्रमिकों को शोषण से बचाना था, ना कि श्रमिकों के लिए उचित वातावरण तैयार करना था। इन संगठनों के उद्देश्य सीमित थे।

तृतीय चरण (1914–1929): प्रथम विश्वयुद्ध में श्रमिकों का जो शोषण हुआ, उसके दुष्परिणाम युद्ध के समाप्त होने के पूर्व ही दिखाई देने लगे थे। सन 1917 तक औद्योगिक संबंधों में कोई घटना नहीं हुई। 19वीं शताब्दी में मजदूर गुलाम की तरह थे। स्वतंत्रता आंदोलन के अनेक नेता मजदूर आंदोलन को संचालित करने लगे थे। अब मजदूर संगठित होने लगे। मिल मालिक झुकने को तैयार नहीं थे। एक सप्ताह की हड़ताल के पश्चात सरकार ने हस्तक्षेप किया, तब जाकर समझौता हुआ, जिसमें मजदूरों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। 21 जनवरी 1919 को हड़ताल समाप्त हुई। 2 जनवरी 1920 को दूसरी सामूहिक हड़ताल मुंबई में हुई। इसमें मजदूरों को सफलता प्राप्त हुई। सन 1918 में पहला मद्रास श्रम संघ वाडिया के नेतृत्व में स्थापित हुआ, जिसके सदस्य सूती वस्त्र उद्योग के श्रमिक थे।

इसी तरह सन् 1920 में सूती मिल मजदूर संघ एवं अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस की स्थापना हुई। सन 1922 में अखिल भारतीय रेल श्रमिकों की फेडरेशन एवं टेलीग्राम संघ की स्थापना की गई। सन 1926 में भारतीय श्रम अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा संघों को मान्यता मिल गई। एआर देसाई ने मजदूर आंदोलन के विषय में स्पष्ट किया कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सर्वहारा मजदूर वर्ग में अपने हितों की रक्षा के लिए बेचैनी पैदा हुई, और उनमें संगठित चेतना का उदय प्रारंभ हुआ। 1920–21 में संगठित उद्योगों में हड़ताल हुई। सन 1918 से 1920 के बीच देशभर में मुंबई, कानपुर, कोलकाता, सोलापुर, जमशेदपुर और अहमदाबाद के औद्योगिक केंद्रों में हड़ताल हुई।

एआर देसाई ने अपनी पुस्तक '**सोशल बैकग्राउंड ऑफ द इंडियन नेशनलिज्म**' के अनुसार 1914–1929 में पहली बार मुंबई, मद्रास और कुछ अन्य केंद्रों में विभिन्न उद्योगों के मजदूर संघ की स्थापना की चेष्टा हुई। 1920 में एमएस जोशी, लाला लाजपत राय और जोसेफ बैपटिस्टा के प्रयास से ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई। इसके दो उद्देश्य थे– पहला, देश के सभी प्रांतों में मजदूरों के सभी संगठनों के कार्यों को समन्वित करना तथा दूसरा, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मसलों पर भारतीय मजदूरों के हितों को प्राथमिकता देना। देसाई के अनुसार 1927 के बाद ट्रेड यूनियन आंदोलन में वामपंथी नेतृत्व विकसित हुआ और इसमें वामपंथी, राष्ट्रवादी, समाजवादी और साम्यवादी लोग आए। 1922 से ही भारतीयों के मध्य समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा फैलने के साथ देश में समाजवादी और साम्यवादी दलों की स्थापना हुई।

रॉयल कमीशन ऑन लेबर के बहिष्कार और **जेनेवा के इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस** में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विवाद होने से इसमें फूट पड़ गई और यह अलग हो गए। जोशी गुट ने इंडियन ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना की। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में श्रमिक संघ और तथा श्रमिक आंदोलन पर विश्लेषण किया है। पंडित नेहरू के अनुसार, भारत में श्रमिक आंदोलन के विकास के परिप्रेक्ष्य में वैचारिक स्तर पर मतभेद था। इसमें एक हिस्सा तो मजदूर संघ के पुराने लोगों का था, जो राजनीतिक दृष्टि से मॉडरेट (Moderate) यानी नरम या मध्यमार्गी था और जो इस बात को शक की निगाह से देखता था कि उद्योग–धंधों में मजदूरों और मिल मालिकों के झगड़ों में राजनीति को मिलाया जाए। उनका विश्वास था कि मजदूरों को अपनी शिकायतें दूर करने के लिए आगे नहीं आना चाहिए। इसके लिए सोच–समझकर कदम उठाने चाहिए। इस दल के नेता एम.एल. जोशी थे। दूसरा दल अधिक संघर्षशील था। इनका विश्वास राजनैतिक लड़ाई में था और वे खुलकर अपने क्रांतिकारी दृष्टिकोण का ऐलान करते थे। कुछ कम्युनिस्टों या कम्युनिस्टों से मिलते–जुलते लोगों का इस संगठन पर असर था। पंडित नेहरू के अनुसार इस अवधि में भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन अपनी जवानी की तरफ बढ़ रहा था।

चतुर्थ चरण (1939–1947): द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् देश की राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का एक नया रूप देखने को मिला। राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक संघों में राजनीतिक मतभेद उत्पन्न हो गया। सन् 1939 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस एक संगठित संघ था। इस चरण में श्रमिक संघ तथा सर्व आंदोलन वैचारिक ऊर्जा, आंदोलन तथा पूंजीपतियों के खिलाफ तीव्र प्रतिरोध और उत्तेजना का चरण था। मजदूरों में वर्ग चेतना का विकास हो रहा था। इस समय (AITUC) का मजदूरों पर अधिक प्रभाव था। इसके

प्रमुख उद्देश्यों को ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) के 19वें अधिवेशन की रिपोर्ट जो कानपुर में 1942 में आयोजित किया गया था, में स्पष्ट किया गया, जो निम्नवत हैं:

1. भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना।
2. यथासंभव उत्पादन के साधन एवं विनिमय और वितरण का समाजीकरण तथा राष्ट्रीयकरण।
3. मजदूर वर्ग की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार।
4. बोलने की आजादी, प्रेस, संगठन सभा और हड़ताल आदि की स्वतंत्रता का अधिकार मजदूरों को उपलब्ध कराना।
5. मजदूर वर्ग के हितों की दृष्टि से राष्ट्रीय संघर्ष में हिस्सा बांटना तथा जाति, धर्म, समाज, प्रजाति और आस्था पर आधारित विशेषाधिकार की समाप्ति।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय साम्यवादियों एवं कांग्रेस के मध्य मतभेद हो गए थे। मानवेंद्र राय द्वारा एक नए राजनीतिक दल तथा नए संघ का निर्माण किया। सन् 1941 में अखिल भारतीय स्तर पर एक श्रमिक फेडरेशन बनाया गया, जिसका नाम इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर रखा। इसके अध्यक्ष जमुनादास तथा सचिव मानवेंद्र राय चुने गए। 1946 में इसकी सदस्य संख्या 450479 थी तथा इसमें 193 संघ सम्मिलित थे।

ए.आर. देसाई के अनुसार 1930–1947 के मध्य श्रमिक संगठन तथा संघ आंदोलन के विकास के निम्न बिंदु थे: सन् 1930–47 में रेलवे के मजदूरों में प्रतिरोध तथा वर्ग चेतना का तीव्र विकास हुआ और रेलवे के श्रमिकों ने अपना अलग संगठन बना लिया। 1933 में नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना की गई। 1935 के नए कानून में प्रांतों के राजनैतिक अधिकारों तथा प्रभाव में वृद्धि की गई। 1938 में दो प्रमुख श्रमिक संगठन नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन तथा ट्रेड यूनियन कांग्रेस का विलय हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मजदूरों से अधिक सहयोग करने की सरकार ने पहल की। मजदूरों के लिए कल्याण समितियों की स्थापना की गई। सन् 1947 में सरकारी स्तर पर श्रमिकों से जुड़े विभिन्न मामलों के निपटारे हेतु श्रम जांच समितियों का गठन किया गया। इसी समय इंडियन फेडरेशन ऑफ लेबर का उदय हुआ। विद्वानों के अनुसार मुंबई में श्रमिकों के बीच से गीतकार श्रमिक शैलेंद्र का पदार्पण फिल्मों में हुआ और उन्होंने अपने गीतों में श्रमिकों की समस्याओं को लिखा।

पंचम चरण स्वतंत्रता (1947) के पश्चात्: श्रमिक आंदोलन के इतिहास में आधुनिक काल 1947 के बाद प्रारंभ हुआ। 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ और कांग्रेस ने देश की बागडोर संभाली। श्रम क्षेत्र में राजनीतिक दलों के बीच इस समय तीव्र प्रतिस्पर्धा थी। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस साम्यवादी

प्रभाव में जा चुकी थी। अतः कांग्रेसी नेताओं,विशेषकर सरदार वल्लभभाई पटेल तथा गुलजारी लाल नंदा, ने एक नया महासंघ बनाने का निश्चय किया। मई 1947 में इसका प्रस्ताव पास भी हो गया और भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस (I.N.L.U.C.) की स्थापना हुई। 1948 में समाजवादी दल ने अपना अलग महासंघ बनाया, जिसका नाम हिंद मजदूर सभा रखा। अप्रैल 1948 में चौथे अखिल भारतीय महासंघ की स्थापना प्रो. के.टी. शाह की अध्यक्षता में की गई। इसका नाम यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस रखा गया। सन् 1955 में जनसंघ पार्टी ने भारतीय मजदूर संघ का गठन किया। वर्तमान में इन चार संगठनों के अतिरिक्त 13 अन्य संगठनों का निर्माण हो चुका है।

14.4 श्रम संघ के कार्य

श्रम संघों के कार्य इनके उद्देश्यों एवं विकास की अवस्थाओं पर निर्भर करते हैं। वर्तमान में श्रम संघ बहुत विकसित अवस्था में है तथा सबसे शक्तिशाली भी हैं, अतः इनका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। श्रम संघ अपने सदस्यों के हितों की रक्षा एवं उनका संवर्धन करते हैं।

प्राइस जॉन का कथन है कि ''आज के श्रम संघ के अपने कार्यकलाप श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलाने तथा कार्य की दशा में सुधार करवाने तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि वे इन सभी कार्यों से संबंधित हैं, जिनसे श्रमिक प्रभावित होते हैं। चाहे वह श्रम शक्ति के रूप में हो अथवा नागरिक के रूप में।''

मोटे तौर पर श्रम संघ के कार्य को निम्नलिखित पांच भागों में बांट सकते हैं–

(1) आंतरिक अथवा लड़ाकू या संघर्षशील कार्य **(2)** बाह्य कार्य **(3)** राजनीतिक कार्य **(4)** प्रतिनिधित्वात्मक कार्य **(5)** विकासात्मक कार्य

(1) आंतरिक अथवा लड़ाकू कार्य (Intra-Mural or Fighting Functions): इस प्रकार के कार्यों के अंतर्गत श्रमिक संघ श्रमिकों के अधिकारों के लिए लड़ते हैं। इस लड़ाई या संघर्ष का लक्ष्य होता है– (अ) उचित मजदूरी, (ब) कार्य और सेवा की अच्छी शर्तें, (स) मालिकों का अच्छा व्यवहार, (द) काम के कम घंटे और उद्योग के प्रबंध में हिस्सा। इस संघर्ष में वे अनेक शस्त्रों का प्रयोग करते हैं; जैसेः हड़ताल, बहिष्कार, सामूहिक सौदेबाजी, समझौता–वार्ताएं आदि।

सामान्यतः लड़ाकू कार्यों में निम्न क्रियाएं की जाती हैं–

(अ) सामान्य हित में सामूहिक सौदेबाजी करना, **(ब)** व्यक्तिगत हित के लिए विचार विमर्श करना, **(स)** आवश्यकता पड़ने पर हड़ताल की व्यवस्था करना।

(2) बाह्य कार्य अथवा मित्रवत् कार्य (Extra-Mural Functions): इसके अंतर्गत वे कार्य आते हैं, जो श्रमिक परस्पर एक दूसरे के जीवन को सुधारने के उद्देश्य से करते हैं। जे.आई. रोपर का एक सुंदर वाक्य है, ''एक श्रमिक संघ एक नगर पालिका के सदृश है, जिसका उद्देश्य नागरिकों का जीवन सुधारना है।'' अर्थात् जिस प्रकार नगर पालिका शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन इत्यादि की सेवाओं की व्यवस्था करती है, श्रमिक संघ भी करता है। इन कार्यों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है–

(अ) शिक्षा संबंधी कार्य (Educational Functions): महिला शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय एवं वाचनालय आदि की व्यवस्था करना।

(ब) आर्थिक कार्य (Economic Functions): सहकारी समितियों का निर्माण करना, जो सस्ते अनाज, मकान व ऋण दिलाने से संबंधित कार्य करती हैं। अनाथ गरीबों की सहायता का प्रबंध करना।

(स) स्वास्थ्य संबंधी कार्य (Health Related Functions): दवा, इलाज, सफाई की व्यवस्था करना व शिशु एवं मातृ कल्याण करना।

(द) मनोरंजन (Entertainment): खेलकूद, व्यायाम, टूर्नामेंट आदि का प्रबंध करना व क्लब इत्यादि का संगठन करना।

(य) सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions): लोकनृत्य, संगीत, कला, नाटक इत्यादि।

भारत में श्रम संघ इस प्रकार के कल्याणकारी कार्य करने लगे हैं। भारत सरकार के श्रम मंत्रालय के श्रम ब्यूरो ने 1979 में एक सर्वेक्षण श्रम संघ द्वारा किए जा रहे कल्याणकारी कार्यों के संबंध में संपादित किया। इस ब्यूरो ने 102 श्रम संघों के संबंध में सूचनाएं प्राप्त की थी।

(3) राजनीतिक कार्य (Political Functions): देश के शासन प्रबंध में भाग लेने के उद्देश्य से निर्वाचन आदि में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को खड़ा करना राजनीतिक कार्यों की श्रेणी में आता है। आर्थर गोल्ड वर्ग के अनुसार, ''संघ सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे देश के राजनीतिक अधिकारों के निश्चित राष्ट्रीय कार्यक्रम को आश्रय प्रदान करें तथा अपने संघ को देश के राष्ट्रीय जनसंघों के सदस्य वर्गों के साथ चलाने के लिए दृढ़ता से कहें।'' संक्षेप में, श्रमिक संघ के राजनीतिक कार्य निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं–

(अ) विधानसभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजना, नगरपालिकाओं में अपना प्रभाव उत्पन्न करना।

(ब) चुनाव के द्वारा स्वयं अपनी सरकार बनाने का प्रयास करना, ताकि सत्ता में आकर कुछ और अधिक अच्छा कार्य किया जा सके। जैसा कि ब्रिटेन में लेबर पार्टी सत्ता में आई। ऐसा केवल औद्योगिक देशों में संभव है। भारत में भविष्य में ऐसा होना संभव नहीं दिखता है।

(स) श्रमिकों के हित के अधिनियम को बनवाना। भारत में अनेकों अधिनियम श्रमिक आंदोलन के फलस्वरूप बने हैं।

श्रम संघ राजनीतिक व्यवस्था में पनप सकते हैं, चाहे वह पूंजीवाद और साम्यवाद। पूंजीवाद के अंतर्गत जहां श्रम संघ का प्रमुख कार्य है मजदूरी, कार्य की शर्तो एवं कर्मचारी वर्ग की मांग और पूर्ति से संबंधित विषयों के लिए सेवायोजकों के समक्ष मांग रखना। वहीं, साम्यवादी देश में श्रमिक संघ उत्पादन में वृद्धि को प्रोत्साहित करने में, अनुशासन बनाए रखने में बल देते हैं और समाज कल्याण एजेंसी के रूप में कार्य करते हैं। साम्यवादी देशों में श्रमिक संघ मजदूरी की मांगों के समर्थन में हड़तालों का सहारा नहीं लेते।

(4) प्रतिनिधित्वात्मक कार्य (Representative Functions): सेवायोजकों के साथ सौदा करने तथा अन्य विविध कार्यों के लिए श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का कार्य श्रम संघ को करना पड़ता है। इसी प्रकार न्यायालयों में चलने वाले विवादों, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले सम्मेलनों में भी श्रमिकों का प्रतिनिधित्व श्रम संघ द्वारा किया जाता है। श्रम संघ सरकार अथवा सेवायोजकों द्वारा बनाई जाने वाली समितियों में भी अपने प्रतिनिधि भेजकर श्रमिकों का प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं।

(5) विकासात्मक कार्य (Developmental Functions): आधुनिक युग में श्रम संघ श्रमिकों के हितों में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज एवं देश के हितों में कुछ विकासात्मक कार्यों में भी योगदान दे सकते हैं। श्रम संघ संकटकालीन स्थिति में अत्यधिक उत्पादन के लिए श्रमिकों को प्रेरित करके देश की रक्षा एवं विकास में महान योगदान दे सकते हैं। श्रम संघ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करके उनको अपने कार्यों में लगाए रखते हैं, जिससे देश में अत्यधिक उत्पादन संभव है। इसी प्रकार श्रम संघ अनेक कार्य करके देश के विकास में योगदान देते हैं।

14.5 भारत में श्रम संघ के उद्देश्य एवं कार्य

भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926 के अनुसार संघों को श्रमिकों के हितों की रक्षा, रोजगार एवं कार्य की दशाओं में सुधार तथा उनके खेतों में वृद्धि करनी चाहिए। यह कार्य उनका मूल उद्देश्य है, किंतु

इसके अतिरिक्त, श्रम संघ के कुछ गौण कार्य भी हैं। लेकिन यह गौण कार्य मूल उद्देश्य की नीति के विरुद्ध नहीं होने चाहिए। भारतीय श्रम संघों के उद्देश्य व कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) अपने सदस्यों के लिए उपयुक्त मजदूरी, अच्छी कार्य दशाएं तथा अच्छे रहन–सहन की सुविधाएं उपलब्ध कराना।

(2) श्रमिकों के जीवन–स्तर में सुधार करके, उन्हें उद्योग में सहभागी के रूप में तथा समाज के अच्छे नागरिक के रूप में स्थापित करना।

(3) श्रमिकों द्वारा उद्योग पर नियंत्रण प्राप्त करना।

(4) आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय सामूहिक रूप से संगठित प्रबंधकीय षड्यन्त्रों के विरुद्ध बोलने के लिए, अन्याय को दबाने के लिए, श्रमिकों की व्यक्तिगत क्षमता में वृद्धि करना।

(5) श्रमिकों में उत्तरदायित्व तथा अनुशासन को वहन करने की योग्यता उत्पन्न करना।

(6) श्रमिकों में यह आत्मबल जाग्रत करना, कि वे केवल मशीन के पुर्जे नहीं हैं।

(7) श्रमिकों की नैतिक उन्नति के लिए कल्याणकारी कार्य करना।

14.6 श्रम संघ की औद्योगिक संगठन में भूमिका

उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण की शुरुआत के साथ ही श्रमिक संघों का उदय हुआ, जिसका उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीकों का प्रयोग करके श्रमिकों के हितों को सुरक्षित रखना होता है। इस प्रकार, श्रमिक संघ, श्रमिकों का वह संगठन होता है, जो किसी एक उद्योग या हस्तशिल्प से जुड़े होते हैं।

औद्योगिक शांति बनाये रखने में श्रम संघों की भूमिका अति महत्वपूर्ण होती है। विभिन्न विद्वानों ने श्रम–संघ को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है, जो इस प्रकार है–

1. श्रमिक संघ का अर्थ एक प्रकार से संगठन से है,
2. इस संगठन की सदस्यता ऐच्छिक होती है,
3. इस संघ में श्रमिकों की सामूहिक शक्ति निहित होती है,
4. इस संघ का उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना होता है।

14.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में श्रमिक संघ के उद्भव एवं विकास को बताया गया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रम संघ श्रमिकों एवं कर्मचारियों का संगठन है। यह एक ऐच्छिक संगठन होता है। श्रम संघ की

प्रकृति स्थायी अथवा अस्थायी होती है। यह कर्मचारियों एवं नियोजकों, कर्मचारियों एवं कर्मचारियों तथा सेवानियोजकों एवं सेवानियोजकों के मध्य सम्बन्धों का नियमन है। श्रम संघों की सार्वभौमिक प्रवृति होती है, क्योंकि सभी प्रकार के संगठनों में श्रमिक संघ स्थापित किए जा सकते है।

14.8 बोध प्रश्न एवं उत्तर

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. लेबर प्रॉब्लम इन इण्डियन इण्डस्ट्रीज पुस्तक के लेखक है–
   (अ) कोल (ब) वी. वी. गिरी
   (स) मिलन बेले (द) आर.ए. लेस्टर
2. सर्वहारा मजदूरों की समस्याओं से सम्बन्धित माँग–पत्र किसमें प्रस्तुत किया गया?
   (अ) दीनबन्धु पत्रिका (ब) बंग–भंग पत्रिका
   (स) यंग इण्डिया पत्रिका (द) लोकबन्धु पत्रिका
3. दूसरी सामूहिक हड़ताल मुम्बई में कब हुई थी?
   (अ) 2 जनवरी, 1918 (ब) 2 जनवरी, 1921
   (स) 2 जनवरी, 1920 (द) 2 जनवरी, 1945

उत्तर– 1. (ब), 2. (अ), 3. (स)

सत्य/असत्य कथन

1. श्रमिक संघ, श्रमिकों एवं कर्मचारियों का संगठन है।
2. यह एक व्यक्तिवादी समानता की देन है।
3. 1980 में बॉम्बे मिल हैंड्स एसोसिएशन की स्थापना की गयी।
4. प्रथम विश्व युद्ध 1914–17 तक चला।

उत्तर– 1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य।

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. श्रम संघ कर्मचारियों का एक ..... है।
2. सन् ..... में कारखाना अधिनियम बनाया गया।
3. श्रम संघों का नेतृत्व बड़ा ही ..... होना चाहिए।

उत्तर– 1. संगठन, 2. 1881, 3. कुशल।

14.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. श्रम संघ से आप क्या समझते है?
2. द्वितीय चरण के श्रम संघ के उद्‌भव एवं विकास को लिखिए।
3. श्रम संघ के कार्यों का वर्णन कीजिए।

14.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. श्रम संघ से आप क्या समझते है? श्रम संघ के कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में श्रम संघ आन्दोलन के उद्‌भव एवं विकास की विवेचना कीजिए।

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रविन्द्रनाथ, मुखर्जी एवं भरत, अग्रवाल, 'औद्योगिक समाजशास्त्र'–2023 एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन

2. Gisbert Pascal, Fundamentals of Industrial Sociology, Tata Mc. Graw Hill Publishing Co. New Delhi, 1972.

3. Schneider Engenho, V. Industrial Sociology 2nd Edition, Mc. Graw Hill Publishing Co. New Delhi, 1979.

4. Memoria, C.B. and Memoria, S. Dynamics of Industrial Relations in India. Sinha, G.P. and P.R.N. Sinha, Industrial Relations and Labour Legislations, New Delhi, Oxford and IBH Publishing Co. 1977.

5. Tyagi, B.P. Labour Economics and Social Welfare, Jai Prakash Nath, and Co. Meerut, 1980. Mehrotra, S.N. Labour Problems in India, 3rd Revised Edition, S. Chand and Co. New Delhi, 1981. RM 72.